तुलसी वाङ्मय

जोत जले अब ज्ञान की

आचार्य तुलसी

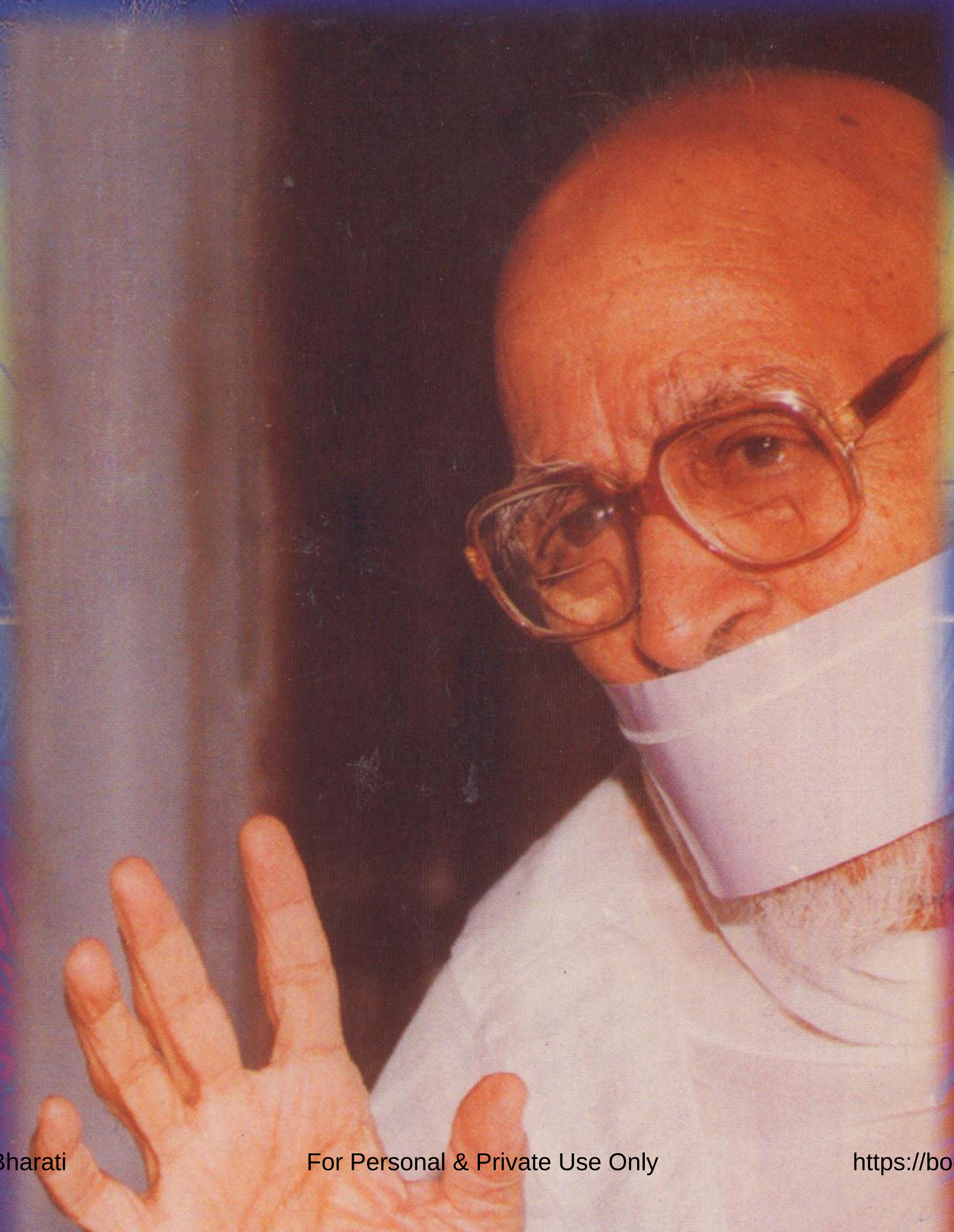

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तुलसी वाङ्मय

प्रवचन पाथेय ग्रंथमालाह्न१०

जोत जले अब ज्ञान की

आचार्य तुलसी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जैन विश्वभारती प्रकाशन
लाडनूं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जोत जले अब ज्ञान की

आचार्य तुलसी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ादक :
ने धर्मरुचि

ाशक :
ा विश्वभारती
डनूं (राज.) ३०४३०६

प्रकाशकाधीन

करण : २००४

य : रुपयो मात्र

वरण :

क :
खला प्रिटर्श, सुगन निवास
नसागर, बीकानेर ३३४००१ (राज.)

ANI IAANA SE PHLE ISBN 81
Acharya Tulsi Rs.00.00

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

स्वकथ्य

प्रवचन करना एक कला है तो उनका संकलन-संपादन करना एक कला है। दोनों कलाओं की स्वतंत्र सत्ता है और स्वतंत्र महत्त्व कभी-कभी तो मुझे ऐसे लगता है कि प्रवचन करने में जितना समय अ श्रम लगता है, उन्हें लिखने एवं संपादित करने में उससे कहीं अधि समय और अधिक श्रम लग जाता है। हमारे धर्मसंघ के साधु-साध्वि श्रमशील हैं। श्रम-निष्ठा के संस्कार उन्हें विरासत में प्राप्त हुए हैं। अपने लिए जितना श्रम करते हैं, उससे भी अधिक श्रम धर्मसंघ की से में समर्पित करते हैं। वे स्वयं उजागर न होकर धर्मसंघ को उजागर क चाहते हैं। वे निरंतर काम करते हुए भी उसे गुरु की कृपा का अव मानकर चलते हैं। वे अपने जीवन में जहां कहीं सफलता का वरण क हैं, उसे गुरु की शक्ति का सुफल मानते हैं। यही कारण है कि हम धर्मसंघ सदा उदितोदित रहता है। जब तक हमारे साधु-साध्वियों में श्र समर्पण और सेवा के संस्कार घनीभूत रहेंगे, धर्मसंघ के बहुआयामी विक के पग रुकेंगे नहीं।

धर्मसंघ का आचार्य होने के नाते प्रवचन करना मेरी दिनचर्या एक अभिन्न अंग बन गया। कई बार दिन में दो-चार प्रवचन करने अवसर मिल जाता है। एक बार तो प्रायः बोलना ही होता है। 'प्रवच मेरी हॉवी नहीं है। इसी प्रकार इस क्षेत्र में मेरी अरुचि भी नहीं है। जैसी जनता सामने होती है, मैं अपने प्रवचन का विषय और शैलीहृदे बदल लेता हूं। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी बात सुन श्रोताओं को कोई दिशा मिल रही है और कभी-कभी मैं स्वयं ही बोल बोलता आत्म-विभोर हो जाता हूं। कभी-कभार ऐसा भी प्रसंग आता जब मैं पूरे मन से नहीं बोलता हूं। पर बहुत बार ऐसा होता है कि प्रव करने में मुझे अतिरिक्त आत्मतोष मिलता है। जिस समय मैं ग्रामीण लो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बीच में बैठता हूं, उनकी समस्याएं सुनता हूं, उन्हें व्यसन-मुक्ति और ढ़-मुक्त होने की प्रेरणा देता हूं और वे मेरी छोटी-से-छोटी सलाह को प्रेम से स्वीकार करते हैं, शराब, तंबाकू आदि नशीली वस्तुएं छोड़ते सामाजिक कुप्रथाएं छोड़ते हैं और अपनी सादगीपूर्ण भक्ति-भावना से दिल में स्थान बना लेते हैं, उस समय मैं अभिभूत हो जाता हूं। ऐसे ले-भाले सीधे-साधे लोगों के बीच दो-दो घंटे लगातार बोलने पर भी थकान का अनुभव नहीं करता।

गांवों की तरह मैं शहरों में जाता हूं, रहता हूं। वहां की प्रबुद्ध जनता र्क में आती है। उसके साथ मानवीय और राष्ट्रीय समस्याओं के बारे चर्चा करता हूं। उस समय भी मुझे बड़ा अच्छा लगता है। विद्वान गों की परिषद में दार्शनिक और मानवीय दृष्टि का विश्लेषण करते समय स्वयं को भूला-सा जाता हूं।

गांवों और शहरों में दिए गए मेरे प्रवचनों को संकलित-संपादित ने का सिलसिला यदा-कदा शुरू होता है, तब मुझे लगता है कि इनका ा उपयोग होगा। किंतु जब वे मुद्रित होकर सामने आते हैं, तब ऐसी ीति होती है कि जन-साधारण के लिए प्रवचन-साहित्य का जितना योग है, दार्शनिक और सैद्धांतिक साहित्य का उतना नहीं है। इसी कारण काम में रुचि रखनेवाले साधु-साध्वियों को मैं प्रोत्साहित करता रहता मुनि धर्मरुचि भी अभिरुचिसंपन्न साधु है। शारीरिक दृष्टि से कुछ ठेनाई रहने पर भी वह जिस काम में लग जाता है, उसे पूरे मन से ता है। 'प्रवचन पाथेय' का यह चौथा भाग सन १९७७ में लाडनूं प्रवास समय दिए गए प्रवचनों का एक संकलन है। उस समय लिखे गए चनों का उसने इस वर्ष पुनः निरीक्षण कर उन्हें पठनीय सामग्री के ा में प्रस्तुत कर दिया। यह प्रस्तुति पाठकों को सोचने और समझने गहरी प्रेरणा दे, यही अभीष्ट है।

द्वासर **आचार्य तुलसी**
जनवरी १९८९

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संपादकीय

आचार्य श्री तुलसी एक अमर गाथा हैंह्लयुग-सृजन की, प्र
प्रेरणा हैंह्लजीवन जागरण की। लाखों-लाखों लोग जहां उन्हें एक
मुनि के रूप में जानते हैं, तेरापंथ के नवमाधिशास्ता के रूप में पहचा
हैं, वहां करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियों की नजर में उनका व्यक्तित्व
मानवधर्म/जैन-धर्म के प्रवर्तक के रूप में उभरा है। निस्संदेह वे
संप्रदायविशेष से अनुबद्ध/संबद्ध हैं। परंतु उनका दृष्टिकोण संकीर्ण
है, बहुत व्यापक है। संपूर्ण मानव जाति के उदितोदित भविष्य के प्रति
अत्यंत संवेदनशील हैं। इसी लिए व्यक्तिगत से लेकर अंतरराष्ट्रीय स
तक की हर समस्या के संदर्भ में वे सोचते हैं और उसे समाहित क
हैं। उनके इस समाधान से जन-जन को यथार्थ के धरातल पर सो
समझ का एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है।

जैन दर्शन में सम्यक दृष्टि का सर्वाधिक महत्त्व है। जब त
व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक नहीं बनता, तब तक उसका ज्ञान
अज्ञान कहलाता है। उसका व्रत भी अव्रत ही होता है। दृष्टिकोण
मिथ्यात्व के कारण उसका आचरण भी सम्यक कब बन पाता
इसलिए जीवन-विकास की प्राथमिक अपेक्षा है कि व्यक्ति का दृष्टिक
यथार्थ हो। प्रकारांतर से हम ऐसा भी कह सकते हैं कि सम्यक दृष्टि
प्राप्ति मुक्ति का प्रवेश-द्वार है। मानना चाहिए, जिसने सम्यक दृ
प्राप्त कर ली, सोच-समझ की यथार्थता पा ली, उसने एक अपेक्षा
सब-कुछ प्राप्त कर लिया।

प्रवचन करना आचार्य श्री की जीवनचर्या का एक अंग है। उ
सुनने के लिए तेरापंथी और जैन आते हैं तो अजैन भी आते हैं। पु
आते हैं तो महिलाएं और बच्चे भी आते हैं। महाजन आते हैं तो हरि
भी आते हैं। आस्तिक आते हैं तो नास्तिक और कम्यूनिस्ट भी आते
साहित्यकार, वकील, न्यायाधीश, डॉक्टर, इंजीनियर आदि प्रबुद्ध वर्ग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ग आते हैं तो गांवों के अनपढ़ किसान और जंगलों में रहनेवाले दिवासी भी आते हैं। परंतु वे भीड़ के रूप में केवल इकट्ठे नहीं होते, ल्कि मंत्रमुग्ध-से बन ग्रहणशील मानस से उनका शब्द-शब्द सुनते भी तब घटित होता हैह्नएक आश्चर्य! एक चमत्कार!! मैंने साक्षात देखा कम्यूनिस्ट एवं नास्तिकों को सहसा आस्तिक बनते हुए। मैंने देखा है, र्म को रूढ़ि और दकियानूसी विचार समझनेवालों द्वारा उसे जीवन की ति और आनंद के लिए एक अनिवार्य अपेक्षा एवं निर्विकल्प साधन के प में स्वीकार किए जाते हुए। देखा है मैंने वर्षों से पी जानेवाली चिल्में ड़ी जाते हुए, बीड़ी-सिगरेट के बंडल व पॉकेट फेंके जाते हुए। मैंने खा है, सर्वण हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यता को मानवजाति का कलंक मान सदा-सदा के लिए विदा कर एक हरिजन भाई को सगे भाई की ह गले लगाए जाते हुए। मैंने देखा है, कड़े-से-कड़ा सामाजिक प्रतिबंध कानून जहां असफल रहे, वहां आचार्य श्री के चंद शब्दों ने बड़े-बड़े पराधियों के दिल और दिमाग को प्रायश्चित्त की भूमिका पर रूपांतरित र दिया। परिणामतः अपने अभिशप्त जीवन से ऊपर उठकर उन्हें एक दर्श नागरिक का जीवन जीने के लिए संकल्पबद्ध होते हुए मैंने देखा ....

ऐसा क्यों होता है? बेशक आचार्य श्री का प्रवचन-कौशल अनूठा उनकी अभिव्यक्ति अजब-गजब की है। परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण त यह है कि प्रवचन में मात्र आचार्य श्री के शब्द भाषायित नहीं होते, पितु उनका स्वयं का जीवन भी बोलता है, उनकी साधना भी बोलती उनकी आत्मा भी बोलती है; और जहां व्यक्ति का जीवन बोलता है, धना बोलती है, आत्मा बोलती है, वहां शब्द मात्र शब्द नहीं रहते, क्ति बन जाते हैं। उनमें एक गुरुत्वाकर्षण पैदा हो जाता है; व्यक्ति के य को छूने की अर्हता अद्‌भूत हो जाती है। ऐसा एक-एक क्षण, एक- दृश्य और वे जादुई शब्द लिपिबद्ध गुंफित किए जा सकेंह्नयह कितनी खद कल्पना है! पर यह जितनी सुखद है, उतनी सहज कहां? कोई ाल साहित्य-शिल्पी ही ऐसा कर सकता है। मैं तो साहित्य की प्रथम ा का एक विद्यार्थी मात्र हूं। अभी बिलकुल प्राथमिक ज्ञानह्नक, ख, ... ही सीख रहा हूं। फिर यह प्रयास/साहस मैंने क्यों किया? कैसे या?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२० जुलाई, १९९७ (वि. सं. २०३४) की वह संध्या। 'भि विहार'ह्न*जैन विश्वभारती* का वह दक्षिणाभिमुख बरामदा। प्रतिक्रमण पश्चात मैं पूज्य गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुआ। चरण-वंदन कर ज्योंही उठने की तैयारी में था, आचार्यवर के बिना किसी पूर्व भूमिका निर्देश की भाषा में फरमायाह्न'कल से तुम्हें प्रातःकालीन प्रवचनों संकलन करना है।' अपनी अक्षमता देखते हुए मेरा आत्म-विश्वास सह यह दायित्व ओढ़ने की स्वीकृति नहीं दे पाया। पर साथ ही गुरुदेव निर्देश को अस्वीकार करने की भी मेरी मानसिकता नहीं थी। तत्क चिंतन आया कि जब गुरुदेव का आशीर्वाद मेरे साथ है, फिर मैं क्षम अक्षमता की चिंता करूं।

बस, दूसरे दिन से प्रवचन-संकलन का कार्य प्रारंभ हो ग अभ्यास और अनुभव की कमी के कारण प्रारंभ में काफी कठिनाई र पर मानसिक संकल्प मुझे इस दिशा में सतत प्रवृत्त रहने के लिए प्रे करता रहा। लगभग दो माह का प्रवचन-संकलन मैंने आचार्यवर निवेदित किया। उसे देखकर उसमें रही त्रुटियों का दिग्दर्शन करवाते उन्होंने जो-कुछ कहा, वह मेरे उत्साह को द्विगुणित करनेवाला था।

एक-डेढ़ वर्ष तक यह क्रम चलता रहा। मैं चाहता था कि यह आगे से आगे बढ़ाता रहूं, पर अस्वास्थ्य का इतना बड़ा अवरोध सा उपस्थित हो गया कि मुझे अपनी भावना के प्रतिकूल यह कार्य करना पड़ा। अलबत्ता अस्वास्थ्य में भी जैसे-तैसे पिछले प्रवचनों व्यवस्थित कर सका, यह भी मेरे लिए कम तोष का विषय नहीं था

वर्षों का समय व्यतीत हो गया। यह प्रवचन-संचलन *जैन वि भरती* की अलमारियों में पड़ा रहा। इस बार वि. सं. २०४३ का पाव प्रवास करने आचार्यवर लाडनूं पधारे। वही *जैन विश्वभारती* का प्रांग वही 'भिक्षु-विहार' का दक्षिणाभिमुख बरामदा। वही संध्याकाल प्रतिक्रमण के पश्चात चरण-वंदन का समय। प्रवचन-संकलन की चल पड़ी। प्रसंगवश मैंने निवेदन कियाह्न'प्रवचन-संकलन की पुर फाइलें पड़ी हैं। यदि वह संकलन संपादित कर दिया जाए तो उस समुचित उपयोग हो सकता है।' चूंकि आचार्य श्री के साहित्य-संपा का कार्य मुख्य रूप से महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी क हैं, इसलिए मेरा निवेदन उन्हीं के लिए था। पर आचार्य श्री

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाह्न'नहीं, वे नहीं करेंगी। तुम्हारा संकलन तुम्हें ही संपादित करना है।'
सामने बड़ी कठिनाई थी। संपादन का कोई अनुभव नहीं और
ास्थ्य की प्रतिकूलता। मैंने अपनी स्थिति निवेदित की। आचार्य श्री ने
ाह्न'अनुभव तो काम करते-करते ही होगा। स्वास्थ्य अभी अनुकूल
ं है तो कोई बात नहीं, जब ठीक हो, तब करना। पर यह कार्य करना
हें ही है।'

लगभग छह माह का समय शारीरिक अस्वस्थता से जूंझते हुए
न गया। बार-बार मन में यह बात आती कि आचार्यप्रवर का निर्देश
फिर भी कार्य नहीं कर रहा हूं, यह मेरे लिए शोभनीय नहीं है।
खिर लाडनूं चातुर्मास की संपन्नता के पश्चात आचार्यवर सुजानगढ़
ो हुए चाड़वास पधारे। स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार था। मैंने निर्णय
याह्नअब कैसी भी स्थिति क्यों न हो, मुझे यह कार्य करना है। और
चार्यवर के मंगल आशीर्वाद के साथ मैंने कार्य प्रारंभ कर दिया।
चन पाथेय का यह चौथा भाग उसका ही फलित है। इस कार्य की
न्नता के साथ मैं अपनी संपादन-यात्रा की जितनी मंजिल तय कर
ा हूं, उससे बहुत अधिक अभी अवशिष्ट है। पूज्य गुरुदेव का
दहस्त मेरे सिर पर है। उसकी छत्र-छाया में मैं अपनी यह यात्रा
र्विघ्न संपन्न कर सकूंगाह्नऐसा विश्वास है।

परमाराध्य गुरुदेव मेरे जीवन-निर्माता हैं, संयम-प्रदाता हैं। उनके
णों में अपना जीवन समर्पित कर मैं निश्चिंत हूं, कृतार्थ हूं। जब जीवन
समर्पित कर चुका, तब उनके प्रति शाब्दिक कृतज्ञता-समर्पण बहुत
टी बात है। गुरुदेव का तो मंगल आशीर्वाद ही काम्य है। इस
शीर्वाद के संरक्षण में मैं उनके हर इंगित, आदेश व निर्देश को
र्पित भाव से आकार देता रहूं, यही उनके प्रति कृतज्ञता होगी।

संघ-परामर्शक मुनि श्री मधुकर जी का सतत सान्निध्य मेरे जीवन
महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। समयोचित प्रेरणा, निर्देश और मार्गदर्शन द्वारा
होंने मुझे जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी का अत्यंत कृतज्ञ हूं,
न्होंने न केवल अपने अनुभवपूरित सुझावों से मुझे लाभान्वित किया,
पितु साध्वी निर्वाणश्री जी को अन्यान्य कार्यों से मुक्त कर इस कार्य
सहयोग करने के लिए नियोजित भी किया। साध्वी निर्वाणश्री जी मेरी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संसार-पक्षीया बहिन हैं। पर इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे जीवन-विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों में प्रेरक और पूरक रही हैं। संपादन-कार्य में भी उनका जो सहयोग/सहकार मिला है, मिल रहा वह अत्यंत मूल्यवान है। पर इसके लिए मैं उनका आभार मानूंह्न उनके लिए अरुचिकर है। और फिर इस निमित्त वे स्वयं लाभान्वित हैं, हो रही हैंह्नयह स्वयं अपने-आपमें आभार ही है।

आचार्यप्रवर के प्रवचन सर्वतनहिताय हैं। सहस्रों-सहस्रों लोगों उनके संबोधन से संबोधि प्राप्त की हैह्नयह एक तथ्य है। पर इससे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मैं स्वयं इससे बहुत अधिक लाभान्वित हु हूं। प्रवचनों के संकलन-संपादन के निमित्त मुझे ज्ञान के अथाह सागर बार-बार डुबकियां लगाने का अवसर प्राप्त हुआ है। यह मेरे जीवन लिए एक वरदान है। यह वरदान प्राप्त कर मैं अपने-आपको अत सौभाग्यशाली महसूस करता हूं। मेरा यह सौभाग्य जन-जन का सौभ बने, उसे सोच-समझ की सही दिशा प्राप्त हो, जीवन जीने की स कला उपजब्ध होह्नइसी ललक के साथ........

चूरू (राजस्थान) **ह्नमुनि धर्मस**

२४ फरवरी १९८७

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रकाशकीय

प्रवचन पाथेय यथा नाम तथा गुण, राष्ट्रसंत आचार्य तुलसी प्रवचनों का संकलन पाठकों के लिए उनके व्यक्तित्व-निर्माण का पाथेय इन प्रवचनों के माध्यम से आचार्यश्री ने अपनी दीर्घकालीन अध्यात साधना के अनुभवों का, जो जीवन के सर्वांगीण विकास के मार्गदर्शक त हैं, सांगोपांग निरूपण किया है।

जिस प्रकार ॐ शब्द की भाषा के विस्तीर्ण की कोई सीमा नहीं हो उसी प्रकार भाषा के व्यापकता की भी कोई सीमा नहीं होती, कोई बं नहीं, केवल एक ही बंधन है अध्यात्म। आचार्य तुलसी के प्रवचन इ अध्यात्म से प्रतिबंधित हैं एवं प्रस्तुत ग्रंथावली उसी भाषा का संग्रह अध्यात्म को सहज ग्राह्य बनाने में आचार्यश्री ने अपनी वाणी द्व विविध प्रस्तुतियों के माध्यम से गूढ़ रहस्यों को सामान्य भाषा में प्रस्तु किया है।

जैन विश्वभारती द्वारा प्रकाशित साहित्य की शृंखला में प्रवच साहित्य का विशेष महत्त्व है। इसी क्रम में यह प्रवचन पाथेय भाग-८ दूसरा संस्करण आपके लिए प्रस्तुत है, जो अपने आपमें इसकी उपयोगि एवं महत्त्व को उजागर करता है।

मेधासंपन्न मुनिश्री धर्मरुचिजी ने इस प्रकाशन के संपादन में श्रमशीलता का परिचय दिया है, उसके लिए श्रद्धा-आभार व्यक्त है।

आशा है, पाठकगण अपन जीवन के निर्माण में इस साहित्य से दिश दर्शन प्राप्त करेंगे।

जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)
२४ जुलाई १९९२

श्रीचंद बैंग
मंत्री
जैन विश्व भार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनुक्रम

१.	धर्म संप्रदाय की चौखट में नहीं समाता	१
२.	संसार क्या है	६
३.	धर्मास्तिकाय : एक विवेचन	८
४.	अधर्मास्तिकाय की स्वरूप-मीमांसा	११
५.	आकाशास्तिकाय का स्वरूप	१४
६.	लोक-स्थिति : एक विश्लेषण	१८
७.	सृष्टि क्या है	२०
८.	सृष्टिवाद : एक पर्यालोचन	२२
९.	पुद्गल का स्वरूप	२४
१०.	पुद्गल के लक्षण	२५
११.	पुद्गल की विभिन्न परिणतियां	२६
१२.	क्या अंधकार पुद्गल है	३१
१३.	क्या छाया स्वतंत्र पदार्थ है	३३
१४.	परमाणु का स्वरूप	३८
१५.	परमाणु : एक अनुचिंतन	४०
१६.	परमाणु-संश्लेष की प्रक्रिया	४३
१७.	काल	४४
१८.	काल के लक्षण	४७
१९.	षड्द्रव्यों की स्थिति	५०
२०.	पुद्गल, धर्म व अधर्म की स्थिति	५२
२१.	संसार में जीव की अवस्थिति	५३
२२.	द्रव्य के सामान्य गुण (१)	५८
२३.	द्रव्य के सामान्य गुण (२)	६२
२४.	द्रव्य के विशेष गुण (१)	६४
२५.	द्रव्य के विशेष गुण (२)	६९

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पर्याय : लक्षण व प्रकार (१)	७१
पर्याय : लक्षण व प्रकार (२)	७४
नव तत्त्व	७८
उपयोग के दो प्रकार	८०
ज्ञान और अज्ञान : एक विमर्श	८२
मतिज्ञान के प्रकार	८५
श्रुतज्ञान	९२
श्रुतज्ञान के प्रकार	९६
अवधिज्ञान के प्रकार	९९
मनःपर्यायज्ञान के प्रकार	१०५
केवलज्ञान	१०८
दर्शन और उसके प्रकार	११०
इंद्रिय के प्रकार	११४
इंद्रियों के विषय	११९
मन : एक मीमांसा	१२४
भाव : आत्मा का स्वरूप	१२८
भाव और कर्म	१३०
औदरिक भाव	१३२
औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव के प्रकार	१३५
औदरिक भाव के प्रकार (१)	१३९
औदरिक भाव के प्रकार (२)	१४३
पारिणामिक भाव के प्रकार	१४६
रिशिष्ट	
शब्दानुक्रम	२३७
नामनुक्रम	
पद्यानुक्रम	
कथाओं/घटनाओं/दृष्टांतों की सांकेतिका	
पारिभाषिक कोश	
प्रेरक वचन	

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१ : धर्म संप्रदाय की चौखट में नहीं समाता

जैन-दर्शन भारतीय दर्शनों में एक प्रमुख दर्शन है। वस्तुतः यह बहुत गहरा दर्शन है। जीव से लेकर मोक्ष तक की अत्यंत सूक्ष्म वैज्ञानिक चर्चा इस दर्शन में प्राप्त होती है। मैं चाहता हूं, कहलानेवाला हर व्यक्ति, चाहे वह भाई हो या बहिन, एक सीमा जैन-दर्शन का ठोस ज्ञान अवश्य करे, अन्यथा वह अपने धर्म व दर्शन प्रति न्याय नहीं कर सकता। चिंतन आया कि चातुर्मास-काल के प्रवास में यदि जैन-सिद्धांतों का विवेचन हो तो स्थानीय लोगों के यह उपक्रम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसी दृष्टि से *जैनसिद्धांतदीपिका* का वाचन प्रारंभ कर रहा हूं।

दर्शन : धर्म : संप्रदाय

दर्शन, धर्म और संप्रदायह्नये तीन अलग-अलग शब्द हैं। द यानी दृष्टि/देखना। जब तक किसी वस्तु का साक्षात नहीं देख लि जाता, तब तक सुने-सुनाए या पढ़े-पढ़ाए के आधार पर उसे जान अधूरा दर्शन है। परंतु देखने का तात्पर्य केवल आंखों से देखना नहीं वह तो बहुत स्थूल दर्शन है। वास्तव में तो आत्मा से साक्षात देखना देखना है, दर्शन है। हमारे तीर्थंकर द्रष्टा थे। द्रष्टा किसी के आधार कुछ नहीं कहते, वे तो स्वयं आत्मा से साक्षात देखते हैं और उसका विवेचन जन-साधारण के सामने करते हैं। इस अपेक्षा से द्रष्टा ऋषियों, महार्षियों या तीर्थंकरों की वाणी *दर्शन* कहलाती है।

तीर्थंकरों द्वारा जो कुछ बताया गया, उसके अनुसार जीवन व्यवहार करना *धर्म* कहलाता है। दूसरे शब्दों में जीवन के च लक्ष्यह्नमोक्ष तक पहुंचने के लिए किया जानेवाला आचरण *धर्म* है।

संप्रदाय का अर्थ हैह्न गुरुक्रम। एक व्यक्ति कोई रास्ता निकाल है और फिर अनेक व्यक्ति उस रास्ते पर चलने लगते हैं।संख्या बढ़

•

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ते उनका एक समूह बन जाता है और वही संप्रदाय कहलाता है। कुछ ग संप्रदाय को धर्म की आराधना का एकमात्र आधार मानते हैं तो के विपरीत कु छ लोग संप्रदाय को धर्माराधना में सर्वथा बाधक तत्त्व नते हैं। मैं इन दोनों चिंतनों को एकांगी मानता हूं। मेरी दृष्टि में ांततः सप्रंदाय न तो धर्म की आराधना में साधक है और न ही धक । जहां व्यक्ति अकेला साधना करता है, वहां संप्रदाय बाधक ता है। पर अकेले रहकर साधना करनेवाले साधक बहुत थोड़े ही हो कते हैं, क्योंकि इसमें कठिनाइयां बहुत हैं। आम लोगों के लिए तो मूहिक साधना का क्रम ही सुविधाजनक एवं श्रेयस्कर है; और इस । में सप्रंदाय की बहुत बड़ी उपयोगिता है।

कुछ लोग धर्म और संप्रदाय को एक ही मानते हैं। पर तत्त्वतः धर्म र सप्रंदाय दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं । धर्म आत्मा है तो संप्रदाय ोर। जिस प्रकार आत्मा शरीर में रहती है, उसी प्रकार धर्म संप्रदाय रहता। जिस प्रकार आत्म-विहीन शरीर का संसार में कोई अस्तित्व ां, उसी प्रकार धर्म के बिना संप्रदाय की मूल्यवत्ता ही क्या !

एक व्यक्ति ने मुझसे कहाह्न'आचार्यजी ! धर्म के क्षेत्र में भिन्न-न्न इतने संप्रदाय नहीं होने चाहिए, क्योंकि सब अपनी-अपनी बात ते हैं, अलग-अलग बात करते हैं। ऐसी स्थिति में हम लोगों के मने बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है कि हम किसकी बात मानें और सकी न मानें।' और भी बहुत-से लोगों के मन में यह बात हो सकती इसका समाधान स्पष्ट है। कलकत्ता, बंबई आदि शहरों में कपड़े की ारों-हजारो दुकानें हैं। उनकी बात हम छोड़े, बीकानेर की ही बात लें। ां पर भी कपड़े की संभवतः सैकड़ों दुकाने होंगी। सभी दुकानवाले ना-अपना कपड़ा दिखाते हैं, अपनी-अपनी बात बताते हैं। क्या यह ाहकों के लिए एक बड़ी उलझन नहीं है? इतनी दुकानें न होकर यदि ह ही दुकान होती तो अच्छा नहीं होता? पर वास्तविकता किसी से ी नहीं है। यदि पूरे बीकानेर में कपड़े की एक ही दुकान हो जाए तो ाहकों को बड़ी परेशानी हो जाएगी। सैकड़ों दुकानों के रहने से कोई ठिनाई नहीं है। हां, ग्रहक को इस बात का निर्णय अवश्य करना होता कि कौन-सा कपड़ा ठीक है और उसे कहां से लेना है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सत्य संप्रदाय-विशेष की बतौती नहीं

यही बात संप्रदायों के बारे में है। भिन्न-भिन्न संप्रदाय अपन
अपनी बात कहते हैं और भिन्न-भिन्न रूपों में कहते हैं। यह निर्णय
व्यक्ति को अपने चिंतन से करना होगा कि उसे किस संप्रदाय
स्वीकार करना है। पर एक संप्रदाय को स्वीकार करने का तात्पर्य
कदापि नहीं कि व्यक्ति दूसरे-दूसरे संप्रदायों के सत्य के प्रति आंखे
ले। वस्तुतः सत्य/ज्ञान अनंत है। वह किसी संप्रदाय-विशेष की बपौ
नहीं है। हमारा काम है, जहां भी सत्य मिले, उसे सहर्ष ग्रहण करें।

एक व्यक्ति असत्य न बोलने का संकल्प करता है। क्या यह
नहीं है ? चाहे किसी संप्रदाय को माननेवाला व्यक्ति इस संकल्प को
यह धर्म ही है। आप बताएं, कौन संप्रदाय सत्य को धर्म के सूत्र के
में स्वीकार नहीं करता ? सभी संप्रदाय सत्य की साधना का धर्म
मानते हैं। जो संप्रदाय सत्य को धर्म-तत्त्व के रूप में स्वीकार
करता, वह वास्तव में संप्रदाय है ही नहीं।

सांप्रदायिक विद्वेष का आदि बिंदु

संप्रदाय में सत्य है, पर संप्रदाय ही सत्य नहीं है। संप्रदाय
बाहर भी अनंत-अनंत सत्य विद्यमान हैहृइस तथ्य को स्वीकार
चलने से हमारे सामने कोई कठिनाई या उलझन पैदा नहीं होत
कठिनाई या उलझन वहीं शुरू होती हैं, जहां व्यक्ति अपने संप्रदाय
सत्य को कैद कर देता है। वस्तुतः सांप्रदायिक विद्वेष का प्रारंभ इ
बिंदु से होता है।

सत्यग्राही दृष्टिकोण अपनाएं

जो संप्रदाय परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं, उन्हें धर्म-संप्रदाय कहल
का अधिकार ही नहीं मिलना चाहिए। यद्यपि हर व्यक्ति अपने ध
संप्रदाय के सत्य को जन-जन तक पहुंचाने के लिए स्वतंत्र है, तथ
इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह दूसरे-दूसरे संप्रदायों के स
को अस्वीकार करे। उन पर मनगढ़ंत और मिथ्या आरोप लगाए
जहां दृष्टिकोण होता है, वहां भिन्न-भिन्न संप्रदाय होकर भी परस्पर व
वैमनस्य नहीं होता। इसके विपरीत जहां दृष्टिकोण सांप्रदायिक होता
वहां सत्य की हत्या हो जाती है और अपने-अपने अहं का पोषण ह
लगता है। इसकी परिणति होती हैहृटकराव। अपेक्षा है, सांप्रदा

•

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मोह से दूर रहकर सत्यग्राही दृष्टिकोण अपनाया जाए। इसी में क्ति, संप्रदाय व धर्म का हित निहित है।

हम मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते। पर इसका यह तात्पर्य नहीं हम मूर्तिपूजक समाज की आलोचना करें, उस पर गलत आक्षेप-प करें। हां, हम अपने विचार दृढ़ता के साथ जनता के सामने रखने स्वतंत्र हैं। मुझसे बहुधा पूछा जाता है कि आप मूर्ति को मानते हैं या ां। आचार्य भिक्षु से भी यही प्रश्न किसी ने पूछा था। इसके समाधान उन्होंने कहाह्न'हम मूर्ति और पत्थर की मूर्ति को पत्थर की मूर्ति मानते ' तब दूसरा प्रश्न किया गयाह्न'आप मूर्ति को भगवान मानते हैं या ां ? इस बार प्रश्न का समाधान प्रतिप्रश्न की शैली में दिया ाह्न'क्या आप भगवान मानते हैं ? उत्तर मिलाह्नहम मूर्ति को भगवान ां, भगवान की प्रति कृति मानते हैं। आचार्य भिक्षु ने कहाह्नमूर्ति को वान की प्रतिकृति तो हम भी मानते है।

बंधुओं ! मैं मूर्ति को अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण मानता हूं। हमें तथ्य को स्वीकार करना होगा कि मूर्ति में इतिहास और स्थापत्य ना भरी पड़ी है। एकाग्रता एवं स्मृति में भी वह निमित्त बन सकती है। मूर्तिपूजक होते हुए भी ये बातें कहने में मुझे कोई संकोच नहीं हैं

र्म कहीं भी किया जा सकता है

वस्तुतः मूर्ति कोई पूजने की वस्तु नहीं, अपितु प्रेरणा लेने की तु है। हालांकि कोई मूर्ति की पूजा करता है, उसमें मैं हस्तक्षेप नहीं ता। हां, यदि कोई मेरे से इस संबंध में परामर्श करे और विचार नना चाहे तो मैं उसे अपने विचार देने को तैयार हूं। इस संदर्भ में बात और स्पष्ट कर दूं। पूजा नहीं करने का यह तात्पर्य नहीं कि मैं दिर में जाना ही पाप मानता हूं। मेरी दृष्टि में मंदिर में जाने या न जाने धर्म का कोई सीधा संबंध नहीं है। धर्म तो आत्मा का तत्त्व है। वह दिर में भी किया जा सकता है घर व दुकान में भी किया जा सकता इसके विपरीत यदि कोई न करना चाहे तो न घर पर कर सकता र न मंदिर में कर सकता। कहने का सारांश यह है कि आदमी करना हे तो कभी और कहीं धर्माराधना कर सकता है और न करना चाहे अच्छे-से-अच्छे समय और पवित्र-से-पवित्र स्थान में भी धर्म की ाधना नहीं कर सकता।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनाग्रही दृष्टि

मैं अपनी बात बताऊं । मैं अनेक बार मंदिरों में गया हूं। और ग
ही नहीं हूं, वहां जाकर मैंने भगवान की स्तुति भी की है। मंदिरों में
क्यों में तो मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारों में भी गया हूं। मुझे इ
कोई कठिनाई महसूस नहीं होती। हां, जो लोग मुझे एकांत सांप्रदाय
दृष्टिकोण से देखते हैं, वे लोग ऐसा सोचते हैं कि मैं मंदिर, मस्
आदि में नहीं जा सकता।

आपने मेरी नाक रख ली

लगभग पचीस-तीस वर्ष पूर्व मैं जयपुर में प्रवास कर रहा था।
दिगंबर भाई प्रायः प्रतिदिन प्रवचन सुनने आता था। यहां सुनी हुई ब
को वह फिर अपने दूसरे-दूसरे साथियों को भी सुनाता था। प्रतिदिन
भांति वह एक दिन आया और बोलाह्न‘आचार्यजी ! आपको मंदिर चल
होगा’। मैंने कहाह्नमंदिर मैं जाने में मुझे कोई दिक्कत नहीं, पर अ
जाना कठिन लगता है उसने आग्रह की भाषा में कहा नहीं आपको अ
ही चलना होगा। मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया आज का आग्रह
करो। और कभी मैं चल सकता हूं। आज जाने में असुविधा बहुत है
पर उसका आग्रह और तीव्र हो गया आपको सुविधा हो या असुवि
पर मेरी यह बात तो स्वीकार करनी ही होगी।’

मैं उसके अति आग्रह को टाल नहीं सका। असुविधा के बावजूद
मंदिर गया और वहां जाकर मैंने भगवान की स्तुति गाई। जब मैं मं
से बाहर आया तो वहां भाई भी साथ-साथ बाहर आया। बाहर आते
उसने भवविह्वल स्वर में कहाह्न‘आचार्यजी ! आज तो आपने मेरी न
रख ली।’ मैं उसके कथन का आशय नहीं समझ सका। प्रश्नायित नय
से मैंने पूछाह्नकैसे ? तब उसने रहस्य पर से परदा उठाया आज
और मेरे साथियों के बीच एक जिद हो गई थी। मैंने कहा कि आचार्य
मंदिर में आ सकते हैं और साथियों का कथन था कि वे किसी हालत
मंदिर में आना स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए मैंने आपसे यहां अ
का इतना आग्रह किया था। यह सुनकर मुझे उस भाई के साथियों
सोच पर बहुत तरस आया। मैंने कहा यदि यह बात तुम पहले ही ब
देते तो शायद मैं और जल्दी आ जाता। खैर जो हुआ वह ठीक हैं।

बंधुओ! मैं नहीं समझता मंदिर, मस्जिद...... में जाना कोई पाप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उससे मूर्ति न पूजने का विश्वास खंडित होता है। मैंने अतीत में इस र में अनेक बार स्पष्ट शब्दों में अपने विचार जनता के सामने रखे हैं र अब भी जब-कभी प्रसंग उपस्थित होता है, मैं इस संदर्भ में अपने चार प्रस्तुत करता हूं, ताकि लोगों में भ्रांतियां न फैलें।

व्यक्ति एक संप्रदाय में खड़ा रहकर दूसरे-दूसरे संप्रदायों के द्धांतों का अध्ययन कर सकता है और सत्य को ग्रहण कर सकता है। प देखें, हम एक संप्रदाय (जैन श्वेतांबर तेरापंथ) के साधु हैं। पर यदि ई चाहे तो आज हमारे अनेक साधु सांख्य, वेदांत, बौद्ध आदि दर्शनों अधिकारपूर्ण भाषा में वक्तव्य दे सकते हैं।

ूरी जानकारी

प्रसंगवश एक बात और कहना चाहता हूं दर्शन का विषय-क्षेत्र त गहन और सूक्ष्म है। इसलिए इस क्षेत्र में काम करनेवालों को यह ा ध्यान रखना चाहिए कि जब तक उन्हें जिस विषय की पूर्ण और ार्थ जानकारी न हो, तब तक वे उस विषय पर अपनी कलम न ाएं। बड़े-बड़े विद्वान भी कभी-कभी विषय की पूरी एवं यथार्थ नकारी के अभाव में उस विषय के साथ न्याय नहीं कर पाते। यदि कराचार्य का उदाहरण हमारे सामने है। अद्वैतवाद के वे प्रवर्तक थे। की विद्वत्ता में मुझे कोई संदेह नहीं। पर स्याद्वाद के बारे में वे भी ाय नहीं कर सके। उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री स्व. डॉ. संपूर्णानंद विशिष्ट विद्वान एवं कट्टर अद्वैतवादी थे। मैं लखनऊ गया, तक से मिलना हुआ। मैं उनकी कोठी पर रात-भर रहा। दर्शनिक साहित्य चर्चा करते हुए मैंने पूछाह्न'आदि शंकराचार्य के बारे में आप क्या रणा रखते हैं।'

छूटते ही वे बोले भयंकर विद्वान थे वे।' तब मैंने पूछा स्वाद्वाद के र में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह कहां तक यथार्थ है?'

यद्यपि डॉ. संपूर्णनंद आदि शंकराचार्य के अनन्य भक्त थे, तथापि का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। इसलिए उन्होंने बड़ी ऋजुता के साथ ीकार कियाह्न'इस विषय पर वे यथार्थ नहीं लिख पाए।'

इनका संभावित कारण उन्होंने यह बताया कि उन्हें इस विषय की ा एवं यथार्थ जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी होगी। जब आदि कराचार्य जैसे धुरंधर विद्वान भी पूरी और यथार्थ जानकारी के अभाव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में किसी विषय का गलत प्ररूपण कर सकते हैं, तब साधारण विद्व
की तो बात ही क्या। इसलिए मैंने कहा कि जिन लोगों को दार्शनि
विषयों की यथार्थ व पूर्ण जानकारी न हो, उन्हें इस विषय पर कल
चलाने का संवरण करना चाहिए।

मैंने सुना है कि कुछ विद्वान जैन-आगमों का अंग्रेजी भाषा
अनुवाद करने का प्रयास कर रहे है। प्रयास सुंदर है। पर जैन-आगमों
तलस्पर्शी ज्ञान के अभाव में वे सही-सही कहां तक कर कर पाएंगे।
एक बडा प्रश्नचिह्न है उनके प्रति मेरे मन में बहुत ऊंची भावना है।
दिशा में उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। पर अनेक स्थलों
उनका अनुवाद भी आलोच्य है।

जैन-दर्शन की बात मैं कर रहा था। सचमुच ही यह एक वैज्ञानि
दर्शन है। हालांकि जैन लोग दर्शन को कितना आत्मसात करते हैं,
एक अलग प्रश्न है, तथापि इसका अंयंत आवश्यक है, यह निर्विवाद
जैसा कि मैं कई बार कहा करता हूं, आज कर्मणा जैन कम, जन्मना
अधिक हैं। इसलिए जैन कहलानेवाले बहुत कम लोग इस द
आत्मसात कर पाए हैं। मेरा प्रयास है कि हर जैन कहलानेवाला व्यि
जैन-दर्शन का प्रारंभिक ज्ञान तो अवश्य करे। इस दृष्टि
जैनसिद्धांतदीपिका का विवेचन अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगाह्नइसी आ
के साथ आज मैं विराम लेता हूं।

गंगाशहर
११ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२ : संसार क्या है

जैनसिद्धांतदीपिका के वाचन की बात मैंने कल कही। आज उसका र्भ हो रहा है। इस ग्रंथ की रचना मैंने आज से अट्ठाइस-तीस वर्ष की । जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह जैन-सिद्धांतों का ग्रंथ है। प्रथम मंगलाचरण आदि वाक्य के रूप में निम्नांकित श्लोक हैह्न

आराध्याराध्यदेवं स्वं, सिद्धं सिद्धार्थनन्दनम्।
विदधे बोधवृद्ध्यर्थं, जैनसिद्धान्तदीपिकाम्।।

ह्न आराध्यदेव, सिद्धिप्राप्त, सिद्धार्थपुत्र भगवान महावीर की आराधना करता हुआ मैं बोधवृद्धि के लिए *जैनसिद्धांतदीपिका* की रचना करता हूं।

आप पूछ सकते हैं कि बोधवृद्धि से क्या तात्पर्य जो अबोध हैं, हें बोध देने के लिए जो अल्पबोध हैं, उनके बोध को पढ़ाने के लिए र जो बोधप्राप्त हैं उनके बोध को स्थिर रखने के लिए मैं यह प्रयास रहा हूं।

नौ ही तत्त्व हैं

सबसे पहले हमें यह समझना चाहिए कि संसार क्या है,। हमारा न्य क्या है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के साधन कौन-कौन से हैं। आप गे। संसार को जानने से क्या प्रयोजन। बहुत बड़ा प्रयोजन है। जिस में हम रहें और उससे अपरिचित हों, इससे बड़ा और क्या अज्ञान सकता है ! आप देखें, मनुष्य की तो बात ही क्या, पशु-पक्षी और ड़े-मकोड़े भी अपने घर को जानते हैं। अतः जिस घर में हम रहते हैं, जानना बहुत जरूरी है। यह संसार एक प्रकार का घर ही है। यदि संसार को सम्यक रूप से जान लेंगे तो बहुत संभव है कि हम में उलझेंगे नहीं। संसार में उलझने का कारण उसको यथार्थ रूप में जानना ही है। उसका सम्यक ज्ञान होने के पश्चात व्यक्ति उससे मुक्त

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

होने के लिए सचेष्ट हो जाता है।

हमें इस तथ्य को भली-भांति ध्यान में ले लेना चाहिए कि हर प का प्रतिपक्ष होता है। दुःख है तो सुख भी है। जीव है तो अजीव भी आश्रव है तो संवर भी है। मोक्ष है तो संसार भी है। प्रतिपक्ष को ज बिना हम पक्ष को नहीं जान सकेंगें। पक्ष को जानने के लिए हमें उस प्रतिपक्ष को अनिवार्य रूप से जानना होगा। हम सुख को तब तक न जान सकेंगे, जब तक दुःख को सम्यक रूप से नहीं जानेंगे। मोक्ष जानने के लिए संसार को जानना ही होगा। हमारे यहां नौ तत्त्वों विवेचन है। उनमें से कुछ हेय हैं और कुछ उपादेय। पर ज्ञेय नौ ही त हैं। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से संसार हेय है और मोक्ष उपादेय है, तथ ज्ञेय दोनों ही हैं। इस दृष्टि से मैंने कहा कि मोक्ष को समझने के लि संसार को समझना आवश्यक है।

द्रव्य, गुण और की समन्विति का नाम संसार है। द्रव्य य पदार्थ। संसार की हर वस्तु एक पदार्थ है। गुण अर्थात द्रव्य का स साथ रहनेवाला धर्म या स्वभाव। अग्नि का धर्म हैह्नउष्मा। जल का ध हैह्नशीतलता। वायु का धर्म हैह्नगतिशीलता। इसी प्रकार हर द्रव्य अपना स्वभाव या धर्म है। पदार्थ में प्रतिक्षण होनेवाला परिवर्तन 'पय कहलाता है। संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसमें परिवर्तन न हो यदि उसमें परिवर्तन हो तो वह पदार्थ ही नहीं है।

धर्माधर्माधिकाश-पुद्गल-जीवास्तिकाया द्रव्याणि।

आस्तिकायः प्रदेशप्रचयः। धर्मादयः पञ्चास्तिकायाः सन्ति।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिक और जीवांसितकायह्नये पांच द्रव्य हैं। मूलतः धर्म, अधर्म, आका पुद्गल और जीवह्नये पांच शब्द हैं। इस सबको पीछे *अस्तिकाय* श है। इस प्रकार ये पंचास्तिकाय हैं। जैन-शास्त्रों में पंचास्तिकाय का वि विवेचन प्राप्त है। दिगंबर जैनाचार्य श्री कुंदकुंद का एक ग्रंथ है। उस नाम ही पंञचिंस्तिकाय है। उस ग्रंथ में उपर्युक्त पांच अस्तिकायों विवेचन किया गया है। इन पांचों को हम द्रव्य कहते हैं।

आप कहेंगे कि पचीस बोल ग्रंथ के अंतर्गत बीसवें बोल में ह तो छह द्रव्य सीखे हैं, फिर यहां पांच द्रव्य कैसे। यह कोई भूल नहीं ऐसा अर्गीकरण चिंतनपूर्वक ही किया गया है। छह द्रव्यों के अंतर्गत

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

व अस्तिकायों के अतिरिक्त काल को भी साथ रखा गया है। पर ने इसे अलग अलग रखा है, क्योंकि यह अस्तिकाय नहीं है। वस्तुतः ल एक औपचारिक द्रव्य है। शेष पांच द्रव्य जिस प्रकार वास्तविक हैं, यह वास्तविक नहीं है। घड़ी की बड़ी सुई एक बार पूरी घूम आई र आपने एक घंटा मान लिया।

कालश्च।

जीवाजीवपर्यायत्वात् औपचारिकं द्रव्यमसौ, इत्यस्य पृथग् ग्रहणम्। क्षणवर्तित्वान्न च आस्तिकायः।

काल जीव और अजीव का पर्याय है। जीव या अजीव जिन विभिन्न स्थाओं में परिवर्तित होते हैं, उनका कारण काल ही है। एक दिन, दो , संसार क्या है ? एक महीना एक वर्ष....... ये सब काल के कारण हैं। अमुक व्यक्ति पांच वर्ष का हो गया दस वर्ष का हो गया अमुक ान बीस वर्ष पुराना है आदि-आदि हम काल के कारण ही जानते हैं, ापि काल स्वयं में कुछ भी नहीं है। इसलिए इसे औपचारिक या ल्पनिक द्रव्य कहा गया है और पांच अस्तिकाय द्रव्यों से अलग रखा ा है।

अस्तिकायः प्रदेशप्रचय ह्नप्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं। न होगा, प्रदेश किसे कहते हैं। प्रदेश का अर्थ हैंह्नअवयव/भाग। यह ल आपके सामने है। यह एक द्रव्य है। इसमें छोटे-छोटे हजारों धागे । आप कल्पना से प्रत्येक धागे को एक प्रदेश मान लें तो बहुत-से श मिलकर एक द्रव्य का निर्माण हो गया। हमारे शरीर में छोटे-छोटे तने अंग-प्रत्यंग हैं। इन सबके योग का नाम ही शरीर है। जिस पंडाल आप बैठे हैं, उसकी तरफ आप जरा ध्यान दें। मैं पूछना चाहता हूं, ा यहां बिछाई हुई मिट्टी पंडाल है ? आप कहेंगे नहीं। फिर क्या ऊपर छप्पर पंडाल है ? नहीं। क्या ये खंभे पंडाल हैं ? नहीं, ये भी पंडाल ां हैं। फिर क्या यहां बैठ हुए हजारों नर-नारियां पंडाल हैं? नहीं-नहीं, भी पंडाल नहीं है। आखिर पंडाल है क्या ? वास्तव में ये सब चीजें लग-अलग रूप में पंडाल नहीं हैं। इनका समन्वित रूप ही पंडाल है। सारी चीजें पंडाल के अंग हैं। इसी प्रकार बहुत-से प्रदेशों के समूह नाम अस्तिकाय है । एक प्रदेश से अस्तिकाय नहीं बनता।

ाशहर, १२ जुलाई १७७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३ : धर्मास्तिकाय : एक विवेचन

पांच अस्तिकाय और कालह्नइन छह द्रव्यों का विवेचन मैंने प्रा
किया था। अस्तिकाय में दो शब्द हैंह्नअस्ति और काय। अस्ति श
प्रदेश एवं सतह्नइन दो अर्थों में व्यवहृत होता है।

प्रदेश का विवेचन पहले किया जा चुका है। सत त्रैकालि
अस्तित्व का अभिव्यंजक शब्द है। इसलिए अस्ति से केवल वर्तमान
ही भूत और भविष्य का भी अर्थ ग्रहण करना चाहिए। उदाहरण
संसार है। यह अतीत में सदा था और आगे सदा रहेगा। हम जीव
अतीत में जीव थे और सदा जीव बने रहेंगे। यह कभी संभव नहीं कि
आज जीव है, वह कल न रहे या गए कल में न रहा हो। हां,
अवश्य है कि उसका रूप प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। आज
जिस अवस्था में हैं, अतीत में वैसे नहीं थे, भविष्य में वैसे नहीं रहें
इसके बावजूद हमारा त्रैकालिक अस्तित्व है। इसलिए मैंने कहां, सत
(वर्तमान), था (भूत) और रहेगा (भविष्य)ह्नइस त्रयात्मक रूप
अभिव्यक्त करनेवाला शब्द है।

काल की मुल्यवत्ता

पांच अस्तिकायों को समझना उतना कठिन नहीं है, जितना कठि
काल को समझना है। काल क्षणवर्ती है। अर्थात वर्तमान का क्षण
काल है। जो काल बीत गया, उस पर हमारा कोई अधिकर नहीं। उ
हम पकड़ नहीं सकतें। भविष्य का कुछ भरोसा नहीं। उदाहरणार्थ, कि
व्यक्ति की उम्र आज साठ वर्ष की है। मैं पूछना चाहता हूं, साठ
कहां गए ? क्या उसके पास सुरक्षित हैं ? बिलकुल नहीं। भविष्य में
कितने वर्ष और जिएगाह्नइसका कोई पता नहीं है। केवल आज का दि
नहीं-नहीं, वर्तमान का केवल एक क्षण उसके हाथ में है। यह (वर्तमा
क्षण गया कि दूसरा क्षण आया। दूसरा क्षण आया कि पहला क्ष

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

माप्त। उसका कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता। इसी प्रकार आनेवाले ा का भी पहले क्षण तक कोई अस्तित्व नहीं होता। इसलिए कहा गया काल क्षणवर्ती है। अतीत और भविष्य से उसका विसंबंध है, लिए वह 'सत' नहीं है।

यद्यपि काल केवल क्षणवर्ती है, फिर इसके प्रति बहुत सावधानी ने की अपेक्षा है। औपचारिक द्रव्य होने के बावजूद इसका महत्व सी दृष्टि से कम नहीं आंकना चाहिए। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, नया, ना आदि जीव-अजीव की जितनी भी अवस्थएं हम देखते हैं, वे सभी ी के कारण होती हैं। इसके बिना किसी का काम नहीं चलता। छोटा णवर्ती) होते हुए भी यह बहुत सक्षम है। छोटा तो अणु (एटम) भी ा है। पर उसकी शक्ति कितनी बड़ी होती है, यह आज के वैज्ञानिक में सर्वविदित है।

य का स्वरूप

गुणपर्यायाश्रयो द्रव्यम्।

गुणानां पर्यायाणां च आश्रयःह्नआधारो द्रव्यम्।

गुण और पर्यायों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। अर्थात जिसमें ा और पर्याय दोनों हों, वह द्रव्य है। जिसमें ये दोनों नहीं हैं। वह य नहीं है।

द्रव्य के धर्म या स्वभाव को गुण कहते हैं।

द्रव्य में क्षण-क्षण होनेवाली परिणतियां पर्याय कहलाती हैं।

आपको यह ख्याल में रखना चाहिए कि हर वस्तु का अपना तंत्र धर्म होता है। उसे मिटाने का तात्पर्य हैह्नउस वस्तु की समाप्ति । ाहरणार्थ, अग्नि का स्वभाव हैह्नउष्णता। यह कभी संभव नहीं कि ग्नि तो हो और उसमें अष्णता न हो। अग्नि द्रव्य है और उष्णता ाका गुण। गुण और गुणी दोनों कभी अलग-अलग नहीं हो सकते। ास्थानी में कहावत हैह्न

जाका पड्या स्वभाव, जासी जीव स्यूं।
नीम न मीठो होय, सींचो गुड-घीव स्यूं।।

यानि जिसका जो स्वभाव है, गुण है, वह उसके जीवन के साथ सामाप्त होगा, पहले नहीं। नीम के वृक्ष को चाहे कोई गुड-घी से भी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्यों न सींचे, वह कभी मीठा नहीं हो सकता। उसका कड़वापन क
समाप्त नहीं हो सकता।

अग्नि की तरह पानी का स्वभाव हैह्नशीतलता। हवा का स्वभ
हैह्नगतिशीलता। क्रोधी का स्वभाव हैह्नक्रोध करना। लोभी का स्वभ
हैह्नसंग्रह करना। इसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु का अपना स्व
स्वभाव है।

जैसा कि मैं पहले स्पष्ट कर चुका हूं, द्रव्य में गुण और पय
दोनों का होना अनिवार्य है। गुण वस्तु का स्वभाव है तो पर्याय उ
प्रतिक्षण होनेवाला परिवर्तन है। उदाहरणार्थ, यह सफेद कपड़ा है। इस
गुण हैह्नसफेदी। इसका पर्याय हैह्नइसकी सफेदी में प्रतिक्षण होनेवा
परिवर्तन। जैसी सफेदी इस कपड़े को लेने के वक्त थी, वैसी अब न
है। प्रतिक्षण इसमें परिवर्तन होता है और भविष्य में होता रहेगा।

एक शब्द : अनेक अर्थ

पांच अस्तिकाय द्रव्यों में सबसे पहला द्रव्य हैह्नधर्मास्तिकाय। ध
शब्द कई अर्थों में व्यवहृत होता है। **आत्मशुद्धिसाधनं धर्मःह्न**आत्मशु
का साधन धर्म है। वस्तु के स्वभाव/गुण को भी धर्म कहते हैं। लौकि
कर्तव्य भी इसका एक अर्थ है। पर प्रस्तुत संदर्भ में यह इन सब
सर्वथा अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यहां इसका वाच्यार्थ हैह्न

गतिसहायो धर्मः।

गमनप्रवृत्तानां जीवपुद्‌गलानां गतौ उदासीनभावेन अनन
सहायकं द्रव्यं धर्मास्तिकायः, यथाह्नमत्स्यानां जलम्।

गति में सहायक होनेवाले द्रव्य को धर्म कहते हैं। गति-सहा
द्रव्य का अधूरा नाम धर्म है। पूरा नाम धर्मास्तिकाय है आप पूछेंगे
अधूरा नाम क्यों। अधूरा नाम इसलिए कि इसमें सुविधा है। फिर
हमारी प्राचीन पद्धति भी रही है। भगवान महावीर के प्रथम गणधर
नाम इंद्रभूति गौतम था। पर आप ध्यान दें आगम/साहित्य में सैक
स्थलों पर उनके लिए केवल गौतम (गोयमा) शब्द व्यवहृत हुआ
गौतम अधूरा नाम भी नहीं, केवल उनका गोत्र था, फिर भी उन्हें इ
नाम से पुकारा गया हैं। मैं अपना नाम तुलसी बताता हूं। पर मेरा प
नाम तुलसी नहीं, तुलसीराम है। हमारे धर्मसंघ के आद्य प्रणेता
आचार्य भीखणजी कहते हैं। पर वास्तव में उनका पूरा नाम भीखण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ां, अपितु भीखणचंद जी या भीखमचंद जी था। इस शृंखला में और अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सारांश यह है कि जब दो-तीन क्षर बोलने से काम चले फिर कौन छह-सात अक्षर बोले ?

र्मास्तिकाय का स्वरूप

हां, तो मैं बता रहा था गतिसहायक द्रव्य का नाम धर्म र्मास्तिकाय) है। आप पूछेंगे की जिज्ञासा होगी कि धर्म किसकी गति सहायक होता है। 'किसकी' का कोई प्रश्न ही नहीं है। जीव और गल दोनों की सभी प्रकार की गतिक्रियाह्नसूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पंदन तक में सहयोगी है। हम चलते हैं, सोते हैं, बैठते हैं, हाथ हिलाते हैं, आंखें करते हैं, खोलते हैं, खाते हैं, पीते हैं...... श्वास लेते और छोड़ते इन सब क्रियाओं में यह द्रव्य सहायक है। इसी प्रकार अजीव की भी ी प्रकार की गतिक्रियाओं में यह द्रव्य निमित्तभूत है।

ादान और निमित्त

हम जानते हैं कि कारण के दो प्रकार हैंह्नउपादान और निमित्त। सी भी चीज के निर्माण में ये दोनों कारण जरूरी हैं। जिस प्रकार मित्त कारणों के मिलने पर भी उपादान कारण के अभाव में वस्तु नहीं ती, ठीक उसी प्रकार उपादान कारण की उपस्थिति के बावजूद निमित्त रणों के अभाव में भी कार्य सिद्ध नहीं होता। मिट्टी से घड़ा बनता है। ट्टी घड़े का उपादान कारण है। मिट्टी के बिना घड़े की कल्पना ही नहीं जा सकती। पर मिट्टी से घड़ा तब तक नहीं बनेगा, जब तक निमित्त रणों के रूप में चाक, अग्नि, कुशल कुंहार..... नहीं मिलेंगे। दोनों रणों के योग से ही कोई वस्तु निर्मित होती है।

यद्यपि गति में उपादान कारण तो जीव व पुद्गल स्वयं ही हैं, पर मित्त कारण के रूप में धर्मास्तिकाय का अपना अलग महत्व है। (और अनेक निमित्त कारण हो सकते हैं, पर मुख्य कारण यही है।) र्मास्तिकाय के अभाव में जीव और पुद्गल किसी भी प्रकार की तिक्रिया करने में असमर्थ हैं। मछली में गति करने की शक्ति है। पर ी के अभाव में वह गति नहीं कर सकती। ट्रेन में चलने की शक्ति पर पटरी के अभाव में वह चल नहीं सकती । ठीक यही बात र्मास्तिकाय के संबंध में जाननी चाहिए। प्राणी और पुद्गल में गति ने की शक्ति है। पर वे गतिक्रिया तभी कर सकते हैं, जब उन्हें

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

धर्मास्तिकाय का अनिवार्य रूप से सहयोग प्राप्त हो।

इस संदर्भ में एक बात और ज्ञातव्य है। यद्यपि धर्मास्तिकाय सहयोग से ही कोई जीव या पुद्गल गतिक्रिया कर सकता है, पर किसी को गति करने के लिए प्रेरित नहीं करता। हां, कोई उस सहयोग ले तो वह इनकार भी नहीं करता। मध्यस्थ भाव से सहयोगी बनता है। इसलिए धर्मास्तिकाय को जीव और पुद्गल की ग में उदासीन भाव से अनन्य सहयोगी के रूप में स्वीकार किया गया

मरने के बाद गति!

मैं तो धर्मास्तिकाय के द्वारा गति की बात बता रहा था, पर लो तो मरने के बाद भी गति करते हैं। मैं पूछना चाहता हूं, मरने के ब कैसी गति ? वह तो मरने के साथ ही हो जाती है। हां अंतिम समय यह प्रयास करना तो उचित ही है कि काल प्राप्त करनेवाला सद्परिण में शरीर त्याग करें, जिससे उसकी अधोगति न हो। पर मरने कि बाद गति करने की बात समझ में नहीं आती। समझ में आए या आए, पर लोगों में यह अंधविश्वास बहुत हैं। इस अंधविश्वास मिटाना बहुत जरूरी है।

सद्गति : दुर्गति

संत के पास एक युवक आया और बोलाह्न‘मेरे पिताजी काल-' को प्राप्त हो गए, अतः आप ऐसा प्रयास करें, जिससे उनकी सद्ग हो।' संत ने कहा ‘मरने के बाद कैसी गति वह तो उनके कर्मों अनुसार हो गईं।'

पर वह युवक अपनी बात को दोहराता रहा। संत के मन आयाह्नयह ऐसे नहीं समझेगा। इसे तो युक्ति से समझना होगा। उन्ह युवक से कहाह्न‘अच्छा, जाओ और दो घड़े ले आओ, एक कंकर-पत से भर कर और दूसरा घी से भरकर।'

युवक तत्काल घर गया और संत के आदेशानुसार दोनों घड़े ले पुनः उनके चरणों में उपस्थित हो गया । तब संत ने उसे निर्देश दि ‘जाओ, इन दोनों को नदी में उड़ेल दी। युवक को कुछ भी समझ में न आया। जरा हैरानी के स्वर में उसने संत पूछाह्न‘इन्हें नदी में उड़ेलने उद्देश्य ? संत ने पहेली की भाषा में कहाह्नगति करने के लिए।' यु समाहित होने के स्थान पर और अधिक उलझ गया। इसके बाव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क समाहित होने के स्थान पर और अधिक उलझ गया। इसके वजूद पिता की सद्गति की ललक में उसने दोनों घड़े ले जाकर र्ववर्ती नदी में उड़ेल दिए। उड़ेलते ही कंकर-पत्थर सारे नीचे चले गए र घी पानी के ऊपर तैरने लगा। संत युवक के साथ ही नदी के तट आए थे। वे ऊचे स्वर में बोलेह्न'अरे ! ये कंकर-पत्थर डूब रहे हैं, हें बचाओ।

युवक तपाक से बोलाह्न'महाराज! ये तो भारी हैं, डूबेंगे ही। इन्हें ने बचाया जा सकता है ! घी हलका हैं, इसलिए वह तैरने लगा, डूबा ीं। संत ने प्रश्न की भाषा में कहाह्न'तत्त्व समझे या नहीं ?' 'मैं तो छ नहीं समझा।' उसकी आंखों में जिज्ञासा प्रतिबिंबित हो रही थी। तब मर्म का उद्घाटन करते हुए प्रतिबोध की भाषा में बोलेह्न'जिस प्रकार कर-पत्थर अपने भारीपन के कारण डूब गए और घी अपने हलकेपन कारण तैरने लग गया, ठीक इसी प्रकार तुम्हारे पिता की गति भी हो । यदि उनकी आत्मा कर्मों से भारी है तो उन्हें सद्गति कैसे मिलेगी? के विपरीत यदि वे कर्मों से हलके हैं तो उनकी सद्गति को कौन रोक गा ? वस्तुतः गति करने-करवाने से नहीं होती; वह तो व्यक्ति के यं के कर्मों के अधीन है।'

विवेक चिंतन को महत्त्व दें

बंधुओ ! यही बात में आपसे कह रहा था। हर व्यक्ति की गति के स्वकृत कर्मों के द्वारा होती है। वह भी उसके मरने के साथ ही हो ती है। बाद में उसकी गति करने का प्रयास तो सर्वथा अज्ञान ही है। छ लोग अपने पिता, पितामह आदि की मृत्यु के पश्चात मृत्युभोज ते हैं। मैं नहीं समझता, हलवा-पूड़ी तो दूसरे-दूसरे खाएं पेट पिता या ामह का भरे, यह कहां का न्याय । यह बात तो समझ में आ सकती कि व्यक्ति ने अपने पिता, पितामह के स्वर्गवास के प्रसंग पर अपने ंधियों को इकट्ठा किया और उनके खाने-पीने आदि की व्यवस्था की। इससे काल-प्राप्त उसके पितामह को तृप्ति मिलेगीह्नऐसा चिंतन तो था नासमझी की बात प्रतीत होता है। समाज में इस प्रकार के एक- नहीं, अपितु अनेकानेक अंधविश्वास पल रहे हैं। यद्यपि पिछले वर्षों में *ुव्रत* एवं नयामोड़ के माध्यम से इस दिशा में समाज ने काफी वट ली है, फिर भी संतोषजनक स्थिति नहीं है। अब भी बहुत

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परंपराओं को परिवर्तित, संशोधित एवं समाप्त करने की अपेक्षा है। इस संदर्भ में स्थूल रूप में आपसे एक ही बात कहना चाहता हूं किसी भी कार्य के करने में आप चालू परंपरा से भी अधिक महत्त्व अ सविवेक चिंतन को दें। सब लोग इस कार्य को करते हैं और करते अ हैं, इसलिए आप भी करें तथा सभी लोग इसे छोड़ रहे हैं, इसलिए अ भी इसे छोड़ेंह्नये दोनों बातें चिंतन की परिचायक नहीं हैं।

महिलाएं पौरूष को जगाएं

विधवा बहिनों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता हैह्नयह अ लोगों से छिपा नहीं है। पति गुजर गया, इसलिए महीनों एवं वर्षों त घर से बाहर नहीं जानाह्नइस रूढ़ि का कोई औचित्य समझ में न आता। क्या कोई पुरुष अपनी पत्नी के देहावसान के पश्चात इस प्रक घर में रहने को तैयार है ?

कहते हैं कि विधवा बहिन जब कपड़े बदलती है तो उसे कोई दे नहीं सकता । सुहागिन बहिनों की बात तो बहुत बाद है, घर के बाल बच्चे तक भी उसे नहीं देख सकते। मुझे बताया गया कि बड़ी निर्दय के साथ उसके कपड़े उतारे जाते हैं। यहां तक कि मानवीय व्यवहार सीमा का भी अतिक्रमण हो जाता है। मैं नहीं समझता, विधवा होनेवा बहिन का ऐसा क्या दोष है, जिसके कारण उसके साथ ऐसा आमानव व्यवहार किया जाता है। क्या सधवा रहना या विधवा होना किसी के व की बात है?

समाज में विधवा बहिनों के साथ आज भी ऐसा अन्याय होता यह आश्चर्य की बात है। परंतु इससे भी अधिक आश्चर्य तो मुझे इ बात का होता है कि बहिनें इस अन्याय और अभिशाप को वर्षों से स किए जा रही हैं। क्या उनमें थोड़ी-सी भी चेतना नहीं है ? क्या उन स्वाभिमान सर्वथा सो गया है ? मैं मानता हूं इन कुरूढ़ियों को मिटाने लिए बहिनों को ही क्रांति करनी होगी। यदि बहिनें दृढ़ संकल्प के स इस अभिशाप को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो जाएं तो कोई कारण न कि ऐसी परंपराएं स्वयं अपनी मौत समाप्त न हो जाएं। पर बहिने अ तक अपने पौरुष को जगा नहीं पाई हैं। मुझे तो यहां तक कहने कठिनाई नहीं कि इस गलत परंपराओं को बहिनें स्वयं अपने अज्ञान कारण पोषण दे रही हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ले कपड़े छोड़े दो!

अजमेर में मैं एक सड़क से होकर गुजर रहा था । कुछ बहिनें भी ले कपड़े पहिने साथ थीं। सामने से एक वर राजा आ रहा था। ज्यों उसने काले कपड़ों वाली बहिनों को दूर से देखा, वह अपशकुन से ने के लिए तत्काल एक तरफ टल गया। उन काले कपड़ोवाली विधवा हिनों के पीछे कुछ विधवा बहिनें सफेद कपड़ों में भी थी। वर राजा ने हें भी देखा, पर उनसे बचने का उसने कोई प्रयास नहीं किया। मेरे में तत्काल चिंतन आया कि बहिनें काले वस्त्र पहनकर स्वयं अपना मान करवाती है। स्थान पर आकर मैंने विधवा बहिनों को संबोधित ते हुए कहाह्नबहिनो! तुम काले कपड़े पहनना छोड़ दो। ये काले कपड़े ा दूसरे-दूसरे लोगों के लिए अपशकुन हैं। या नहीं पर तुम लोगों के ए तो निश्चय ही अपशकुन हैं। इस बात के साथ ही मैंने आज की री घटना सुनाई।

य जीवन की पवित्रता का

मैं जब विहार करता हूं तो हमारी विधवा बहिनें सुहागिन बहिनों आगे कर देती हैं और स्वयं पीछे हट जाती है। एक दिन मैंने इसका रण पूछा तो उन्होंने कहाह्नये सुहागिन बहिनों आपको शकुन देंगी। मैंने टकर पूछाह्न'क्या तुम अपशकुन देती हो? तुम सात्त्विक और पवित्र वन जीती हो, धर्म की आराधना करती हों, फिर तुम्हारा अपशकुन ना? बंधुओ! मेरी दृष्टि में विधवा और सुहागिन होने का उतना महत्त्व ां, जितना जीवन की पवित्रता एवं धर्माराधना का है।

धर्मास्तिकाय की गति की बात कहते-कहते मैं प्रवाह में बह गया। मैं जानता हूं, ये बातें भी समय-समय पर प्रवचन में अपनी आवश्यक मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक समाज कुरूढ़ियों एवं अंधविश्वासों मुक्त नहीं होगा तब तक उसका विकास असंभव है। इसलिए मैंने गवश ये सारी बातें कही। आप लोग इन पर गहराई से विचार करें र कुरूढ़ियों से समाज को मुक्त करने की दिशा में अपने चिंतन एवं वेक को काम में लें। इसमें न केवल आपका और पूरे समाज का ही ा है,अपितु धर्म, धर्मगुरु और धर्मशासन का भी हित एवं गौरव ाविष्ट है।

ाशहर, १५ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४ : अधर्मास्तिकाय की स्वरूपह्नमीमांसा

पांच अस्तिकाय द्रव्यों के अंतर्गत *धर्म* का विवेचन कल मैंने किय
दूसरा आस्तिकाय द्रव्य हैह्न*अधर्म* ।

स्थितिसहायोऽधर्मः।

स्थानगतानां जीवपुद्गलानां स्थितौ उदासीनभा
अनन्यसहायकं द्रव्यं अधर्मास्तिकायः, यथाह्नपथिकानां छाया।

जीवपुद्गलानां गतिस्थित्यन्यथानुपपत्तेः, वाय्वाद
सहायकत्वेऽनवस्था-दिदोषप्रसङ्गाच्च धर्माधर्मयोः सत्त्वं प्रतिपत्तव्य
एतयोरभावादेव अलोके जीवपुद्गलादीनामभावः।

जीव और पुद्गलों की स्थिति में सहायक होनेवाले द्रव्य को *अ*
कहते है। जिस प्रकार *धर्म* जीव व पुद्गलों की गति में उदासीन भाव
अनन्य सहयोगी है, उसी प्रकार *अधर्म* जीव व पुद्गलों की स्थिति
उदासीन भाव से अनन्य सहयोगी द्रव्य है। आपका प्रश्न हो सकता
कि गति में तो दूसरे के सहयोग की अपेक्षा की बात समझ में आती
पर स्थितिह्नठहरने में भी दूसरे के सहयोग की अपेक्षा की बात का व
तात्पर्य हां, जिस प्रकार गतिकार्य में सहयोग अपेक्षित है, उसी प्रव
स्थिति में भी अनिवार्य रूप से सहयोग अपेक्षित है। एक व्यक्ति चल
चलते थक गया। वह विश्राम करना चाहता है। लेकिन चारों तरफ धू
ही-धूप है। इसलिए वह ठहर नहीं पाता। चलता ही जाता है। अ
चलते-चलते कहीं मार्ग में छाया आ जाती है। छाया आते ही वह ठ
जाता है। यद्यपि ठहरने में उपादान कारण, जैसा कि मैंने कल भी बत
था, मूल होता है, तथापि निमित्त कारणों का भी कम महत्त्व नहीं है। रो
बनाने के लिए आटा उपादान कारण है उसके अभाव में रोटी की कल्प
ही नहीं की जा सकती । पर केवल आटे से तो रोटी नहीं बनती उ
लिए चूल्हा, तवा, बेलन, चकला...... बहुत-सी चीजों निमित्त कारण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

। में विद्यमान हो जरूरी हैं। *अधर्म* को भी हमें इसी रूप में समझना हिए। यद्यपि स्थिति में उपादान कारण तो जीव या पुद्गल स्वयं है, ापि निमित्त कारण के रूप में पथिक के लिए छाया की तरह *अधर्म* योगी है। जीव व पुद्गलों की स्थिति उसके बिना कदापि संभव नहीं इसलिए *अधर्म* को जीव और पुद्गलों की स्थिति में मध्यस्थ भाव अनन्य सहयोगी माना गया है।

र्थंकरों की वाणी यथार्थ क्यों

हमारे सामने यह विवशता है कि हम धर्म और अधर्म को आंखों देख नहीं सकते, क्योंकि ये दोनों अमूर्त द्रव्य हैं। इसके बावजूद हमें के अस्तित्व पर विश्वास करना चाहिए । आगम-साहित्य में पृष्ठ-के-ठ इनके विवेचन से भरे पड़े हैं। आगमों के प्रवचनकार केवलज्ञानी थे। होंने अपने आत्मज्ञान के द्वारा जो देखा, वही संसार को बताया। लिए आगम-वाणी की यथार्थता में संदेह करने की किंचित भी गुंजाइश ीं है। झूठ कौन बोलता है ?

क्रोधाद् वा लोभाद् वा हासाद् वा वाक्यमुच्यते ह्ऽनृतम्।
यस्यतु नैते दोषाः तास्याऽनृतं करणं किं स्यात् ?

ह्न व्यक्ति क्रोध, लोभ और हास्य के वशीभूत होकर झूठ बोलता है। जिस व्यक्ति में ये दोष नहीं, वह झूठ क्यों बोलेगा?

हमारे आगम-प्रवचकार वीतराग प्रभु भी इन सब दोषों से सर्वथा त हैं। अतः उनकी वाणी असत्य कैसे हो सकती हैं? इसके साथ ही बात यह भी महत्वपूर्ण है कि जब उनकी और-और बातें सत्य साबित हैं तो इस कथन की यथार्थता में संदेह कैसे किया जा सकता है?

तीर्थंकरों ने कहा, बोलने के साथ ही हमारे शब्द सारे लोक में न जाते हैं। उनके इस कथन को दूसरे-दूसरे लोग मानने को तैयार ीं थे। पर आज उनकी यह बात शत-प्रतिशत सत्य हो रही है। रेडियो का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह प्रमाण है उनकी सर्वज्ञता का। दूसरा ाहरण बताऊं। जैन तीर्थङ्करों ने वनस्पति को सजीव बताया। पर लोग स्पति को सजीव नहीं मानते थे। उनको तीर्थङ्करों का यह कथन थार्थ प्रतीत होता था। पर जब डॉ. जगदीशचंद्र बसु ने एक लंबे ाय के अनुसंधान के पश्चात यह प्रमाणित किया कि वनस्पति भी जीव उसमें भी सुख-दुःख की अनुभूति है, वह हंसती है, रोती है तब

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लोगों को तीर्थंकरों की वाणी की यथार्थता को स्वीकार करना पड़ा। इ
तरह की एक-दो नहीं, अपितु बीसियों बातें बताई जा सकती हैं, जि
लोग यथार्थ नहीं मानते थे, पर वे वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा शतशः स
साबित हुई हैं। इस माने में हमें विज्ञान का ऋणी रहना चाहिए। साथ
हमें अपनी कमजोरी भी ऋजुतापूर्वक स्वीकार करनी चाहिए कि हम उ
बातों को यथार्थ मानते हुए भी प्रयोग के धरातल पर सत्य साबित क
में असफल रहे ।

जैन-तीर्थङ्करों की वाणी की यथार्थता में आज संदेह करने की क
कोई गुंजाइश नहीं रही है। अतः *धर्म* और *अधर्म* के अस्तित्व
नकारने का कोई कारण नहीं है।

वस्तु के अस्तित्व का आधार

धर्म व अधर्म यद्यपि हमें दिखाई नही देते, फिर भी उन्हें अस्वीक
न करने का एक कारण यह भी है कि उनके गुण हमारे सामने प्रत्
है। गुणी के बिना गुण का कोई अस्तित्व नहीं होता। इस दृष्टि से ज
धर्म और *अधर्म* के गुण हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं तो उनके अस्तित्व
स्वीकार करना ही होगा। एक व्यक्ति हमें दिखाई नहीं देता, पर उस
आवाज सुनाई देती है। ऐसी स्थिति में क्या हम उस व्यक्ति के अस्ति
को नकार सकेंगें ? कभी नहीं। इसलिए दिखाई देने या न देने की ब
किसी वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार करने और न करने के लि
अनिवार्य शर्त नहीं हो सकती।

आगमकार कहते हैं, *धर्म* और *अधर्म* के अस्तित्व को स्वीक
करना चाहिए, अन्यथा जीवों और पुद्गलों की गति और स्थिति नहीं
सकती । कहा जा सकता है कि गति में तो वायु, पानी आदि
सहयोगी हैं, फिर धर्म को ही सहयोगी क्यों माना जाए। यहां प्रतिप्र
पैदा होगा, वायु तो स्वयं गतिशील है, ऐसी स्थिति में वायु की गति
कौन सहयोगी है। यदि यह कहा जाए कि सूक्ष्म वायु तो पुनः प्रश्न हो
कि सूक्ष्म वायु की गति में सहयोगी कौन। इस प्रकार हम चलते
जाएं, पर कहीं अंत नहीं होगा और ऐसा करने से *अनवस्था दोष*
जाएगा। इसलिए हमें कोई-न-कोई ऐसे द्रव्य को स्वीकार करना ही हो
जो स्वयं स्थिर होकर दूसरों को गति दे। आपको ख्याल होना चाहिए
गतिशील पदार्थ कभी दूसरों को गति प्रदान नहीं कर सकता। सि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र्थ ही दूसरों को गति प्रदान कर सकता है। पटरी रेलगाड़ी को गति
ान करती है, पर वह स्वयं स्थिर होती है। यदि वह स्वयं गतिशील
जाए तो गाड़ी की कैसी गति होगी, इसे बताने की अपेक्षा नहीं ये
ढियां हमारे चढ़ने-उतरने में सहयोगी बनती हैं। पर सहयोगी तभी हैं,
स्वयं स्थिर है। यदि स्वयं गतिशील हो तो ये हमारे चढ़ने-उतरने में
योगी नहीं बन सकतीं। इसलिए लोक के सभी जीवों और पुद्‌गलों की
में *धर्म* के अस्तित्व को मानना ही होगा। इसी प्रकार जीवों और
गालों की स्थिति में *अधर्म* के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा।
र्म और *अधर्म* स्वयं अगतिशील द्रव्य हैं।)

लोक में *धर्म* और *अधर्म* दोनों सर्वत्र व्याप्त हैं। अलोक में केवल
काश है। जीवों और पुद्‌गलों का वहां सर्वथा अभाव है। पूछा जा
कता है कि ऐसा क्यों। इसका समाधान यही है कि अलोक में *धर्म* व
र्म नही हैं तथा दोनों ही *धर्म* एक *अधर्म* के अभाव में वह न गति
ति है । यदि अलोक में और इन दोनों *धर्म* व *अधर्म* होता तो वहां
जीव व पुद्‌गल अवश्य होते। पर ऐसी स्थिति में वह अलोक होता ही
ां। वह अलोक इसी लिए तो है कि वहां आकाश के सिवाय और कुछ
नहीं है।

धर्म व *अधर्म* दोनों द्रव्यों की अपेक्षा से एक-एक द्रव्य, क्षेत्र की
टि से, जैसा कि अभी-अभी बताया, लोकपरिमाण हैं। यानी ये दोनों
लोक में व्याप्त है। काल की दृष्टि से ये आनादि-अनंत और भाव की
टि से अरूपी हैं।

ाशहर
, जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५ : आकाशास्तिकाय का स्वरूप

पंचास्तिकाय द्रव्यों के प्रतिपादन के क्रम में *धर्म* और *अधर्म* विवेचन मैंने पिछले प्रवचनों में किया। तीसरा द्रव्य हैह्नआकाश।

अवगाहलक्षण आकाशः।

आवगाहःह्नअवकाशः, आश्रयः स एव लक्षणं यस्य आकाशस्तिकायः। दिगपि आकाशविशेषः न तु द्रव्यांतरम्।

आकाश को सभी दर्शन और दार्शनिक मानते हैं। कोई ऐसा द या मत नहीं हैं, जो आकाश के अस्तित्व को नकारता हो। अद्यपि अ द्रव्य होने के कारण हम आकाश को अपनी आंखों से नहीं देख सक फिर भी उसका अस्तित्व जाना जा सकता है। अवगाह एक ऐसा लक्ष है, जो आकाश के अस्तित्व को प्रकट करता है। अवगाह का अ हैह्नअवकाश/आश्रय। यदि आकाश नहीं तो हम कहां ठहरें ? संसार सभी जड़-चेतन पदार्थों को आश्रय देनेवाला तत्त्व आकाश ही है।

आकाश कहां है

आप पूछेंगे, आकाश कहां है। मैं जूछता हूं आकाश कहां नहीं और यह प्रतिप्रश्न ही पूर्व प्रश्न का उत्तर है। कहां है, यह प्रश्न त पूछा जा सकता है, जब पदार्थ कहीं हो और कहीं न हो। पर जो च सर्वत्र व्याप्त हो, उसके लिए यह प्रश्न कोई अर्थ नहीं रखता। आक समूचे लोक और अलोक में व्याप्त है। आकाश को नीला कहा जाता पर यह साहित्य की भाषा है, आगम की नहीं। आगम की भाषा आकाश अरूपी है। फिर वह नीला कैसे हो सकता है? हमें आक नीला दिखाई देता है, उसका कारण दूरी है। निकट जाने पर वह नी नहीं रहता। दूसरी बात यह है कि दिखाई देनेवाला वस्तुतः आकाश न अपितु परमाणु-पिंड है।

दिशाएं क्या है

आकाश को कोई जाने या न जाने, पर दिशाओं को तो स

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नते हैं। *जैन-आगमों* में चार, दश, अठारह दिशाओं का वर्णन प्राप्त इनमें मुख्य चार ही हैंह्नपूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर। इनको चानने का सीधा-सा तरीका हैह्नसूर्य उदय हो, उस ओर मुंह कर खड़े पर सामने की ओर पूर्व, पीठ की ओर पश्चिम, दाहिने हाथ की ओर तण और बायें हाथ की ओर उत्तर होता है। प्रश्न है कि दिशाएं क्या क्या ये स्वतंत्र द्रव्य हैं। नहीं, ये स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं, आकाश के ही भिन्न विभाग हैं।

त्मवाद का आदि बिंदु

पूछा जा सकता प्रश्न है कि दिशाओं के प्रयोग का उद्देश्य क्या है। का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। मैं कहां से आया हूं और मौत के पश्चात हां जाऊंगा, यह प्रश्न ही आत्मवाद का आदि बिंदु है। कोई प्राणी आज म लेता है, इसका अर्थ है कि वह आज से पहले अन्यत्र कहीं अवश्य और मरने के पश्चात अन्यत्र कहीं अवश्य जाएगा। जैन-दर्शन आत्मा त्रैकालिक अस्तित्व को स्वीकार करता है। ऐसा कोई समय अतीत में आया और न भविष्य में कभी आएगा, जब आत्मा आत्मा न रहे।

ादि की आदि कैसी

आप की जिज्ञासा हो सकती है पूछेंगे, क्या जैन-दर्शन पूर्वजन्म र पुनर्जन्म को मानता है? हां, मानता है। पर इस प्रश्न का उत्तर लना असंभव है कि आत्मा का जन्म कब हुआ। मैं तो क्या, आज क कोई केवलज्ञानी या तीर्थङ्कर भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। र उत्तर दें भी कैसे? जिसका प्रारंभ है ही नहीं, उसका प्रारंभ कैसे ाया जाए? सांचे में ढली चूड़ी का कोई छोर पूछे तो क्या बताया जा कता है? नहीं बताया जा सकता। उसका छोर है ही नहीं। जिस वस्तु छोर है ही नहीं, उसका यदि छोर निकाला जाएगा तो क्या वह सत्य नहीं होगा? छोर उसी का निकाला जा सकता है, जिसका छोर । प्रारंभ उसी का बताया जा सकता है, जिसका प्रारंभ हो । इसलिए कहा, आत्मा का प्रारंभ हुआ, यह नहीं बताया जा सकता। ांतकाल से वह जन्म-मरण करती रही है।

प्रश्न होगा, क्या कोई आत्मा जन्म-मरण से सर्वथा मुक्त हो कती है। हां, ऐसा दिन आ सकता है, जब कोई आत्मा जन्म-मरण की खला को तोड़ दे। आपकी जिज्ञासा होगी, यह कैसे संभव है। यह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

साधना, तपश्चर्या सब उसी के लिए ही तो है। आप लोग प्रति
हजारों की संख्या में उपस्थित होकर प्रवचन सुनते हैं, यह भी उ
जन्म-मरण की शृंखला को तोड़ने की दिशा में एक प्रयत्न है।

दुःख सबसे बडा भय

जन्म-मरण से हम छुटकारा क्यों चाहते हैं, इसका समाध
इतनासा ही है कि जन्म-मरण बहुत बड़ा दुःख है और दुःख से ब
संसार में कोई दूसरा भय नहीं है।

संसार में सबसे बड़ा भय क्या है, यह प्रश्न एक बार भगव
महावीर ने अपने समवसरण में साधु-साध्वियों के बीच उठाया। यद्
प्रश्न कोई गहरा नहीं है, पर प्रश्नकर्ता बहुत गहरे थे। इसलिए इंद्रभ
गौतम-सहित सभी साधु-साध्वियां चिंतन में पड़ गईं। सभी ने सोचा
भगवान जब प्रश्न पूछ रहे हैं तो यह कोई सामान्य प्रश्न नहीं हो सक
जरूर कोई रहस्यमय प्रश्न है। परिणामतः किसी साधु-साध्वी ने इ
प्रश्न का उत्तर देने के लिए अपने-आपको प्रस्तुत नहीं किया। आखि
साधु-साध्वियों की मनःस्थिति का प्रतिनिधित्व करते हुए इंद्रभूति गौ
ने भगवान को सविधि वंदना कर निवेदन किया भंते ! हम इस प्रश्न
समुचित उत्तर नहीं जानते। यदि आपको तनिक भी कष्ट न हो, श्रम
हो तो हम आपके मुखारविंद से ही इसका समाधान सुनना चाहते है
भगवान ने कहाह्ननहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं, मैं समाधान देना चाहता
तब इंद्रभूति गौतम ने करबद्ध प्रार्थना कीह्न

भंते ! आप अनुग्रह करें। प्रार्थना स्वीकार कर भगवान ने समाध
दियाह्न'संसार के प्राणियों के लिउए दुःख सबसे बडा भय है।'

अहिंसा और मैत्री : धर्म की बुनियाद

बंधुओ! संसार का कोई भी प्राणी दुःख नहीं चाहता। स
सुखाकांक्षी हैं। इस दुःख-मुक्तिअ व सुख-प्राप्ति की आकांक्षा में जै
अजैन, हिंदू, मुसलमान का कोई भेद नहीं हैं। मनुष्य ही न
पशुह्नपक्षियों, पेड़ह्नपौधों-सहित समस्त जीव-जगत दुःख-मुक्ति व सुख
प्राप्ति की अभीप्सा से बंधा हुआ है। पर मजे की बात यह है कि व्यक्ति
को स्वयं के सुख में दूसरों के दुःख का अनुभव नहीं होता। स्वयं
दुःख को वह बहुत देख लेता हैं, पर दूसरों को भी दुःख होता है,
बात उसकी समझ में नहीं आती। इसीलिए भगवान महावीर ने क

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रों के दुःख समझो। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक दूसरों को ख न देने की बात को समझना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। अर्हत् ना में हम गाते हैंह्र**पुरिसा ! तुमंसि नाम सच्चेव, जं हंतव्वं ति नसि।** पुरुष ! वह तू ही है, जिसे तू मारना चाहता है। किसी को रकर आदमी सोचता है कि वह मर गया। पर नैश्चयिक सचाई यह है मारनेवाला तो कदाचित पर भी सकता है और कदाचित नहीं भी मर कता, किंतु मारनेवाला तो निश्चित रूप में मर गया आप पूछेंगे कि ा क्यों ऐसा इसलिए कि मारनेवाले के परिणाम यदि शुद्ध हैं, तो वह कर भी दुर्गति में नहीं जाएगा, मारनेवाले ने तो उसका घात कर ने को पाप-कर्मों से भारी बना ही लिया। उन कर्मों को भुगतने के ए उसे नरक में भी जाना पड़ सकता है। इसलिए यह सिद्धांत अत्यंत त्त्वपूर्ण है कि दूसरों को दिया जानेवाला दुःख स्वयं का दुःख बनता दूसरों को पहुंचाई गई पीड़ा स्वयं की पीड़ा बनती है। भगवान ावीर ने इस सूत्र का प्रतिपादन कर समूचे प्राणी-जगत के साथ अपना दात्म्य स्थापित कर लिया। काश ! अहिंसा और मैत्री के इस सिद्धांत मानव जाति समझ पाती। पशु-पक्षी जगत को हम यह सिद्धांत नहीं झा सकते यह हमारी मजबूरी है, पर मनुष्य को भी यह सिद्धांत नहीं झा सकेह्रयह हमारी कितनी बड़ी कमजोरी है ! बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जो बात व्यक्ति स्वयं के लिए नहीं चाहता वही बात दूसरों लिए करते हुए उसे जरा भी संकोच और दर्द नहीं होता! व्यक्ति स्वयं लिए सुख चाहता है, पर दूसरों का सुख छीन लेता है ! व्यक्ति स्वयं ख नहीं चाहता, पर दूसरों के लिए दुःख उत्पन्न कर देता है। मनुष्य ति के लिए सचमुच यह अंयंत गौरव की बात होती, यदि पराए दुःख ना दुःख समझना सीख जाता। सभी धर्म-शास्त्रों ने मैत्री व अहिंसा इस सिद्धांत की चर्चा की है; इसे *महिमांडित* किया है, क्योंकि अहिंसा मैत्री ही धर्म की बुनियाद है। इसके बिना धर्म कहीं टिक नही सकता।

दर्श की बातें और व्यवहार

संसार के सभी महापुरुषों व धर्मगुरुओं ने धर्म के ऊंचे-ऊंचे दर्शों की बातें कही हैं। आदर्शों व सिद्धांतों के आधार पर सभी धर्मों अनुयायी अपने -अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करते है। यह बहुत महत्त्व की बात नहीं कि किस धर्म में कितनी ऊंची बातें

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कही गई हैं। बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि धर्म के उन आदर्शों
जीवन में कहां तक उतारा जाता है। यदि व्यक्ति के जीवन-व्यवहार
अपने धर्म के ऊंचे-ऊंचे आदर्श नहीं आए तो केवल उन आदर्शों
आधार पर अपने धर्म का गौरव गाना बहुत मूल्यवान नहीं है।

आचार्य जी ! आपने बाइबिल बढ़ी है

एक घटना-प्रसंग मेरी स्मृति में आ रहा है। मैं बिहार प्रांत
यात्रा पर था। हजारों-हजारों लोग जाति, वर्ग, संप्रदाय आदि के भेद-भ
के बिना अणुव्रत की बात सुनने के लिए प्रवचनों में उपस्थित होते
एक दिन कुछ ईसाई पादरी भी प्रवचन-सभा में उपस्थित हुए। प्रवच
समप्ति के पश्चात एक पादरी मेरे पास आए और प्रशंसा का पुल बां
हुए बोलेह्नआचार्य जी ! आज तो आपने प्रवचन क्या किया, कमाल
कर दिया !

मैं समझ गया कि यह प्रशंसा किसलिए है। वस्तुतः प्रशंसा
ऐसा साधन है, जिसके द्वारा बड़े-से-बड़े आदमी को आकर्षित कर
भटकाया जा सकता है। संसार में ऐसे व्यक्ति बहुत मिल जाएंगे,
अपनी निंदा सुनकर भी अप्रसन्न न हों, पर ऐसे व्यक्ति थोड़े ही मिले
जो अपनी प्रशंसा सुनकर न फुलें। हां, तो पादरी साहब ने मेरे प्रव
की खूब प्रशंसा की। मैंने मध्यस्थ भाव से उनकी बात सुन ली। मेरे
पर उनकी प्रशंसा का कोई विशेष असर नहीं हुआ। अब पादरी सा
अपनी मूल बात पर आए। उन्होंने पूछाह्नआचार्यजी ! आपने बाइबि
पढ़ी हैं? मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दियाह्न'हां, पढ़ी हैं।' पादरी साहब को
इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने पूछाह्ननहीं पूरी पढी या नहीं?
कहाह्नहां, काफी देखी हैं। पादरी साहब बोलेह्नबाइबिल में महाप्रभु क्राइ
ने एक बहुत ऊंची बात कही हैं।' मैंने प्रमोद भाव के साथ कहा
बाइबिल में बहुत अच्छी-अच्छी बातें है। पादरी साहब अभिमान के स
में बोलेह्ननहीं-नहीं, महाप्रभु क्राइस्ट ने एक ऐसी बात कही है, जो अन
मिलनी असंभव है।' मैंने जिज्ञासा की 'आखिर वह बात है क्या?
बोलेह्न'महाप्रभु क्राइस्ट ने कहा है कि मित्र के साथ तो मित्रता
व्यवहार करो ही, शत्रु के साथ भी मित्रता का व्यवहार करो। आचार्यज
देखिए, कितनी ऊंची बात है ! क्या आपने इतनी ऊंची बात अन्यत्र क
पढ़ी है? ऐसा कहते हुए पादरी साहब की आंखों में चमक आ गई।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

री साहब का यह सांप्रदायिक अहं उचित नहीं लगा। इस अहं को ालित करने के लिए मैंने कहाह्न‘फादर ! मैंने भगवान महावीर की ी में एक इससे भी ऊंची बात पढ़ी है।’ पर पादरी साहब मेरी बात ने तक को तैयार नहीं हुए ‘इससे ऊंची बात ! यह कभी संभव नहीं। उनको झकझोरा परंतु जो है, उसे कैसे नकारा जा सकता है ? पर री साहब अपनी बात पर पूर्ववत खड़े थेह्नलेकिन ऐसा कभी हो नहीं ता।’ अपने उद्देश्य तक पहुंचने के लिए मैंने कहाह्न‘यदि आप सुनना ें तो मैं वह बात सुनाना चाहता हूं।’ पादरी साहब अन्यमनस्क भाव धीमे-से बोलेह्न‘कहिए।’ मैंने कहाह्नभगवान महावीर ने कहा है, तुम सी दूसरे को शत्रु समझो ही मत। शत्रु या मित्र तुम्हारी स्वयं की त्मा है। फादर साहब ! अब आप दुश्मन के साथ मित्रता का व्यवहार ना बड़ी बात है या किसी को दुश्मन मानना ही नहीं, यह बड़ी बात पहले तो व्यक्ति किसी को दुश्मन माने और फिर उसके साथ मित्रता व्यवहार करे, उससे क्या ही यह अच्छी नहीं कि यह किसी को शत्रु े ही नहीं ।

मेरी सुन कर पादरी साहब का चेहरा सहसा कुम्हला गया। उनकी क्रिया की प्रतीक्षा की। परंतु जब वे मौन ही रहे तो मैंने कहाह्न‘फादर हब ! निस्संदेह महाप्रभु क्राइस्ट, भगवान महावीर और संसार के सभी पुरुषों ने एक ऊंची जीवनोपयोगी बातें है। पर केवल ऊंचे-ऊंचे दर्शों की बातों से क्या लाभ, जब तक वे बातें उनके अनुयायियों के वन-व्यवहार में नहीं आतीं? मैं आपसे ही पूछना चाहता हूं कि आज कितने ईसाई हैं, जो अपने शत्रुओं के साथ मित्रता का व्यवहार करते ये विश्व-युद्ध किसने करवाए? क्या वे लोग महाप्रभु यीशु के ुयायी नहीं थे? पर यह केवल ईसाइयों की बात नहीं है, अपितु जैनों तथा अन्य सभी धर्मावलंबियों की भी लगभग ऐसी ही स्थिति है। लिए हम धर्मगुरुओं का कार्य केवल ऊंचे-ऊंचे आदर्शों का गुणगान ना और उनके आधार पर अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित करने प्रयास करना नहीं, बल्कि उन आदर्शों के सांचे में अनुयायिओं को लना है।’

बंधुओ ! सचमुच धर्मशास्त्रों में आदर्श की ऊंची-ऊंची बातों की ई कमी नहीं है। कमी यह है कि लोग उन बातों को जीवन में नहीं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उतारते। नास्तिक एवं अधार्मिक कहलानेवाले लोग धर्म के स
खिलवाड़ करें, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य और निराशा
तक होती है, जब मैं देखता हूं कि धार्मिक और आस्तिक कहलानेव
लोग भी उन आदर्शों के साथ खिलवाड़ करते हैं। तुच्छ से स्वार्थ
लिए धर्मिकता को छोड़ अधार्मिक कृत्य कर लेते हैं। इस स्थिति में मु
कहना पड़ता है कि धर्म का जितना नुकसान तथाकथित धार्मिकों के द्व
हुआ है, उतना अधार्मिकों व नास्तिकों के द्वारा नहीं हुआ।

सच्ची धर्मिकता

सच्ची धार्मिकता क्या होती है, इसे मैं एक उदाहरण से स्प
करना चाहता हूं। श्रीमद् राजचंद्र का नाम आपमें से बहुत से लोगों
सुना होगा। महात्मा गांधी के वे एक दृष्टि से आध्यात्मिक गुरु
धार्मिक दृष्टि से वे जैन तथा व्यावसायिक दृष्टि से जौहरी थे। एक
उन्होंने एक व्यापारी से मोतियों का सौदा किया। सौदा करते स
बाजार सामान्य था। परंतु सौदा तय होने के कुछ ही दिनों पश्च
मोतियों के भावों में अप्रत्याशित तेजी आ गई। ऐसे में वह मोतियों
व्यापारी कई तरह की कठिनाइयों से घिर गया। हालांकि वह भरसक
प्रयत्न में था कि अपने किए गए सौदे के अनुसार माल उपलब्ध करव
तथापि निर्धारित समय निकल जाने तक भी वह ऐसा नहीं कर सक
श्रीमद राजचंद्र से उस व्यापारी की स्थिति छिपी नहीं थी। अतः बि
पूर्व सूचना के एक दिन उसकी दुकान पर पहुंचे। वह व्यापारी श्री
राजचंद्र को अपनी दुकान पर आया देख शर्मिंदा होता हुआ-
बोलाह्नराजचंद्र भाई ! मुझे इस बात का अत्यंत दुःख है कि मैं अ
सौदे के अनुसार अभी तक माल नहीं पहुंचा सका। पर आाप निश्चि
रहें। माल की व्यवस्था करने के लिए मैं हर संभव प्रयत्न कर रहा
मुझे भरोसा है कि कोई-न-कोई व्यवस्था अवश्य बैठेगी।

यद्यपि श्रीमद् राजचंद्र को व्यापारी की नीयत पर किंचित भी सं
नहीं था, वे यह भी अच्छी तरह से जानते थे कि बाजार की वर्तम
परिस्थिति में यह व्यापारी कभी सौदा पूरा नहीं कर सकता। इसलि
उन्होंने व्यापारी से उस सौदे का अनुबंध-पत्र मांगा । उस व्यापारी
ज्योंही वह श्रीमद राजचंद्र के हाथों में थमाया, उन्होंने उस व्यापारी
देखते-देखते तत्काल उसे फोड़ कर फेंक दिया और कहाह्नहमारा सौ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हैं।'

श्रीमद् राजचंद्र के इस अप्रत्याशित व्यवहार को देख कर वह पारी दंग रह गया। उसी भावमुद्रा में वह बोलाह्न'राजचंद्र भाई ! पने यह क्या किया ! हम व्यापारी हैं। व्यापार करते हैं। व्यापार में ी-मंदी तो आती-जाती रहती ही है। उससे क्या कहीं सौदा रद्द होता श्रीमद राजचंद्र ने संतोष के स्वर में कहाह्न'राजचंद्र शर्बत पी सकता दूध पी सकता है, पर किसी का खून नहीं पी सकता।'

श्रीमद राजजंद्र की सच्ची धार्मिकता के प्रति वह व्यापारी श्रद्धाप्रणत । बंधुओ ! यह है सच्ची धार्मिकता। श्रीमद राजचंद्र के जीवन में धर्म यक्ष फलित हुआ था। आज ऐसे तथाकथित धार्मिकों की कोई कमी ं हैं, जो दूसरे व्यक्ति को कमजोर अवस्था में देखकर उसे दबाने का त्न करते हैं। उनके दृष्टि में धर्म केवल मंदिर जाकर पूजा-पाठ करना संत-दर्शन एवं गंगा-स्नान करना हैं। अपने आचरण व दैनिक व्यवहार वे धर्म के आदर्शों को अपनाना कोई आवश्यक नहीं समझते। साधु-ों का यह काम है कि वे अपने-अपने अनुयायियों को धर्म का सही र्ग बताकर उसे उनके जीवन-व्यवहार में प्रवेश करवाएं।

ख-प्राप्ति का मार्ग

एक सूत्र में यदि कहूं तो दूसरों को दुःख न देना ही धर्म है। कोई सी को सुखी बना सके, यह उसके हाथ की बात नहीं। संभाव्य यही कि कोई किसी को दुखी न बनाए। कोई किसी को जिला सके, यह र्था असंभव बात है। पर कोई किसी को मारे नहीं, यह अहिंसा और ी का व्यावहारिक एवं संभावित रूप है।

भगवान महावीर से पूछा गया कि सातवेदनीय कर्म के बंध का ा कारण है। समाधान की भाषा में भगवान ने कहा कि प्राण-भूत-व-सत्त्व को दुःख नहीं देना, पीड़ित नहीं करना, नहीं सताना, ुशासित नहीं करना सातवेदनीय कर्म के बंधन का कारण है। आप ं, भगवान ने यह नहीं कहा कि दूसरे प्राणियों को सुख देने से तवेदनीय कर्म का बंधन होता है। इसलिए तत्त्व यही है कि दूसरों को ख न देना सुख-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है, धर्म है। सचमुच यह एक रा तत्त्व है। इसकी गहराई में बहुत कम लोग पहुंच पाते हैं। धिकतर लोग तो किसी को सामान्य-सा सहयोग देकर अपने-आपको

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बहुत बड़ा धार्मिक मान लेते हैं।

जन्म-मरण, जैसा कि मैंने कहा, बहुत बड़ा दुःख है। चूंकि दुःख सब छुटकारा चाहते हैं, इसलिए भगवान ने धर्म का मार्ग प्रशस्त किय त्याग, तप, संयम आदि के द्वारा हम जन्म-मरण की शृंखला को सव सदा के लिए तोड़कर शाश्वत सुख को प्राप्त करेंह्नइसी भावना के स विराम लेता हूं।

गंगाशहर

१६ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

६ : लोकह्नस्थिति : एक विश्लेषण

आकाश का विवेचन कल मैंने प्रारंभ किया था। आकाश के दो
ग हैंह्न

लोकोऽलोकश्च।

१. लोक २. अलोक।

प्रश्न होता है कि लोक किसे कहते हैं।

षड्द्रव्यात्माको लोकः।

अपरिमितस्याकाशस्य षड्व्यात्मको भागः लोक इत्यभिधीयते। स च चतुर्दशरज्जुपरिमाणः, सुप्रतिष्ठसंस्थानः, तिर्यग् ऊर्ध्वोऽधश्च। तत्र अष्टादशशतयोजनोच्छ्रितोऽसंख्याद्वीपसमुद्रायामस्तिर्यक्। किञ्चिन्न्यूनसप्तरज्जुप्रमाण ऊर्ध्वः। किञ्चिदधिकसप्तरज्जुप्रमितोऽधः।

क का स्वरूप

लोक आकाशस्तिकाय का वह भाग है, जिसमें आकाश के
तिरिक्त धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल और कालह्नये पांच द्रव्य और पाए
ते हैं। दूसरे शब्दों में जिस आकाश में छहों द्रव्य प्राप्त हैं, वह लोक
लाता है।

लोक आकाश का एक बहुत छोटा-सा भाग है। इसको आप एक
ल उदाहरण से समझें। यह सामने शामियाना है। इस शामियाने में
ी चार अंगुल की कोई कारी लगा दी गई। इतने बड़े शामियाने में
र अंगुल की कारी का अस्तित्व नहीं के बराबर है। बस आकाश में
क इस कारी जितना ही है, शेष सारा अलोक है। निष्कर्ष यह है कि
लोक की तुलना में लोक बहुत ही छोटा है। पर छोटा होकर भी लोक
री दृष्टि से बहुत बड़ा है, क्योंकि अनंत-अनंत जीव और पुद्गल इसी
क में समाए हुए हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पूछा जा सकता है कि 'लोक' का परिमाण क्या है। 'लोक' चौ रज्जु का है, सुप्रतिष्ठक आकरवाला है। रज्जु यानी रस्सी। पर रस्सी कोई सामान्य छोटी-मोटी रस्सी नहीं हैं। असंख्य द्वीप अ असंख्य समुद्र समा जाए उतना बड़ा एक रज्जु होता है। आपको सुनकर विस्मय नहीं होना चाहिए, क्योंकि आज विज्ञान ने इससे अधिक-अधिक विस्मयकारी बातें के सामने रखी हैं। लोक का जो चौ रज्जु का परिमाण बताया गया हैं, वह उसकी ऊपर से नीचे तक लंबाई का है। सुप्रतिष्ठक आकार तीन सिकोरों को एक निर्धारित क्रम रखने से बनता है। वह क्रम इस प्रकार हैह्नएक सिकोरा उलटा, उस दूसरा सिकोरा सुलटा और पुनः तीसरा सिकोरा उलटा।

लोक को तीन भागों में विभक्त किया गया हैह्न१. तिरछा लोक ऊधो-लोक ३. अधोलोक।

ऊर्ध्व लोक सात रज्जु से कुछ कम का है। अधोलोक सात र से कुछ अधिक का है। तिरछा लोक अठारह सौ यौजन का है। इसे म लोक भी कहते हैं। इन तीनों को मिलाकर चौदह रज्जु होता है। चौदह रज्जु का लोक सातवें नरकह्नमहातमःप्रभा के नीचे से प्रारंभ हो सिद्धशिला के अंतिम छोर तक है। इसके दो भाग हैं। हम मध्य लोक जिस भाग में हैं, उससे ऊपर नौ सौ योजन तथा नीचे नौ सौ योजन हमारे यहां एक लोकपुरुष की भी कल्पना की गई है। लोकपुरुष आकार वर्तमान जैन-प्रतीक के समान है। यह सारा विवेचन मैं भूगोल-खगोल के आधार पर कर रहा हूं। प्रश्न आप कहेंगे कि उपस्थि होगा क्या भूगोल-खगोल भी जैनों का, बौद्धों का वैदिकों का...... अल अलग होता है। हालांकि भूगोल-खगोल तो अलग-अलग नहीं होता, उसे बतलानेवाले अलग-अलग हैं। इसलिए उनके माप में कही-क अंतर है। हमें अपने शास्त्रों में प्राप्त भूगोल-खगोल का ज्ञान हो चाहिए। अन्यथा दूसरे-दूसरे लोगों की मान्यताओं से हम अप मान्ययताओं की तुलना कैसे कर सकेंगे और कैसे उसके अंतर समझ पाएंगे।

लोक की स्थिति

बंधुओं ! इस लोक की स्थिति बड़ी विचित्र है। जीव अपने कर्मों कारण इस लोक में विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। कहीं ज

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कहीं मरण है। कहीं नृत्य है। कहीं नाटक है। कोई रोता है। कोई ता है।..... संसार के प्रत्येक प्राणी ने लोक का चप्पा-चप्पा छाना है। क का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहां जीव अनंत-अनंत बार न जन्मा हो। न आप पूछ सकते हैं कि इस लोक का कभी अंत भी पाया जा कता है या नहीं अलबत्ता, अंत तो पाया जा सकता है। पर प्रतिप्रश्न है कि सच्चे दिल से इसका अंत चाहता कौन है, सब चक्कर खाना हते हैं। यदि वास्तव में ही सच्चे दिल से भवभ्रमण से मुक्त होने की न्ना जग जाए तो यह असंभव नहीं है । हमारे तीर्थंकरों ने इस दिशा हमारा मार्गदर्शन किया है। अहिंसा, सत्य, प्रेम, करुणा, मैत्री, ोद..... की साधना भवभ्रमण से मुक्ति का रास्ता है। इस मार्ग पर नने वाले को दुःख का काम ही नहीं, सदा आनंद-ही-आनंद है।

बंधुओ ! मुझे तो इस बात की बड़ी हंसी आती है कि लोग इस ार में सुख देखते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि संसार दुःखमय किस भी प्राणी ने आज तक इस संसार में कभी सुख पाया नहीं र न भविष्य में कभी कोई पा सकेगा। जो व्यक्ति इस वास्तविकता से चित हो जाता है, उसे संसार से विरक्त होते समय नहीं लगता। क्त होने का अर्थ हैह्नफिर वह संसार में भटकता नहीं बहुत जल्दी का पार पा लेता है

ंग जैन-रामायण का

प्राचीन काल में यह आम पद्धति रही थी कि बड़े-बड़े राजा और कुबेर संसार की वास्तविकता से परिचित होकर एक अवस्था प्राप्त के पश्चात संन्यास स्वीकार कर लेते थे। संसार के प्रति उनकी सक्ति सामाप्त हो जाती थी। मुझे जैन-रामायण का एक प्रसंग याद रहा है। राजा अपने महल में बैठा केशों को संवार रहा था। महारानी वही उपस्थित थी। सहसा महारानी ने चौंकने के अंदाज में ाह्नमहाराज ! दूत आ गया।

राजा भी चौंका। उसने नजर घुमाकर चारों तरफ देखा। पर उसे ई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जरा झुंझलाते हुए उसने महारानी कहाह्न'तुम क्या स्वप्न में बात कर रही हो। यहां तो कोई भी दूत ं आया है। फिर आए भी तो कैसे! महल के दरवाजे पर सशस्त्र रेदार खड़े हैं।' महारानी ने कहाह्नमहाराज ! आप मानें या न मानें पर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दूत तो आ गया हैं। राजा ने सोचा, जब रानी कह रही है तो अव
कोई दूत आया होगा। शायद वह बाहर खड़ा होगा, जिससे मुझे दिख
नहीं दे रहा है। अतः उसने महारानी से कहाह्नकौन दूत आया है? उ
मेरे सामने उपस्थित करो।

राजा के इस निर्देश के साथ ही महारानी ने राजा के सिर से
सफेद केश उखाड़ा और यह कहते हुए कि यमदूत आ गया है, राजा
हाथ में थमा दिया।

राजा ने मर्म को समझा और वह चिंतातुर हो गया चिंतातुर
सोचकर नहीं कि बुढ़ापा आ गया है या मौत सन्निकट है, बल्कि
सोचकर कुल की परंपरा का लोप हो रहा है। अयोध्या के राजकुल
यह परंपरा रही थी कि आज तक जितने भी राजा बने, उन्होंने स
केश आने से पूर्व ही संसार को त्याग दिया। सफेद केश के इस नि
मात्र से राजा के मन में वैराग्य-भावना जाग्रत हो गई और वह संन्य
हो गया।

बन्धुओ! आज की स्थिति तो बड़ी विचित्र है। सफेद केश आने
तो जाग्रत होता ही कौन है, सारे दांत गिर जाने के बाद भी आदमी पु
शादी करने की बात सोचता है ! पर इसका यह अर्थ नहीं कि विर
होनेवालों की सर्वथा नास्तिक है। इस स्थिति में भी कुछ लोग सम
समय पर लोक की वास्तविकता से परिचित होकर उससे विरक्त ह
हैं; भव-भ्रमण से मुक्ति की दिशा में प्रयाण हैं। आप भी लोक
समझें, लोक की वास्तविकता को समझें और समझकर श्रेय पथ
ओर अग्रसर होंह्नइसी प्रेरणा के साथ प्रवचन संपंन करता हूं।

गंगाशहर

१७ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७. सृष्टि क्या है

आकाशास्तिकाय के विवेचन के अंतर्गत लोक का वर्णन कल मैंने
या। लोक के तीन भाग बताए गए हैंह्न१. मध्यलोक २. ऊर्ध्वलोक ३.
गेलोक।

आपकी जिज्ञासा हो सकती है कि किस-किस लोक में कौन-से
गी बसते हैं।

विधताओं का संगम-स्थल

ऊर्ध्वलोक में मुख्य रूप से वैमानिक देवों का प्रवास है। अर्थात
रह कल्पोपन्न और चौदह कल्पातीत (नौ ग्रेवेयक व पांच अनुत्तर
मान) देव ऊर्ध्वलोक में रहते हैं। ऊर्ध्वलोक के ऊपर सिद्धशिला है।

अधोलोक में सात नरकह्नरत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा,
प्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा के जीव तथा असुरकुमार,
ाकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार,
नितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमारह्नये दस प्रकार के
नपति देव रहते हैं।

मध्यलोक में मनुष्य, पक्ष-पक्षी तथा ज्योतिष्क एवं व्यंतर देव रहते
व्यंतर देव भूत, पिशाच, राक्षस आदि हैं यद्यपि वे मध्यलोक में ही
तथापि हमारे से नीचे हैं। जैसाकि मैंने कल बताया था, हम मध्यलोक
बीच में हैं। हमारे से ऊपर नौ सौ योजन तथा नीचे नौ सौ योजन का
है। व्यंतर देव नीचे के नौ सौ योजन के क्षेत्र में रहते हैं। इस सबके
तिरिक्त पांच प्रकार के स्थावर जीव (पृथ्वीकायिक, अप्कायिक,
स्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक) समूचे लोक में भरे पड़े
लोक का ऐसा भाग नहीं, जहां स्थावर जीवों का प्रवास न हो।

लोक सर्वत्र विविधताओं से भरा है। कहीं नगर है। कहीं गांव है।
हीं पर्वत है। कहीं समुद्र है। कहीं सूखा है। कहीं हरा-भरा मैदान है।......

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सब कुछ तर्कगम्य नहीं

आप कहेंगे कि एकरूपता क्यों नहीं मैं मानता हूं कि एकरू का अपना महत्त्व है। बगीचे में एक जैसे सैकड़ों पेड़ सुन्दर लगते हैं जंगल विभिन्न प्रकार की घासों से ही मनोरम लगता है।

जीवपुद्गलयोर्विविधसंयोगैः स विविधरूपः।

इयं विविधरूपता एव वृष्टिरिति कथ्यते।

लोक में जीव और पुद्गल भरे पड़े हैं जीव और पुद्गल का वि रूपों में संयोग होना लोक-विविधता का कारण है। यह विविधता सदा चलती आई और सदा चलती रहेगी। इस विविधता को हम सृ संसार, जगत या चराचर कहते हैं। आप पूछेंगे कि लोक की यह स्थि क्यों इस क्यों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। 'क्यों' का उत्तर के तर्कसिद्ध बातों का हो सकता है, प्रकृति की बातों का नहीं। यह विविध प्रकृति की बात है । अब यदि कोई पूछे कि मोर की पांखों में विविध होते हैं, कबूतर की पांखों में सब रंग क्यों नहीं, पुरुष के दाढ़ी और होता है, स्त्री के क्यों नहीं तो ऐसे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं हो क्योंकि ये प्रकृतिगत/स्वभावगत बातें हैं। इन्हें हम तर्क से नहीं सम सकते। तर्क तो कुरेदने के लिए होता है। समझने के लिए श्रद्धा महत्त्वपूर्ण है। वैसे तर्क का सर्वथा खंडन नहीं करता। वह भी एक स तक उपयोगी है। पर सभी जगह तर्क नहीं होना चाहिए।

शाश्वत : सीमामुक्त

सृष्टि को समझने के लिए यह भी समझना जरूरी है कि ज और पुद्गल का संयोग कब हुआ तथा पहले जीव हुआ या पुद्गल।

संयोगश्चापश्चानुपूर्विकः।

इस प्रश्न के समाधान में भगवान ने कहा, जीव और पुद्गल द शाश्वत हैं। इनमें पौर्वापर्य नहीं है। अर्थात ये दोनों सदा से हैं और रहेंगे। कोई पहले नहीं, कोई पीछे नहीं। शास्त्रों में इस प्रकार के अ प्रश्न आए हैं। आप बताएं, पहले मुर्गी या अंडा ? पहले बीज या वृक्ष अंडे के बिना मुर्गी नहीं और मुर्गी के बिना अंडा आया कहां से बीज के बिना वृक्ष नहीं और वृक्ष के बिना बीज पैदा कैसे हुआ? सबका उत्तर 'अपश्चानुपूर्व' है। अर्थात इनमें पूर्व और अपर का क्रम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ये दोनों शाश्वत भाव हैं। इस सृष्टि को भी जैन-दर्शन में पश्चानुपूर्व' माना गया है।

विज्ञान मानता है कि मनुष्य से पशु पहले हुए। मनुष्य वनमानुष संतान है। पर मैं समझता हूं यह वास्तविकता नहीं है। आप देखें, ज लाखों-लाखों बंदर और वनमानुष हैं। यदि मनुष्य वनमानुष की ान है तो फिर क्यों नहीं कोई बंदर या वनमानुष मनुष्य उत्पन्न ता?

ारिक सहिष्णुता

कुछ दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि सृष्टि को ईश्वर ने पैदा किया यहां वही प्रश्न पुनः पैदा होगा कि ईश्वर को किसने पैदा किया यदि ा जाए कि उसे तो किसी ने पैदा नहीं किया, वह तो शाश्वत है, र सृष्टि को ही शाश्वत मानने में क्या आपत्ति है ? लेकिन मैं यह ार किसी पर थोपना नहीं चाहता। मेरी दृष्टि में धार्मिक व्यक्ति को ी कोई, ऐसी बात नहीं करनी चाहिए, जो दूसरों को पीड़ा पहुंचाये। नी बात दूसरों को दृढ़ता के साथ बताई जाए, इसमें कोई कठिनाई ीं। पर अपनी बात मनवाने के लिए दबाव डालना, संघर्ष करना किसी टि से उचित नहीं, क्योंकि धर्म के क्षेत्र में वितंडावाद/लड़ाई-झगड़े को ई स्थान नहीं है। यहां तो एकमात्र हृदय-परिवर्तन का मार्ग मान्य है। मानता हूं, धर्म के नाम पर कहीं किसी प्रकार का संघर्ष या लड़ाई-ाड़ा होता है, तो वह समूचे धार्मिक जगत के लिए एक बहुत बड़ा ंक सिद्ध होता है। हर धर्म के अधिकारियों एवं अनुयायियों को यह चना चाहिए कि अपने विचारों में जितने स्वतंत्र हम हैं, उतने ही तंत्र दूसरे भी हैं। इस स्थिति में विरोधी विचारों को सुनकर विवाद ना या संघर्ष करना कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

ंग महात्मा गांधी और कस्तूर बा का

महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता-निवारण की बात उठाई। हजारों-हजारों ों के विचार उन्होंने बदले। पर अपनी धर्मपत्नी कस्तूर बा को वे झाने में असफल रहे। गांधीजी ने कहा'सब अपने विचार रखने में तंत्र हैं' फिर मैं इसकी इस स्वतंत्रता को क्यों छीनूं ?' इसके बावजूद कस्तूर बा को समझाने का प्रयास बराबर करते रहे। आखिर झाते-समझाते वे थक गए, पर कस्तूर बा के विचारों में कोई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिवर्तन नहीं आया। इस स्थिति में गांधीजी को क्षणिक उत्तेजना गई। उन्होंने कहाह्न'और सबको अपनी बात समझाना सरल है, कस्तूर बा को समझाना कठिन ही नहीं, महा कठिन है।' पर अगले क्षण वे संभल गए और बोलेह्न'भले कस्तूर बा को मेरी बात समझ आए या न आए, पर पत्नी के रूप में तो मैं जन्म-जन्मान्तरों तक इस ही चुनता रहूंगा।'

बन्धुओ! वैचारिक सहिष्णुता का यह सूत्र लोगों को अव अपनाना चाहिए। जब धार्मिक लोग भी छोटे-छोटे विचार-भेदों के वि संघर्ष करेंगे तो अधार्मिक की तो बात ही क्या ! मैं यह बात कि संप्रदाय-विशेष को लक्ष्य करके नहीं, अपितु सामूहिक रूप में कह हूं। मेरा निश्चित अभिमत है कि धार्मिक क्षेत्र से यदि यह बुराई समा हो जाए तो धर्म का रूप बहुत अधिक निखार पा सकेगा।

गंगाशहर

१८ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

८ : सृटिवाद : एक पर्यालोचन

सृष्टि का वर्णन मैंने कल किया। सृष्टि का प्रारंभ कैसे हुआ, इस न पर विभिन्न दर्शनों का अलग-अलग अभिमत है। जैसा कि कल ाया गया, कुछ लोग मानते हैं कि सृष्टि ईश्वर द्वारा निमित्त है। कुछ ग ऐसा भी मानते हैं कि सृष्टि एक अंडे से पैदा हुई है; और भी ोक मत इस संबंध में हो सकते हैं। जैन-दर्शन के अनुसार जीव और ्गल का विविध रूप में विशेष संयोग ही सृष्टि है और यह संयोग र्वापर्यरहित है।

्कृत की सुरक्षा करें

किंतु कभी-कभी एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति पर इतन गहरा र आ जाता है कि लोग अपनी मूल संस्कृति को भूल जाते हैं और री संस्कृति के प्रवाह में बहने लगते हैं। जैन-दर्शन की मान्यता है कि ी सुख-दुःख स्वकृत कर्मों के कारण ही प्राप्त करता है। कोई ईश्वर भगवान किसी को सुख-दुःख नहीं देते। व्यक्ति अपने कृतकर्मों के रण ही संसार में जन्म-मरण करता है। जिस दिन वह कर्मों की ृंखला को तोड़ देता है, उस दिन वह संसार से मुक्त हो जाता है। पर त से जैन लोग पत्रों में लिखते हैं कि मैं ईश्वर से आपके दीर्घ युष्य की प्रार्थना करता हूं। परमपिता परमेश्वर से अरदास करता हूं आपको सुखी बनाएं। मैं पूछता हूं, क्या यह जैन-दर्शन की मान्यता विपरीत नहीं है ? इसी प्रकार बहुत-से जैन व्यापारी में लाभ होने पर ते हैं कि रामजी राजी हैं। ईश्वर की कृपा है।...... मैं नहीं समझता, वर की भी किसी पर अकृपा होती है, वे भी कभी नाराज होते हैं। स्तव में ईश्वर की भी किसी पर अकृपा होती है, वे भी कभी नाराज ते हैं। वास्तव में ईश्वर तो समदर्शी होते हैं। फिर उनकी कृपा या ृपा होने की बात का कोई औचित्य नहीं है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मैं देखता हूं कि कुछ लोग थोड़ा-सा नुकसान होने पर भगवान
कोसने लगते हैंह्नहा ! भगवान तुमने बहुत बुरा किया ! मैं मानता हूं,
भगवान पर एक प्रकार का झूठा लांछन है। भगवान क्यों कभी किसी
बुरा करेंगे ? भगवान की बात तो बहुत आगे की है, भगवान के स
भक्त भी कभी किसी का बुरा नहीं कर सकते। सारांश यही है कि ह्म
सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता में ईश्वर को बीच में लाना उचित न
है। जैसा कि मैंने अभी बताया, कुछ लोग सृष्टि को ईश्वरकृत मानते
पर जैन-दर्शन उसे जीव और पुद्गल के विविध प्रकार के संयोग
परिणाम मानता है। लेकिन बहुत-सारे जैन लोग अज्ञानवश या ि
प्रवाहपाती बनकर उसे ईश्वरकृत कह देते हैं। जैन-दर्शन की दृष्टि से
एक बड़ी भूल हो जाती है। इस संदर्भ में मैं आपसे कहना चाहता हूं
आज तक चाहे आप लोग कुछ भी बोलते, लिखते व सोचते आए हों,
अब आपको अपनी भाषा, लेखन और चिंतन को बदल देना चाहिए। य
आप ही अपनी संस्कृति की सुरक्षा नहीं करेंगे तो दूसरों से तो इस व
में आशा ही कैसे की जा सकती है?

जीव-पुद्गल का संयोग

यह तो आपने जान लिया कि जीव और पुद्गलों के विविध प्रव
के संयोगों के कारण ही सृष्टि है। यह भी जानें कि जीव व पुद्गल
संबंध कितने प्रकार का है।

कर्मशरीरोग्रहरूपेण त्रिविधः।

उपग्रहःह्नआहार-वाङ्-मनः-मनः उच्छ्वासनिःश्वासादयः।

जीव और पुद्गलों का संयोग तीन प्रकार का हैह्न१. कर्म २. श
३. उपग्रह।

कर्म जीव जो भी अच्छी या बुरी प्रवृत्ति करता है, उसके प्रतिप
के रूप में जीव के साथ शुभ-अशुभ कर्मों का संयोग होता है।

शरीर संसार का प्रत्येक प्राणी आत्मा और शरीर का संयोग
शरीर के बिना आत्म संसार में टिकती नहीं और आत्मा-विहीन शरीर
कोई मूल्य नहीं होता। आत्मा और शरीर दोनों परस्पर वैसे ही मिले
हैं, जैसे दूध और घी, तिल और तेल। यह इस प्रकार का मिलन
जिसमें मिले हुए दोनों पदार्थ पृथक-पृथक नहीं दिखाई देते।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यद्यपि आत्म और शरीर का भेद करना सहज नहीं है। तथापि संभव नहीं है। साधन के द्वारा हम **जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः** सूत्र का क्षात कर सकते हैं मैं मानता हूं, जब तक इस सूत्र का साक्षात नहीं ा, तब तक साधना में निखार नहीं आता। जिस दिन यह प्रत्यक्ष हो ता है, उस दिन साधक एक विशिष्ट भूमिका में प्रवेश कर जाता है।

यद्यपि शरीर पुद्गलों से बना है, जड़ है, फिर भी वह आत्मा का यंत उपकारी है। उसी के माध्यम से आत्मा कर्मों की जंजीर को ड़ने में समर्थ होती है शरीर को भी आत्मा के साथ जुड़ने में लाभ है। त्मा संबद्ध होने के कारण ही उसकी प्रतिष्ठा है। अन्यथा उसकी मत मिट्टी से अधिक नहीं है। संस्कृत कवि ने कहा हैह्न**गजाननं यता जनेन किं न पूज्यते यानममुष्यमूषकः?** गणेशजी की पूजा नेवाले को चूहे की पूजा भी करनी पड़ती है। क्यों? यह इसलिए कि ा गणेशजी का वाहन है। केवल चूहे को कौन पूछता है? पर शजी के साथ जुड़ जाने से वह भी पूजा जाता है, सम्मान पाता है। ो बात आत्मा के साथ जुड़ जाने से शरीर की है। आत्मा से संपृक्त जाने के कारण ही वह महत्त्व पाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा और शरीर दोनों के महत्त्व को समझना चाहिए।

ग्रह

उपग्रह का वाच्यार्थ हैह्नउपकरण। जीवन जीने के लिए आत्मा और रीर के अतिरिक्त भी प्राणी को अन्य सैकड़ों प्रकार की पौद्गलिक तुओं का संग्रह करना पड़ता है। ये उपकरण कहलाती हैं। आहार, ाी, मन, श्वासोच्छ्वास आदि सब उपकरण हैं। इनके बिना सृष्टि का ा नहीं चलता।

हालांकि इन उपकरणों का संयोग-वियोग सृष्टि में चलता रहता है, र भी हमें तत्त्वतः स्वीकार करना होगा कि ये सारे संयोग त्याज्य हैं। द हम वियोग नहीं चाहते हैं तो हमें संयोग को छोड़ना होगा। जब तक ोग नहीं छूटता, तब तक वियोग को न चाहने का कोई अर्थ नहीं है। मरना नहीं चाहते हैं तो हमें जन्म से छुटकारा पाना होगा। पर जब क जन्म चालू है, तब तक मौत को चाहे-अनचाहे स्वीकार करना ही ा। हम दुःख नहीं चाहते हैं तो हमें सुख-सुविधा को छोड़ना होगा। ख से दुःख जुड़ा हुआ है। सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का क्रम उसी प्रकार चलता है, जिस प्रकार रात के पीछे दिन और ि
के पीछे रात।

दुःख भी उपयोगी है

मैं तो इस संदर्भ से जरा हट कर यह भी कहना चाहता हूं
आदमी को दुःख सहने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यानी प्रति
में बहने का अभ्यास रखना चाहिए। कुंती ने वरदान मांगा कि
दुःख प्राप्त होता रहे। दुःख क्यों चाहिए, इस प्रश्न के उत्तर में कुंती
कहा कि सुख होगा तो मैं आपको (भगवान को) भूल जाऊंगी। प
दुःख में कभी नहीं भूलूंगी। इसके साथ ही दूसरी बात यह भी है
दुःख व्यक्ति की कसौटी है। कौन व्यक्ति कितना सहनशील एवं मज
है, इसकी परीक्षा सुख में नहीं, दुःख में ही हो पाती है।

बंधुओ ! सचमुच जो व्यक्ति प्रतिस्रोत में बहने की तैयारी
लेता है, वह दुःख का पार पा लेता है। अनुकूलता और अनुस्रोत में
सभी लोग बहते ही हैं, पर जो प्रतिकूलता, दुःख और प्रतिस्रोत में
अपनी समता को खंडित नहीं होनें देता, वह सचमुच ही महान है।
इसे साधना की कसौटी मानता हूं। यह बात मैं केवल शब्दों से न
अपितु अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूं। अनुभवरहित शाब्
उपदेश का मेरी दृष्टि में बहुत मूल्य नहीं है। संतों की वाणी ल
इसीलिए तो सुनना चाहते हैं और इसीलिए वह असरमारी होती है ि
संत जो-कुछ उपदेश देते हैं, उसे पहले अपने जीवन में प्रयोग
अनुभव करते हैं। उनकी वाणी अनुभव की वाणी होती है।

मैंने भी अपने जीवन में दुःख में सम रहने के प्रयोग किए हैं।
पूछेंगे, क्या आपके जीवन में भी दुःख आता है मैं पूछता हूं, दुःख कि
जीवन में नहीं आता? दुःख सभी के जीवन में आता है। अलबत्ता इ
अवश्य है कि सामान्य आदमी जहां दुःख से घबरा जाता है, अ
संतुलन खो बैठता है, वहीं साधकपुरुष अपने-आपको संतुलित रखने
प्रयास करता है, हंसते-हंसते दुःख को लांघ जाता है। हां, तो
प्रतिकूलता में सम रहने का प्रयास किया है। इस प्रयास में मैं बहुत-
उत्तीर्ण रहा हूं तो कभी-कभी अनुत्तीर्ण भी रहा हूं। साधक को अ
कमजोरी स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। साधक का
ही है कि वह अपूर्ण है। यदि अपूर्ण न हो तो साधना की अपेक्षा ही क्यं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र्माण के लिए सहन करना जरूरी है

मैं मानता हूं कि एक दृष्टि से कष्ट जीवन के लिए बहुत लाभप्रद क्योंकि कष्ट में आदमी का पुरुषत्व निखरता है। हम इस तथ्य को ी न भूलें कि सोना आग में तपकर ही कुंद्रन बनता है। पर आज तो यति बड़ी विचित्र है। आदमी अपने मन के विपरीत जरा-सी बात भी भावपूर्वक सहन नहीं कर पाता। तत्काल उसकी आंखें लाल हो जाती चेना तमतमाने लगता है। वह अपना आपा खो बैठता है। आप टटोलें ने-आपको। क्या यह वास्तविकता नहीं है? इस संदर्भ में मेरी तो श्चित मान्यता है कि जब तक व्यक्ति सहन करना नहीं सीखता, का निर्माण नहीं होता। निर्माण उसी का होता है, जो चोट सहन ता है। स्खलन करने पर मैं अपने शैक्ष मुनियों को टोकता हूं, वधान करता हूं। इसके साथ ही मैं उनके चेहरों को भी पढ़ता रहता साधु ने मेरे अनुशासन का मन से सहन किया है, किसने केवल णी से सहन किया है और किसनी मन व वाणी दोनों से ही सहन नहीं या है। इस अध्ययन के आधार पर मैं परीक्षा कर लेता हूं कि कौर नहार है, कौन कम होनहार है और कौन कच्चा घड़ा रहनेवाला है। तत्त्व है कि जीवन-निर्माण के लिए हर व्यक्ति की कड़ी चोट हंसते-हंसते न करने का अभ्याय करना चाहिए।

मैं उपग्रह के बारे में बता रहा था और चलते-चलते कहां का कहां च गया ! अब मैं पुनः अपने मूल विषय पर लौटता हूं। जीव को अपने वन की विभिन्न प्रवृत्तियों को चलाने के लिए विभिन्न रूपों में पुद्‌गलों स्वीकार करना होता है। खना, पीना, बोलना, चिंतन करना आदि सभी याओं में पुद्‌गलों को अनिवार्य रूप में ग्रहण करना होता है।

क की स्थिति

लोक को सभी दृष्टियों से समझने के लिए हमें यह समझना भी रूरी है कि लोक की स्थिति कहां है और वह किस पर टिका हुआ कुछ लोग संसार को शेषनाग के फन पर टिका हुआ मानते हैं। रा मान्यता के अनुसार वह बैल के सींग पर अवस्थित है। और भी क मान्यताएं इस सम्बन्ध के प्राप्त होती हैं। इस बारे में जैन-दर्शन । कहता है यह प्रश्न है। सभी लोगों को इस प्रश्न का समाधान ाल में रखना चाहिए।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चतुर्धा तत्स्थितिः।

यथा आकाशप्रतिष्ठितो वायुः वायुप्रतिष्ठित उदधिः उद
प्रतिष्ठिता पृथिवी, पृथिवीप्रतिष्ठिताः त्रसस्थावराः जीवाः।

सबसे पहले आकाश है। आकाश वायु अवस्थित है। वायु के
प्रकार हैंह्नसघन वायु और तरल वायु। तरल वायु से तो आप
परिचित हैं, पर सघन वायु से संभवतः सभी लोग परिचित न हों। अ
देखें, कोटरों, ट्रकों आदिह के टायरों में जो वायु होता है, वह सघन व
का एक उदाहरण है। सघन वायु इतनी ताकतवर होती है कि टनों व
उसके सहारे उठाया जाता है।

सघन वायु का प्रयोग

पिछले दिनों मैं जैन विश्वभारती में प्रवास कर रहा था। उस स
वहां एक व्यक्ति आया और उसने सघन वायु का एक प्रयोग दिखाय
उसने एक जीप गाड़ी अपने छाती के ऊपर से निकालने के लिए सा
खड़ी कर दी और वह स्वयं जमीन पर लेट गया। उपस्थित लोगों
बड़ा डर लगा कि कहीं इसके फेफड़े चूर-चूर न हो जाएं। पर लोगों
आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा, जब जीप के निकलने के पश्चात
व्यक्ति तत्काल ,खड़ा हो गया। वास्तव में बात यह थी कि उसने अ
फेफड़ों में वायु को सघन रूप में भर लिया था। इसी प्रकार सघन व
के और भी अनेक उदाहरण देखने को मिल सकते हैं।

हां, तो मैं बता रहा था कि आकाश के ऊपर वायु (सघन) और व
उदधि टिका हुआ है। (उदधि के सभी सघन और तरहह्नये दो प्रकार है
उदधि पर पृथ्वी और पृथ्वी पर त्रस-स्थावर जीव अवस्थित हैं।

वायु पर उदधि कैसे टिकता है

यहां यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि वायु पर उदधि कैसे टि
हुआ है यह कोई असंभव बात नहीं है वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध
अनेक प्रयोग किए हैं। एक ट्यूब को हवा से बिलकुल सघन रूप में
दिया। फिर एक रस्सी के द्वारा उसे मध्य भाग से इस प्रकार कस
बांध दिया कि नीचे की वायु बिलकुल ऊपर न आ सके। अब उस
ऊपर का मुंह खोल दिया और उसमें जल भर दिया। जब भरने
पश्चात वह बीच की रस्सी हटा ली गई। प्रयोग में देखा गया कि
पानी नीचे के भाग में बिलकुल नहीं गया। क्या आप बता सकते

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा क्यों हुआ? इसका कारण यही है कि नीचे सघन वायु है। सघन ु पर पानी टिक गया। इस प्रयोग से यह बात बिलकुल अच्छे ढंग से झ में आती है कि वायु पर उदधि टिका हुआ है।

लोक की स्थिति का संक्षिप्त विवेचन मैंने प्रस्तुत किया। अब संक्षेप अलोक को भी समझा लें।

शेषद्रव्यशून्यमाकाशमलोकः।

जहां आकाश के अतिरिक्त दूसरा कोई द्रव्य है, वह क्षेत्र अलोक लोक की अपेक्षा अलोग बहुत अधिक बड़ा है। पर जीव और पुद्गल अभाव में उसकी हमारे लिए कोई उपयोगिता नहीं है।

बन्धुओ! तत्त्व का अपना महत्त्व है। इसकी महत्ता को समझ कर प लोगों को ये तात्त्विक बातें हृदयंगम करनी चाहिए। इससे आपका न तो विकसित होगा ही, साथ ही आपको साधना-पथ पर आगे बढ़ने भी बहुत सहयोग मिलेगा।

ाशहर
, जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

९ : पुद्गल का स्वरूप

तात्त्विक विवेचना के अंतर्गत धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिक आकाशस्तिकायह्लइन तीनों द्रव्यों का प्रतिपादन मैं कर चुका हूं। इ क्रम में आज पुद्गलास्किाय के विषय में कुछ कहूंगा।

स्पर्शरसगंधवर्णवान् पुद्गलः।

स्पर्श, रस, गंध और वर्णयुक्त द्रव्य *पुद्गल* है। यह जैन-दर्शन एक पारिभाषित शब्द है। अन्य किसी दर्शन में यह शब्द इस अर्थ प्रयुक्त नहीं हुआ है। स्पर्श, रस आदि के प्रकार निम्नांकित रूप में

स्पर्शह्लकर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष।

रसह्लतिक्त, कटु,कषाय, आम्ल, मधुर।

गंधह्लसुगंध, दुर्गंध।

वर्णह्लकृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत।

यह कभी संभव नहीं कि पुद्गल में स्पर्श तो हो और रस न रस तो हो और गंध न हो, गंध तो हो और वर्ण न हो। निष्कर्ष यह कि पुद्गल होगाक तो ये चारों अनिवार्य रूप से होंगे। यह दूसरी बात कि स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कहीं हमें दिखाई देते हैं, और कहीं भी। पर इससे उनकी सत्ता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगता। स्पर्श, र गन्ध और वर्ण की तो बात दूर की है, बहुत-से पुद्गल स्वयं इतने सू होते हैं, जिन्हें हम कोरी आंखों से नहीं देख सकते।

सूक्ष्म पुद्गल

प्राचीन समय में चूल्हे का धुआं बाहर निकालने के लिए रसोई में कई छोटे-छोटे छिद्र बनाए जाते थे। आजकल भी कहीं-कहीं रसोईघर देखने को मिलते हैं। उनमें से होकर सूर्य-रश्मियां रसोईघर आती हैं उन सूर्य-रश्मियों में सैकड़ों-हजारों करण तैरते हुए दिखाई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पर जब उन्हें पकड़ने का प्रयास किया जाता तो वे हाथ में नहीं आते। गलों की सूक्ष्मता का एक स्थूल उदाहरण है। वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि तो वे रजकरण बहुत बड़े हैं। इनसे भी बहुत सूक्ष्म पुद्‌गल होते हैं।

पुद्‌गल या पुद्‌गलास्तिकाय के लिए हम अणु शब्द का भी प्रयोग सकते हैं। पर इसके स्थान पर परमाणु शब्द का प्रयोग गलत हो गा। इसलिए बोलचाल तथा लिखने में हमें यह सावधानी रखनी हिए। अज्ञानवश लोग बहुधा यह भूल कर बैठते हैं।

इस संसार में सर्वत्र पुद्‌गलों का एकछत्र साम्राज्य छाया हुआ है। खाते हैं, पीते हैं सोचते हैं, श्वासोच्छ्‌वास करते हैं...... इन सब याओं में हम पुद्‌गलों को ग्रहण करते हैं। पुद्‌गल न हों तो न हमारा ना है, न पीना है, न बोलना है, न चिंतन-मनन है, न श्वासोच्छ्‌वास और न कोई अन्य क्रिया ही। दूसरे शब्दों में पुद्‌गलों के बिना हमारा संसार में कोई अस्तित्व ही नहीं है।

ीर जीव है या अजीव

हमारा शरीर भी पुद्‌गल है। शरीर को पुद्‌गल सुनकर शायद पके दिमाग में यह बात आ सकती है कि आचार्यश्री के कथन में यह संगति क्यों कुछ दिन पूर्व तो एक प्रसंग में शरीर को जीव बताया ा था और आज इसे पुद्‌गल बताया जा रहा है। पर आप चौंकें नहीं। कोई विसंगति नहीं है। केवल अपेक्षाभेद है। मैंने शरीर को जीव श्य कहा था, वह पुद्‌गल नहीं है। वास्तव में जब मैं कहता हूं कि ीर जीव है तो उसके पीछे अपेक्षा हैह्नसजीव पुद्‌गल की। यानी शरीर ीव पुद्‌गल है।

भ्रान्ति का निवारण

पुद्‌गल सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार के होते हैं। जैन मुनि ल अचित्त पुद्‌गलों का ग्रहण करते हैं, सचित्त को नहीं। गृहस्थों में कुछ-कुछ लोगों को सचित्त पुद्‌गलों को खाने का त्याग होता है। लिए से सचित्त पुद्‌गलों को अचित्त बनाकर उनका उपयोग करते हैं। संदर्भ में कुछ लोगों का तर्क है कि जब सचित्त को अचित्त करके का उपयोग किया जाता है, तब सजीव खाने में क्या आपत्ति है, चित्त का यह त्याग क्या मात्र विडंबना नहीं है मैं मानता हूं, यह एक री भ्रान्ति है। जो लोग इस प्रकार सोचते हैं, वे सचित्त का त्याग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

करना एवं सचित्त को अचित्त बनाकर खानाह्नइन दोनों बातों को
सकर देते हैं। वास्तव में तयाग करना एक बात है और सचित्त
अचित्त बना कर खाना सर्वथा दूसरी। त्याग करनेवाले के लिए यह
प्रतिबन्ध नहीं कि वह सचित्त को अचित्त बनाकर खाए ही। जैसा कि
अभी-अभी बताया, हम मुनियों को सचित्त का त्याग है, पर हम सचि
को अचित्त कभी नहीं बनाते। मात्र सहजरूप में गृहस्थों के घेरों से प्र
अचित्त पुद्‌गलों से अपना काम चलाते हैं। कुछ गृहस्थ भी ऐसे होते
जो सचित्त का त्याग रखते हैं, फिर भी सचित्त को अचित्त बनाकर
खाते। आप कहेंगे, फिर क्या वे भी आपकी तरह भिक्षा करते हैं
भिक्षा करने की उनहें क्या अपेक्षा है? आप लोगों को ख्याल रख
चाहिए कि बहुत-सी वस्तुओं को तो गृहस्थों को बिना त्याग भी अ
करना पड़ता है। रोटी,चावल, दाल, शाक, भाजी अनेकानेक वस्तुएं स
रूप में अचित्त बनाई जाती है। त्याग से इनका कोई सम्बन्ध नहीं
फिर बहुत सही तो यह है कि खाने के काम आनेवाली चीजों में
सचित्त रूप में तो बहुत कम वस्तुएं उपयोग में आती हैं। अधिकतर
अचित्त रूप में ही उपयोग में आती हैं। सचित्त के त्याग करनेवा
व्यक्ति केवल सहजनिष्पन्न अचित्त वस्तुओं में संतोष करे, यह स
अच्छी बात है। पर यदि सचित्त का त्याग करनेवाला कोई अपनी दुर्बल
के कारण सचित्त वस्तुओं को अचित्त करके खाता भी है तो उ
सचित्त के त्याग का कोई भंग नहीं है। अलबत्ता, इसे धर्म नहीं म
जा सकता। धर्म तो त्याग है, भोग नहीं।

प्रसंगवश मैंने यह बात स्पष्ट कर दी है। यद्यपि मैं विषयान्तर
गया हूं, तथापि प्रसंग आने पर ऐसी बातों का स्पष्टीकरण कर दे
उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है।

छह द्रव्यों में पुद्‌गल का विवेचन सर्वाधिक विस्तीर्ण है। इसका
बहुत व्यापक है। हमारे ये आठ कर्म भी पुद्‌गल ही हैं। एक-एक कर्म
अनन्त-अनन्त पुद्‌गल जुड़े हुए हैं। पता नहीं कब छुटकारा होगा
कर्मों से! कर्मों से छुटकारा पाने के लिए पुरुषार्थ की अपेक्षा है।
सामान्य पुरुषार्थ अपेक्षित है, क्योंकि ये कर्म-पुद्‌गल कोई एक-दो ज
से नहीं, अपितु अनन्त-अनन्त काल से हमारे पीछे लगे हुए हैं। पर
एक बात अवश्य है। गहराई में उतरकर यदि आप देखेंगे तो पाएंगे कि
जबरदस्ती हमारे पीछे नहीं लगे हुए हे। हमने ही इन्हें आमंत्रण दे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाया है, इनका स्वागत किया है और उनको अपने पीछे लगाया है। लिए हमें कर्मों पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। फिर दोषारोपण ने से कुछ बनेगा भी नहीं। बस, अपेक्षा यही है कि हम अपने-अपको ालें। स्वयं को संभालने का अर्थ हैह्नअपने जीवन को संवर और र्जरा से भवित करना।

ाशहर
ः जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१० : पुद्‌गल के लक्षण

कल के प्रवचन में मैंने पुद्‌गल की चर्चा की थी। जैसा कि व
स्पष्ट किया था, यह जैन-दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। स्प
रस, गंध और वर्णयुक्त द्रव्य को पुद्‌गल माना गया है। आज हम इस
व्युत्पत्तिलभ्य शाब्दिक अर्थ को भी समझें।

पूरणगलनधर्मत्वातु पुद्‌गल इति।

जिसमें पूरणह्नएकीभाव और गलनह्नपृथग्भाव दोनों होते हैं,
पुद्‌गल है। यह इसका व्युपत्तिलभ्य शाब्दिक अर्थ हे।

आप देखें, इस पण्डाल में रेत बिछी है। कोई व्यक्ति यहां से थो
रेत उठाता है और उसे दूसरी जगह डाल देता है। जहां से रे उ
जाती है, वहां गढ़ा हो जाता है और जहां रेत डाली जाती है, वह
बन जाता है। यह कार्य पुद्‌गल ही कर सकता है। पुद्‌गल के सिव
कोई अन्य द्रव्य ऐसा सकरने में सक्षम नहीं है। आज किसी ने ऑपरेश
करवाया। आठ इंच लम्बा, दो इंच चौड़ा और तीन इंच गहरा घाव
गया। यह घाव कैसे हुआ? वहां से मांस के रूप में एकत्रित पुदृगलों
निकल जाने के कारण। एक महीने बाद वह घाव भर जाता है। य
वहां बहुत-से दूसरे पुद्‌गल आकर जमा हो जाते हैं। यह खाली क
और पुद्‌गल भरना का ही स्वभाव है।

इसके अतिरिक्त पुद्‌गल के और भी अनेक लक्षण/धर्म ब
गए हैंह्न

शब्द-बन्ध-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतप्रभावांश्च।

*संहन्यमानानां भिद्यमानानां च पुद्‌गलानां ध्वनिरूपः परिण
शब्दः। प्रायोगिको वैस्रसिकश्च। प्रयत्नजन्यःप्रायोगिकःह्नभाषात
कोऽभाषात्मको वा। स्वभावजन्यो वैस्रसिकःह्नमेघादिप्रभवः।*

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतम, ोत, प्रभा आदि पुद्गल के लक्षण धर्म हैं। ये सब पुद्गल के विभिन्न र्याय हैं।

द

शब्द से आप सगब परिचित हैं। पर यह क्यों होता है, कैसे होता आदि प्रश्न संभवतः बहुत-से लोगों के लिए अनुत्तरित हैं। दो वस्तुओं संघात या भेद से उत्पन्न ध्वनि का नाम शब्द है। आप अपने कमरे र खिड़की के दरवाजे बंद करते हैं तो आवाज होती है। यह आवाज ों? यह इसलिए कि दो कपाटों का परस्पर संघात होता है। इसी ार जब आप दरवाजे खोलते हैं, तब भी आवाज होती है। यह ध्वनि ालिए है कि दो कपाट अलग-अलग हो रहे हैं। दरवाजे ही क्यों, कोई वस्तुओं का संघात या भेद होता है तो ध्वनि अवश्यंभावी है।

शब्द के दो प्रकार हैंह्न१. प्रायोगिक शब्द २. वैस्रसिक शब्द।

ोगिक शब्द

प्रयत्नजन्य शब्द। यानी जिस शब्द के होने में किसी का प्रयत्न ाता है, वह प्रायोगिक है। प्रायोगिक शब्द के दो प्रकार हैंह्न१. ात्मक २. अभाषात्मक। भाषा-युक्त शब्द को भाषात्मक कहा जाता अभी मैं प्रवचन कर रहा हूं, यह भाषात्मक शब्द है। बिना भाषा का द अभाषात्मक कहलाता है। किसी ने ताली बजाई। शब्द हुआ। पर शब्द भाषारहित है, इसलिए अभाषात्मक है।

सिक शब्द

अप्रयत्नजन्य शब्द। सहजरूप से अर्थात अपने-आप होनेवाला द। आप यह कभी न समझें कि सभी शब्द प्रयत्नपूर्वक होते हैं। त-से शब्द सहज रूप से भी होते हैं। आकाश में गर्जना होती है। यह भाविक ध्वनि है। किसी ने बादलों को इकट्ठा नहीं किया। सहज रूप बादल आपस में टकराए और ध्वनि पैदा हो गई।

अथवा जीवाजीवमिश्रभेदादयं त्रेधा।

शब्द के तीन भेद भी किए जा सकते हैंह्न१. जीवशब्द २. ीवशब्द ३. मिश्रशब्द।

जीव द्वारा किया गया शब्द जीव शब्द है। पक्षी चहकते हैं, कुत्ता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भौंकता है, आदमी बोलता है। ये सब जीवशब्द के उदाहरण हैं।

अजीव के द्वारा होनेवाला शब्द। अजीवशब्द है। जैसे, मेघ-ग इत्यादि।

जीव और अजीव दोनों के योग से होनेवाला शब्द मिश्रशब्द जैसे, एक व्यक्ति वीणा बजा रहा है। यहां व्यक्ति जीव है और व अजीव। शब्द दोनों के योग से होता है। अकेले व्यक्ति या अकेली व से शब्द उद्‌भुत नहीं होता।

शब्द आकाश का युग नहीं

जैसा कि मैंने पहले बताया, जैन-दर्शन के अनुसार शब्द पुद्‌गल लक्षण है। कुछ दार्शनिक शब्द को आकाश का गुण मानते हैं। इसके उनका तर्क यह है कि शब्द आकाश में होता है। ठीक है, शब्द आक में होता है। पर आकाश में होने मात्र से वह आकाश का गुण नहीं सकता। आकाश में तो गति भी होती है। यदि आकाश में होने मात्र शब्द आकाश का गुण हो तो गति को भी आकाश का गुण मानना चाहि परंतु ऐसा नहीं माना जाता। अतः उनके उपर्युक्त तर्क का कोई औचि समझ में नहीं आता। इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात और हैह्न

मूर्त्तोऽयं नहि अमूर्त्तस्य आकाशस्य गुणो भवति श्रोतेन्द्रियग्राह्यत्व न च श्रोत्रेन्द्रियममूर्त्त गृह्णाति इति।

शब्द मूर्त्त है। इसलिए वह अमूर्त्त आकाश का गुण नहीं सकता। जो जिसका गुण होता है, वह सदा उसके समान ही होता उसका विरोधी नहीं हो सकता। पूछा जा सकता है, शब्द मूर्त है, इस क्या प्रमाण है। यदि मूर्त न हो तो श्रोत्रेंद्रिय के द्वारा उसका कभी ग्र नहीं हो सकता। यह उसकी मूर्तता का सबसे पुष्ट प्रमाण है। अमूर्त आंखें कभी नहीं देख सकतीं। कई लोग कभी-कभी कह दिया करते कि हमने साक्षात भगवान के दर्शन किए। मैं समझता हूं, उनको द नहीं, भ्रांति होती है, क्योंकि भगवान तो निरंजन-निराकार हैं। फिर आंखों के विषय कैसे बनेंगे? यही बात शब्द के विषय में है। शब्द अमूर्त होता तो वह कानों के द्वारा कैसे सुना जाता।

शब्द-प्रयोग का विवेक

शब्द कोमल और कठोर दोनों प्रकार के होते हैं। हम प्रत

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ुभव करते हैं कि कुछ शब्द व्यक्ति को कर्णप्रिय लगते हैं, तो कुछ द ऐसे भी होते हैं, जो सर्वथा कर्णकटु होते हैं। बोलता कौवा भी है र बोलती कोयल भी है। पर दोनों के शब्दों में रात-दिन का अंतर है। यल की बोली सुनते-सुनते मन कभी अघाता नहीं, बल्कि कहना हिए कि उसे बार-बार सुनने की इच्छा होती है। इसके विपरीत यदि वे की बोली जरा भी कान में पड़ जाती है तो मन में आता है कि यह बोले तो अच्छ्ज्ञ। यह अंतर और कुछ नहीं, मात्र मधुर और कर्कश, द-पुद्गलों का है। कवि ने कितना सुंदर कहा हैह्न

कागा कासे लेत है, कोयल काको देत।
मीठे शब्द-प्रयोग से, जग अपनो कर लेत।।

मैं मानता हूं, शब्दों का प्रयोग करना एक बहुत बड़ी कला है। के परिणाम बहुत गहरे होते हैं। जहां मधुर भाषण से व्यक्ति जन- के मन को जीत लेता है, वहीं कटु शब्दों के प्रयोग के कारण वह ने दुश्मन या विरोधी खड़े कर लेता है।

मनुष्य की यह सहज मनोवृत्ति होती है कि वह मधुर शब्द सुनना हता है। कटु शब्द उसे अप्रिय लगता है। मैं तो मानता हूं कि वहारिक जीवन की आवश्यक का एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण सूत्र मधुर भाषण। कहा तो यहां तक गया हैह्न **सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात, ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।** अर्थात सत्य बोलो, प्रिय बोलो ऐसा सत्य भी बोलो, जो अप्रिय हो।

आप देखें, सत्य भी अप्रिय है तो उसे बोलने का निषेध किया ा है। वास्तव में यह एक बहुत गहरी बात है। अंधे को अंधा कहना सत्य नहीं, पर अप्रिय वचन अवश्य है। इसलिए उसे यदि अंधा कहा ता है तो वह कष्ट का अनुभव करता है। उप सी व्यक्ति को अंधा न कर सूरदास कहा जाए तो उसे अप्रिय नहीं लगता। आप कहेंगे, त तो एक ही है, केवल शब्दों का अन्तर है। यही हतो मैं बताना हता हूं कि एक बात होते हुए भी मधुर शब्द और कर्कश शब्द के ोग का अन्तर पड़ जात है। मैं नहीं समझता, जब अमृत देने से काम लता है, तब किसी को जहर क्यों दिया जाए, जब मधुर शब्दों से ारा काम आसानी से चलता है, फिर कठोर शब्दों का प्रयोग क्यों या जाए।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

शास्त्रार्थ का उद्देश्य

तत्त्व यह है कि जहां तक बन सके व्यक्ति को कठारे शब्दों प्रयोग से परहेज करना चाहिए। यद्यपि सामान्य व्यक्ति के लिए थोड़ा कठिन तो हो सकता है, तथापि जीवन की शान्ति के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि चाहे कोई अप विरोधी भी क्यों न हो, उसके साथ भी कभी कठोर शब्दों का प्रय नहीं होना चाहिए। विचार-भेद किसी से भी हो सकता है। पर विचार- के कारण किसी पर कटु शब्दों से प्रहार करना मेरी दृष्टि में कद उचित नहीं है। मैं इसमें एक प्रकार की हिंसा के दर्शन करता प्राचीनकाल में परस्पर शास्त्रार्थ होते थे। उन शास्त्रार्थों में दोनों ही प द्वारा अपने-अपने विरोधी पक्ष पर कटु और आक्षेपात्मक भाषा का प्रय होता था। फिर कभी-कभी तो यह कटु और आक्षेपात्मक भाषा इस सी तक पहुंच जाती थी कि परस्पर भयंकर संघर्ष होने लगता। आजकल ऐसे शास्त्रार्थ कहीं-कहीं चहते हैं। वस्तुतः शास्त्रार्थ कोई बुरा तत्त्व न है, अपितु कहना चाहिए कि बहुत लाभप्रद है, बशर्ते कि वह ज्ञानार्जन भावना के साथ जुड़ा हो। पर जहां जय-पराजय की भावना उसके स जुड़ जाती है, वहां ज्ञानार्जन एवं सद्भाव के स्थान पर दुर्भाव और क ही बढ़ता है।

मेरी दृष्टि में जय और पराजय बहुत महत्त्व की बात नहीं महत्त्व हैह्नज्ञान देने और ज्ञान लेने का। जहां यह उद्देश्य फलित होता वहां शास्त्रार्थ करने में कोई आपत्ति नहीं। पर जहां यह उद्देश्य गं होकर जय-पराजय की भावना प्रमुख हो जाती है, वहां शास्त्रार्थ न क ही श्रेयस्कर है। मुझे लगता है, शास्त्रार्थ के साथ आमतौर पर भावना बन ही जाती है, इसलिए मैंने शास्त्रार्थ करना लगभग बंद दिया है। हां, ज्ञानार्जन की दृष्टि से कोई तत्त्व-चर्चाह करे तो उसमें मु किंचित भी कठिनाई नहीं है।

गंगाशहर

२३ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

११ : पुद्‌गल की विभिन्न परिणतियां

कल के प्रवचन में मैंने शब्द की विस्तृत चर्चा की। आज पुद्‌गल दूसरे लक्षण बंध से प्रवचन प्रारम्भ कर रहा हूं।

संश्लेषःह्नबन्धः। आयमपि प्रायोगिकः सादिः, वेस्रसिकस्तु सादि-दिश्च।

बंध का अर्थ हैह्नसंश्लेष संयोग, अर्थात दो, चार, पांच, दस, सौ गलों का परस्पर मिल जाना बंध कहलाता है। इसके दो प्रकार १. प्रायोगिक बंध। २. वैस्रसिक बंध।

कपड़े के दो टुकड़ों को सिलाई कर जोड़ दिया गया, दो कपाटों को ला दिया गया। यह प्रायोगिक बंध है। आकाश में बादलों की घटा का ना, मिट्टी के लाखों-करोड़ों कणों का मिलकर पत्थर बन जाना...... सिक बंध है, क्योंकि ये सहज बनते हैं। इन्हें बनाने का किसी के रा कोई प्रयास नहीं किया जाता।

लेष सादि है या अनादि

प्रायोगिक बंध और वैस्रसिक बंध के सैक्ड़ों-हजारों उदाहरण बताए सकते हैं पूछा जा सकता है कि ये बंध सादि हैं या अनादि। योगिक बंध कभी अनादि नहीं होते है वे सदा सादिह्नप्रारंभसहित होते उनके बनने की तिथि, वार आदि सब कुछ होते हैं। आपके गंगाशहर हजारों मकान हैं। ये मकान प्रायोगिक बन्ध ही हैं। अनके निर्माण की थि, वार, संवत आदि सब प्राप्त हो सकते हैं। यानि ये सादि हैं। ये रें, बसें आदि सब सादि हैं। इस संदर्भ में एक बात और ध्यान में ा की है कि जो सादि होता है, वह सांत भी होता है। अर्थात जिसका रंभ है, उसका अंत भी निश्चित है। प्रायोगिक बंध सादि है, इसलिए सांत भी है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वैस्रसिक बंध सादि भी है और अनादि भी। जैसा कि मैंने बाद की घटा का उदाहरण दिया था, यह सादि बंध है। इसी प्रकार आक में इंद्रधनुष बनता है, यह भी सादि है। ये बनते हैं और नष्ट होते पृथ्वी, पहाड़ आदि अनादि वैस्रसिक बंध हैं, क्योंकि इनकी आदि न होती है। जीव और कर्म (पुद्गल) का बंधन अनादि है।

पुद्गल की विभिन्न परिणतियां

हमें यहां यह बात समझनी है कि बंध चाहे प्रायोगिक हो वैस्रसिक सादि हो या अनादि, सब पुद्गलों के होते हैं। पुद्गल सिवाय और किसी द्रव्य का यह लक्षिण नहीं है। इसलिए बंध पुद्गल एक पहचान है।

सौक्ष्म्य के दो प्रकार

सौक्ष्म्य और स्थौल्य भी पुद्गल के लक्षण हैं। ये दोनों ही पुद् की परिणतियां हैं। सूक्ष्मता और स्थूलता से आप सभी परिचित हैं। सगे भाइयों में से एक का शरीर स्थूल हो सकता है और दूसरे कृश। इस प्रत्यक्ष देखते हैं कि स्थूलता के कारण जहां कई व्यक्तियों वजन सौ किलो से भी अधिक हो जात है, वहीं कृशता के कारण अ व्यक्ति चालीस किले से कम के ही रह जाते हैं। पत्थर भारी होता लकड़ी उससे हलकी होती है भारीपन और हलकापन ह्नये दोनों स्थि स्थूलता और सूक्ष्मता के कारण ही हैं।

सौक्ष्म्य द्विविधम्ह्नअन्त्यमापेक्षिञ्च। अन्त्यं परमाणेः आपेि यथाह्ननालिकेरापेक्षया आम्रस्य।

सौक्ष्म्य के दो प्रकार हैंह्न१. अंत्य सौक्ष्म्य २. आपेक्षिक सौक्ष्म

अंतिम सूक्ष्म को अंत्य सौक्ष्म्य कहा जाता है। दूसरे शब्दों में सूक्ष्म पूद्गल, जिसे फिर खंडित न किया जा सके अंत्य सौक्ष्म्य जैन-दर्शन में ऐसे पुद्गल को *परमाणु* की संज्ञा दी गई है।

अपेक्षा से सूक्ष्म को आहपेक्षिक सौक्ष्म्य कहा गया है। एक व्यि का वजन दो मन है, दूसरे का डेढ़ मन है। डेढ़ मनवाला व्यक्ति मनवाले व्यक्ति की अपेक्षा से सूक्ष्म है। पर यदि डेढ़ मन वजनव व्यक्ति के सामने कोई मन वजनवाला व्यक्ति हो तो डेढ़ मनवा व्यक्ति स्थूल और एक मनवाला व्यक्ति सूक्ष्म कहलाएगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परमाणु किसी अपेक्षा से सूक्ष्म नहीं हो, क्योंकि किसी अपेक्षा वह ल नहीं होता। परमाणु के बारेह में अनेक दार्शनिकों ने विचार किया वैशेषिक दर्शन के आचार्य कणाद ने परमाणु की परिभाषा देते हुए ा हैह्न

जालान्तर गते भानौ, सूक्ष्मं यद् दृश्यते रतः।
तस्य षष्ठतमो भागः, परमाणुः प्रकीर्तितः।।

ह्न जाली से होकर सूर्य-रश्मियां अंदर आती हैं। उन रश्मियों में सूक्ष्म रजकण तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उन रजकणों में से एक जरकण के छठे भाग का नाम परमाणु है।

यह परिभाषा किसी समय चलती थी, पर आज नहीं चल सकती, ोंकि उसे रजकण का सौवां, हजारवां और लाखवां हिस्सा भी किया सकता है। जैन-दर्शन में जैन-दर्शन में इस रजकण के दो से लेकरक ंख्य, अनन्त और अनन्तानन्त टुकड़ो तक की कल्पना गी गई है। -दर्शन का परमाणु अविभाज्य होता है। उसका फिर हिस्सा भाग नहीं या जा सकता। जैन-दर्शन के इतने सूक्ष्म तात्त्विक विवेचन को देखकर सहज जी विश्वास किया जा सकता है कि जैन तीर्थंकर अतीन्द्रिय न से सम्न्न थे। विज्ञान जहां पर आज पहुंचने की चेष्टा में है, वहां र वहां से भी बहुत आगे वे हजारो-हजारों वर्ष पहले पहुंच चकु हैं।

ौल्य के दो प्रकार

स्थौल्यमपि द्विविधम्ह्नअन्त्यं अशेषलोकव्यापिमहास्कन्धस्य।
पेक्षिकं यथाह्नआम्रापेक्षया नालिकेरस्य।

सौक्ष्म्य की तरह स्थौल्य के भी दो प्रकार हैंह्न१. अंत्य स्थौल्य २. पेक्षिक स्थौल्य।

अंतिम स्थूल को अंत्य स्थौल्य कहा जाता है। जैसेह्नलोकव्यापी ास्कंध।

अपेक्षा से स्थूल को आपेक्षिक स्थौल्य कहा गया है। जैसेह्नआम अपेक्षा तरबूज स्थूल है।

आपकी जिज्ञासा हो सकती है कि अंतिम स्थूल पदार्थ क्या है। ां कल्पना की गई है कि एक ऐसा स्कंध है, जो अकेला ही समूचे क में फैलता है। एक ही बादल कई बार पूरे आकाश में छाया हुआ र आता है। परंतु आकाश तो अनंत है, इसलिए एक बादल पूरे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आकाश में छा जाए, यह असम्भव है। किंतु चूंकि हमारी दृष्टि सीमि
है, इसलिए जहां तक हमारी दृष्टि जाती है, वहां तक वह एक ही बाद
छाया हुआ प्रतीत होता है। यह स्थूल उदाहरण मैंने समझाने के लि
दिया। इसी प्रकार चौदह रज्जु परिमाणवाले इस लोक के लिए स्कंध
कल्पना की गई है। इसे महास्कंध कहा जाता है।

केवलीसमुद्घात के समय एक आत्मा समूचे लोक में व्याप्त
जाती है। समुद्घात के चौथे समय में आत्म-प्रदेश पूरे लोकाकाश में फै
जाते हैं। उस समय कर्म-पुद्गलों की निर्जरा होती है। उन निर्जी
पुद्गलों का पांचवें समय में एक लोकव्यापी स्कंध बन जाता है। य
स्कन्ध महास्कंध कहलाता है।

इस प्रकार सूक्ष्मता और स्थूलता दोनों ही पुद्गल के लक्षण
पुद्गल के अतिरिक्त कोई द्रव्य सूक्ष्म या स्थूल होता ही नहीं। इ
संदर्भ में इतना और समझ लेना चाहिए कि पुद्गल सूक्ष्म का स्थूल अ
स्थूल का सूक्ष्म हो सकता है। जैसेह्नआज बच्चा सूक्ष्म है, पर बढ़
बढ़ते वह युवक बन जाता है। इसी प्रकार आज व्यक्ति स्थूल है।
बीमारी, बुढ़ापा या चिन्ता के कारण वह सूक्ष्म होने लगता है और हो
होते बिलकुल अस्थिपंजर-सा रह जाता है।

प्रसंग रामायण का

रामायण में प्रसंग आता है कि हनुमान राम की मुद्रिका लेकर लं
में जाते हैं। अवसर देखकर वे मुद्रिका सीता की गोद में डाल देते
सीता मुद्रिका हाथ में उठाती है और सोचती है कि यह मुद्रिका कहां
आई कैसे आई। मुद्रिका पर राम का नाम लिखा था। ज्यों ही उस
दृष्टि नाम पर जाती है, वह भवविह्वल हो जाती है। अब कहां और कै
के प्रश्नों को वह भूल जाती है और उसके मन में राम की स्म
घनीभूत बन जाती हैह्न

मुद्रे! ब्रूहि सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः स्वयं,
सन्ति स्वामिनि! मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिंतया।
एनां व्याहर मैथिलेन्द्रतनये! नामान्तरेणाधुना,
रामस्त्वद्विरहेण क यस्यै चिरं दत्तवान्।।

सीता अत्यंत स्नेह से मुद्रिका को संबोधित करती हुई ब
आतुरता से पूछती है 'क्यों श्री राम और लक्ष्मण सकुशल तो हैं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

द्रिका कहती है‘हां, स्वामिनी ! श्री राम और लक्ष्मण सकुशल हैं। पर
निवेदन है कि आप मुझे मुद्रिका की संज्ञा से सम्बोधित न करें,
कण के नाम से पुकारें।’

सीता आश्चर्य से पूछती हैं‘क्यों?’

मुद्रिका अपना आशय स्पष्ट करती है‘जब तक आप थीं, तब तक
मुद्रिका थी। पर आपका वियोग हो जाने पर श्री राम ने मुझे कंकण
ा दिया है। अब मैं मुद्रिका के रूप में उनकी अंगुली में नहीं, अपितु
में कंकण के रूप में स्थान पाती हूँ, क्योंकि आपके वियोग के
रण राम का शरीर चिन्ता से अति कृश हो गया है।’

यह बात मैंने प्रसंगवश कह दी। समझना यही है कि किन्हीं कारणों
कभी स्थूल सूक्ष्म बन जाता है और कभी सूक्ष्म स्थूल बन जाता है।
दृष्टि में यह बहुत महत्त्व की बात नहीं है। महत्त्व की बात है
ता। दोनों ही परिस्थितियों में व्यक्ति माध्यस्थ भाव रखेयही श्रेय-
है।

स्थान

स्थौल्य के बाद हम संस्थान को समझें

*आकृतिःसंस्थानम्। तच्चचतुरस्रादिकं इत्थंस्थम्, अनियताकारं
नित्थंस्थम्।*

संस्थान भी पुद्‌गल का एक लक्षण है। संस्थान यानी आकृति।
तनी भी आकृतियां या आकार हैं, वे सारे पौद्‌गलिक हैं। वे सभी
गल होने की सूचना हैं। किसी को श्याम पुद्‌गलों का योग मिला और
की आकृति श्याम बन गई। इसके विपरीत किसी को श्वेत पुद्‌गलों
योग मिला और उसकी आकृति श्वेत बन गई। संस्थान के दो प्रकार
१. इत्थंस्थ २. अनित्थंस्थ।

नियत आकारवाली संरचना इत्थंस्थ कहलाती है। त्रिकोण,
ष्कोण, आयत, परिमण्डल वृत सब इत्थंस्थ के भेद हैं। यद्यपि
मण्डल और वृत्त दोनों ही गोलाकार होते हैं, फिर भी इन दोनों में
म अन्तर है। वृत्त मोदक की तरह गोल होता है, जबकि परिमण्डल
ी की हतरह गोल। यानी जहां परिमण्डल में बीच का भाग खोखला
ा है, वहीं वृत्त का यही भाग बिलकुल सघन होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनियत आकारवाली संरचना संरचना अनित्थंस्थ कहलाती
नियत आकार के अतिरिक्त जितने भी आकार बनतें हैं, वे स
अनित्थंस्थ है। हम सब जीव हैं, चेतन हैं। पुद्गल जड़ हैं, अचेतन है
इस स्थिति में किसी के भी मस्तिष्क में यह प्रश्न उभरना स्वाभाविक
कि हमें तो आत्मा का ज्ञान करना चाहिए, पुद्गलों के ज्ञान से हम
क्या लेना-देना। यह ठीक है कि हमें आत्मा का ज्ञान करना चाहिए।
हमें यह भी ख्याल में रखना चाहिए कि बिन जड़ को जाने हम चेतन
नहीं जान सकते, बिना पुद्गल को जाने हम आत्मा को नहीं पहच
सकते। यद्यपि पुद्गल हेय हैं, तथापि जब तक हम उन्हें जानेंगे ही न
तब तक उन्हें छोड़ेंगे कैसे? हिंसा को जानना उतना ही जरूरी
जितना अहिंसा को। अन्यथा न तो अहिंसा को समझा जा सकता है उ
न ही हिंसा को छोड़ा जा सकता है। सत्य को जानने के लिए और उ
स्वीकार करने के लिए असत्य को जानना और समझना भी आवश्
है। अन्यथा सत्य और असत्य का विवेक नहीं किया जा सकता। उ
जहां इसका विविक ही नहीं होता, वहां व्यक्ति कैसे तो हेय को छोड़
और कैसे उपादेय को स्वीकार करेगा?

सारांश यही है कि हमें हेय और उपादेय दोनों ही प्रकार के त
को समान रूप से जानना और समझना चाहिए। सम्यक रूप से जा
के बाद हम हेय को छोड़ते चलें और उपादेय को ग्रहण करते चलें, य
प्रशस्त पथ है।

गंगाशहर
२४ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१२ : क्या अंधकार पुद्गल है

पुद्गल के लक्षणों के विवेचन के अन्तर्गत कल मैंने संस्थान तक
बात बताई। आज मैं कुछ अन्य लक्षणों की चर्चा करूंगा।

विश्लेषःह्नभेदः। स च पञ्चधाह्न

१. उत्करःह्नमुद्गशमीभेदवत्।

२. चूर्णःह्नगोधूमचूर्णवत्।

३. खण्डःह्नलोहखण्डयत्।

४. प्रतरःह्नअभ्रपटलभेदवत्।

५. अनुतटिकाह्नतटाकरेखावत्।

पुद्गल का एक लक्षण हैह्नभेद का अर्थ होता हैह्नविश्लेषण। भेद के
च प्रकार बताए गए हैंह्न१. उत्कर २. चूर्ण ३. खण्ड ४. प्रतर ५.
ुतटिका।

टूट-टूट कर ऊंचा उठे वह उत्कर कहलाता है। उदाहरणार्थह्न मोठ
फली, मूंग की फली। आप ध्यान दें, खेत में मोठ, मूंग आदि की
लियां सूखने के बाद जब अपने-आ टूटते हैं, तब ऊपर उछलती हैं।
ी प्रकार एरंड भी टूटने के बाद ऊपर जाता है। जमीन पर मिट्टी डाली
ती है तो रजें ऊपर उठती हैं। धुआं ईंधन से अलग होकर सहजरूप
ऊपर उठता है।

टूटने पर चूर्णह्नचूर्ण हो जाने को चूर्ण कहा जाता है। गेहूं, बाजरा
दि को जब चक्की में पीसा जाता है तो उनके पुद्गल टूटकर चूर्ण-
ी हो जाते हैं।

तोड़ने से छोटे-छोटे टुकड़े होना खंड कहलाता है। पत्थर, लकड़ी
ादि को तोड़ने से उनके छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परत-दर-परत उतरने को प्रतर की अभिधा से पहचाना जाता
जैसेहृअभ्रक के दल, प्याज के छिलके।

टूटने के बाद वस्तु में दरार का पड़ जाना अनुतटिका
जैसेहृतालाब की मिट्टी। तालाब की मिट्टी जब सूखती है तो उसमें द
पड़ जाती हैं।

ये सारे भेद विभिन्न रूपों में पुद्गल के अस्तित्व को प्रकट क
हैं। कभी-कभी बोल-चाल की भाषा में कह दिया जात है कि उसका
फट गया। क्या मन कभी फटता है ? वास्तव में मन कभी नहीं फटता
इस कथन का तात्पर्य इतना-सा है कि जिसके साथ व्यक्ति
आत्मीयता थी, वह अब समाप्त हो गई। पर इस फटने से हमारे पुद्
के लक्षण-बोध का कोई संबंध नहीं है। भाषा में ये आलंकारिक प्रय
चलते हैं और इनके प्रयोग से उसकी सुंदरता बहुगुणित हो जाती है

आत्मा कितनी लंबी-चौड़ी है

आप जिस-किसी चीज में भेद देखें, उसे पुद्गल जानें। आत्मा
कभी भेद नहीं होता। इस संदर्भ में कुछेक प्रश्न सामने आते हैं। बहुत
आप देखते हैं कि छिपकली की पूंछ कट जाती है। अब पूंछ भी छटपट
है और वह स्वयं भी। युद्ध में सभुट का सिर धड़ से अलग होकर
गिर जाता है। अब उसका धड़ भी छटपटाता है और सिर भी। इस स्थि
में क्या ऐसा माना जाए कि आत्मा खण्ड-खण्ड में विभक्त होती है?
प्रश्न को अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। वास्तव में इन सब प्रसंगों
शरीर की ही टुकड़े होते हैं, आत्मा अखण्ड रहती है। केवल शरीर
टुकड़ों से आत्मा का एक संबंध बना रहता है। आप पूछ सकते हैं कि
आत्मा कितनी लम्बी-चौड़ी होती है। मैं कितनी लंबाई-चौड़ाई बताउ
फैलाव की स्थिति में एक आत्मा समूचे लोक में व्याप्त हो सकती है। अ
स्थूल उदाहरण से समझें। शरीर का एक टुकड़ा यहां पड़ा है और दूर
टुकड़ा हजार मील दूर पड़ा है। इसके बावजूद दोनों की आत्मा एक ह
है। दोनों का एक संबंध होता है। पर यह विस्तार शुद्ध आत्मा में
अपितु पुद्गलयुक्त आत्मा में ही होता है।

मारणांतिक समुद्घात

शास्त्रों में मारणान्तिक समुद्घात का वर्णन है। आज कोई ज
मनुष्य-क्षेत्र में है मरकर उसे स्वर्ग जाना है। मरने से एक मुहूर्त

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

के आत्म-प्रदेश बाहर निकलने शुरू हो जाते हैं। जहां उसे जनमना वहां तक उनका अविच्छिन्न तांता लग जाता है। इस क्रम में असंख्य त्मप्रदेश शरीर से बाहर निकल जाते हैं। यहां समझना यह है कि त्मा चाहे कितनी ही विस्तीर्ण क्यों न हो जाए या फिर कितनी ही कुचित क्यों न हो जाए, उसका संबंध सदा एक ही रहता है। उसमें विश्लेष नहीं होता। भेद सदा पुद्गलों में ही हो सकता है।

धकार

भेद के पश्चात इम अंधकार की चर्चा करेंगे। अंधकार भी पुद्गल एक लक्षण है।

कृष्णवर्णबहुलः पुद्गलपरिणामविशेषः तमः।

श्यामवर्ण पुद्गलों के सघन रूप में एकत्र होने का नाम अंधकार है। छ दार्शनिक अंधकार को पुद्गल नहीं मानते। उनकी मान्यता के नुसार अंधकार मात्र प्रकाश का अभाव है। उन्होंने अपने इस कथन को ार्थ साबित करने के लिए अनेक तर्क दिए हैं। बहुत-से लोग उनके कथन को सही मानते हैं। पर जैन-दर्शनिकों को यह मान्यता स्वीकार हीं है। जैन-दर्शन के अनुसार अंधकार अभाववत्मक नहीं, अपितु ावात्मक स्थिति है। हम व्यवहार में भी 'अंधकार है'ह्नऐसा कहते हैं। कथन उसके भावात्मक रूप को प्रमाणित करता है। यदि अन्धकार भावात्मक होता तो 'अंधकार है' के स्थान पर हमारे कथन की भाषा काश नहीं है' यह होती है। लेकिन हम सब जानते हैं कि अंधकार को काश नहीं है'ह्नऐसा नहीं कहा जाता।

दूसरी बातह्नयदि प्रकाश का अभाव ही अंधकार है तो कोई यह कह समता है कि अंधकार के अभाव का नाम ही प्रकाश है; प्रकाश म का कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। यदि अंधकार के स्वतंत्र अस्तिव को कार किया जाएगा तो प्रकाश के स्वतंत्र अस्तित्व को सिद्ध करने का धार भी समाप्त हो जाएगा। इसलिए जब प्रकाश का स्वतंत्र अस्तित्व कार किया जाता है तब अंधकार के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारने का ई आधार नहीं है। यदि नहीं हो सकता कि हम एक के अस्तित्व को स्वीकार करें और दूसरे को अस्वीकार।

'प्रकाश के अभाव का नाम अंधकार है'ह्नइस कथन के विरोध में से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अंधकार प्रत्यक्ष दिखाई देता है। सजो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है, अर्थात जिसका वर्ण प्रत्यक्ष है,उस स्वतंत्र अस्तित्व स्वतः सिद्ध है, क्योंकि वर्ण किसी वस्तु/पुद्गल का होता है, अवस्तु का नहीं, और जब वर्ण प्रत्यक्ष है तो उसके स्पर्श, और गंधहृये तीनों भी स्वतः प्रमाणित हैं। वर्ण, गंध, रस अ स्पर्शहृइनमें से किसी एक के होने का अर्थ है कि ये सभी हैं। इनमें एक का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वर्ण की तरह अंधकार के स्प का भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है। धूप से एक व्यक्ति अंधकार में जात तो सहज रूप में उसे ठंडक की अनुभूति होती है। शीत उष्ण, रूक्ष स्निगध, गुरु-लघु, कोमल-कठोरहृये सभी स्पर्श के बिना हो नहीं सक इसी प्रकार अंधकार में गंध भी है, रस भी है। कहने का तात्पर्य यह कि जब प्रकाश में वर्ण, गंध, रस व स्पर्श है तो अंधकार में भी व गंध, रस और स्पर्श है। इसलिए प्रकाश के अस्तित्व की तरह अंधक का भी स्वतंत्र अस्तित्व है। इस संदर्भ में और भी अनेक तर्क प्रस् किए जा सकते हैं, पर विस्तार के भय से मैं इस प्रकरण को यही सम करता हूं।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि सूर्योदय होते ही अंधकार कहां च जाता है यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। साधारणतया कहा जाता है अंधकार नष्ट हो गया, समाप्त हो गया। पर यहह केवल बोल-चाल भाषा है, वास्तविकता नहीं। वास्तविकता यह है कि अंधकार वहीं-व वहीं पड़ा रहता है, कहीं दूसरे स्थान पर नहीं जाता। केवल पुद्गलों परिवर्तन होता। श्यामवर्ण पुद्गल सूर्य की किरणों के आते ही श्वेतवर्ण रूपांतरित हो जाते हैं। आप इसे आश्चर्य न मानें। हम प्रत्यक्ष देखते कि केश श्याम से श्वेत हो जाते हैं। हालांकि केशों के वर्ण-परिवर्तन समय लगता है, जबकि यह परिवर्तन तत्काल हो जाता है।

जैन-दर्शन विज्ञानसम्मत है

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अंधकार के संबंध में जैनहृद की मान्यता विज्ञान-सम्मत है। हमें इस बात का सात्त्विक गौरव हो चाहिए कि अन्यान्य धर्मों एवं दर्शनों की तुलना में जैन धर्म और जै दर्शन की बातें विज्ञान से बहुत अधिक सम्मत हैं। यह बात केवल मैं जैन-समाज के लोग कहें या तो बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं, पर जब दूस दूसरे लोग इसे एक सच्चाई और तथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तुतः ही यह महत्त्पूर्ण बात है।

ंग कॉमरेड यशपाल का

कॉमरेड यशपाल का नाम आपने सुना होगां यद्यपि विचारों से वे ्र नास्तिष्क हैं, पर अच्छे विद्वान और चिंतनशील व्यक्ति हैं। हिंदी मूर्धन्य उपन्यासकारों में से वे एक हैं। जब मैं लखनऊ गया तो वे ां थे। हमारे कार्यकर्ताओं ने उनसे संपर्क किया और मिलने की प्रेरणा । उन्होंने आने की स्वीकृति दी और वे चलने को तैयार भी हो गए, केन चलते-चलते ही अचानक रुक गए और उन्होंने कार्यकर्ताओं से ाह्न'मुझे आप लोगों ने यशपाल जैन (संपादक, जीवन-साहित्य) झकर तो आमंत्रण नहीं दिया है?' कार्यकर्ताओं ने उनकी आशंका को करते हुए कहाह्न

'नहीं, हमने यशपाल जैन समझकर नहीं, अपितु कॉमरेड यशपाल झकर ही आपको आमन्त्रित किया है।'

कार्यकर्ताओं के साथ वे आए। हम दोनों का परस्पर यह प्रथम ही क्षात्कार था। विभिन्न विषयों पर हमारी खुलकर बातचीत हुई। वार्ता के तिम क्षणों में कॉमरेड यशपाल ने एक बात कहीह्न'आचार्यजी! यदि प समय दें सकें तो मैं जैन धर्म का अध्ययन करना चाहता हूं।'

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो व्यक्ति धर्म का नाम तक भी नहीं ना चाहता, वह उसके अध्ययन की बात कर रहा है! मैंने उसी वधारा में पूछाह्न'आप व्यंग्य तो नहीं कर रहे हैं?' उन्होंने कहाह्न'नहीं, ग्य नहीं, मेरी हार्दिक इच्छा है।' सचमुच उनके शब्दों में ही नहीं, पितु चेहरे पर भी जिज्ञासा का भाव मूर्त रूप ले रहा था। मैंने उनसे ाह्न'क्यों?' अपनी अवधारणा प्रकट करते हुए यशपालजी बोलेह्न'यद्यपि धर्म में विश्वास नहीं करता तथापि इतना अवश्य मानता हूं कि संसार जितने धर्म हैं, उनमें जैन-धर्म और उसका दर्शन सर्वाधिक न्याय-संग, ्-संगत और विज्ञान-सम्मत है।'

कों को आवाहन

बन्धुओ! यह विचार मात्र एक-दो विद्वानों या प्रबुद्ध लोगों का नहीं अपितु सैकड़ों चिंतनशील तटस्थ व्यक्ति इस विचार से सहमत हैं। मैं पसे पूछता हूं, इस संबंध में आप क्या कहते हैं? पर आप क्या ेंगे! आपको इस विषय का ज्ञान भी तो नहीं है। जब ज्ञान ही नहीं तो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सम्मति या विमति हदेने का भी कोई मूल्य नहीं। मुझे इस प्रसंग में
श्लोक की समृति हो रही हैह्न

विमति सम्मति र्वापि, नास्तिकस्य न मृग्यते।
परलोकात्ममोक्षेषु यस्य मुह्यति शेमुषी।।

विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न विषयों पर अपने-अपने विचार र
एक सुझाव आया कि चार्वाक दर्शन (नास्तिक दर्शन) के विचार भी
जाने चाहिए। तब कहा गयाह्न'नहीं, उसके विचार लेने की कोई अप
नहीं है। जो लोग आत्मा परमात्मा, मोक्ष, परलोक......जैसी बातों में
उलझ जाते हैं, उन अज्ञानियों को सम्मति या विमति दोनों ही
चाहिए।'

बंधुओ! यद्यपि मैं आपको नास्तिक तो नहीं बता सकता, तथ
इतना अवश्य है कि जिस विषय का आपको ज्ञान ही नहीं, उस वि
पर आपकी सम्मति या विमति कोई विशेष अर्थ नहीं रखती, महत्त्व
रखती। इसलिए अपेक्षित यह है कि जैन-धर्म और जैन-दर्शन को ठ
अध्ययन किया जाए। मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि ह
जेकोबी (जरमन जैन विद्वान), डॉ. राधाकृष्णन जैसे अंतरराष्
ख्यातिप्राप्त विद्वानों की जिस धर्म और दर्शन पर कलम चली है,
धर्म और दर्शन के अध्ययन के प्रति समाज की युवापीढ़ी उदासीन है।
यह तो नहीं मान सकता कि हमारे युवकों में प्रतिभा या बुद्धि नहीं
जब वे इंजीनियरिंग, डॉक्टरी आदि अन्यान्य ध्ययन के क्षेत्रों
सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं तो निश्चित ही वे प्रतिभासंपन्न
तीक्ष्ण बुद्धिवाले हैं। ऐसी स्थिषति में तो यही लगता है कि इस विषय
उनकी रुचि अभी तक जागृत नहीं हुइ है। इसके बावजूद मैं निराश
हूं। मैं युवकों से कहना चाहता हूं कि वे अपनी अभिरुचि जागत
और जैन-धर्म दर्शन का ठोस ज्ञान प्राप्त करें। पर यह अध्ययन दू
को समझाने के लिए नहीं, अपितु स्वांतः सुखाय होना चाहिए, स्वयं
ज्ञान-संपदा को विकसित करने के लिए होना चाहिए। जहां स्वयं
प्राप्ति होगी, वहां दूसरे तो सहजरूप से लाभान्वित होंगे ही।

गंगाशहर
२५ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१३ : क्या छाया स्वतंत्र पदार्थ है

तात्त्विक प्रवचन के अंतर्गत कल मैंने अन्धकार और प्रकाश की स्तृत चर्चा की थी और बताया था कि अंधकार और प्रकाश दोनों ही गल के लक्षण हैं। अंधकार और प्रकाश को यद्यपि हम आंखों से ते हैं, तथापि उन्हें पकड़ नहीं सकते। इस संदर्भ में हमें एक बात झ लेनी आवश्यक है। पुद्गल चतुःस्पर्शी और अष्टस्पर्शी दो प्रकार होते हैं। हालांकि उनकी विस्तृत चर्चा तो मैं अभी नहीं करूंगा, फिर इतना बता देता हूं कि चतुःस्पर्शी पुद्गल अत्यंत सूक्ष्म होते हैं। हम हें देख ही नहीं सकते। अष्टस्पर्शी पुद्गल स्थूल होते हैं, अतः वे खों के विषय बन सकते हैं।

मनोवर्गणा, वचन वर्गणा और कार्मणा के पुद्गल चतुःस्पर्शी होते हैं, म होते हैं। इनकी सूक्ष्मता में भी तरतमता है। वचन वर्गणा से ोवर्गणा के पुद्गल सूक्ष्म हैं और मनोवर्गणा से कार्मण वर्गणा के गल सूक्ष्म हैं शेष सभी पुद्गल अष्टस्पर्शी हैं (श्वासोच्छवास वर्गणा पुद्गल चतुःस्पर्शी भी होते हैं) आपके मन में जिज्ञासा होगी कि वर्गणा से कहते हैं। जैन-दर्शन में स्थूल रूप में आठ वर्गणाएं मानी गई हैं।

अंधकार और प्रकाश भी अष्टस्पर्शी पुद्गल हैं, स्थूल हैं। अतः उन्हें आंखों से देख पाते हैं।

या

प्रतिबिम्बरूपः पुद्गलपरिणामः छाया

हम देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति धूप में चलता है तो ठीक उसके ीर के आकार की ही छाया पड़ती रहती है। इसी प्रकार दर्पण के मने जब कोई व्यक्ति खड़ा होता है तो ठीक उसके शरीर के आकार ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यह पुद्गल-परिणति है। जो पुद्गल बिंब के रूप में परिणत हो जाते हैं, उन्हें छाया कहा जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तदाकार छाया के रूप में पुद्गल हर प्राणी के शरीर से स
निकलते ही रहते हैं। यह दूसरी बात है कि वे कभी पकड़े जाते हैं अ
कभी पकड़ में नहीं भी आते। फोटोग्राफर आता है और आपका फो
खींच लेता है। क्या है यह फोटोग्राफी? यह फोटोग्राफी और कुछ न
केवल आपके शरीर से निकलनेवाले तदाकार पुद्गलों को पकड़ने
प्रणाली है। धूप में या तेज प्रकाश में वे पुद्गल अभिव्यक्त होते
अन्यथा अभिव्यक्ति नहीं होते। कैमरे में वे पकड़े जाते हैं। बिना कैमरे
पकड़े नहीं जाते।

प्रतिबिंब के अभिव्यक्त होने में उस पदार्थ का बहुत महत्त्व
जिसमें वह प्रतिबिंबित होता है। वह पदार्थ जितना स्वच्छ व स्थिर हो
प्रतिबिम्ब भी उतना ही साफ अभिव्यक्त हो सकेगा। हम प्रत्यक्ष देखते
कि श्रोता यदि एकाग्रतचत्त और ग्राहक बुद्धिवाले होते हैं तो उन्हें प्रव
का पूरा-पूरा लाभ मिलता है। इसके विपरीत यदि वे व्याग्रचित्त अ
अग्राहक बुद्धिवाले होते हैं तो अच्छे-से-अच्छे प्रवचन में भी उनके प
कुछ नहीं पड़ता। केवल शब्द कान में पड़ते जाते हैं और वापस निक
आते हैं। ठीक यही बात प्रतिबिंब के प्रतिबिंबित होने के संबंध में ल
होती है। पानी स्वच्छ है तो उसमें पड़नेवाला प्रतिबिंब बहुत स
उभरता है। पर वही पानी जब गंदा और अस्थिर होता है तो प्रति
साफ नहीं उभरता।

प्राथमिक जीवन-विशुद्धि

धर्म के संबंध में भी यही बात है। व्यक्ति का चित्त जितना स
और सरल होता है, धर्म उतना ही अधिक उसके जीवन में फली
होता है। भगवान महावीर ने यह बात इन शब्दों में कही हैह्न**धम**
सुद्धस्स चट्ठईह्नधर्म शुद्ध आत्मा में ठहरता है।

यहां आहपको एक शंका हो सकती है कि धर्म तो स्वयं आत्मा
शुद्धि का साधन है, इस स्थिति में उसके जीवन में प्रवेश पाए बि
आत्मा शुद्धि कैसे होगी। यह बिलकुल ठीक है कि धर्म आत्म-शुद्धि
एकमात्र साधन है। धर्म को अपनाने से ही जीवन शुद्ध बनता है।
साथ ही हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि धर्म को जीवन
टिकने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में एक सीमा तक पवित्रता की अनिव
अपेक्षा है। यदि जीवन में प्राथमिक पवित्रता नहीं होगी तो धर्म टिकेगा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ां ? और जब उसे टिकने को ही स्थान नहीं, तब उसके द्वारा व्यक्ति जीवन-शोधन की तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है? इसलिए हम तथ्य को भलीभांति समझें कि धर्म के प्रतिबिंबित होने के लिए एक मा तक जीवनशुद्धि अनिवार्य है। यह प्राथमिक जीवनशुद्धि यदि नहीं ी है तो जीवन में धर्म को अंकुरित होने के लिए उपयुक्त उर्वरा ही ां मिल पाती। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि बहुत-से लोग धर्म की लम्बी-ड़ी बातें तो बहुत करते हैं, धार्मिक क्रियाकांड आदि भी करते हैं, पर र्मिकता उनके जीवन को छू तक नहीं पाती। उनका व्यवहार धर्म के रीत चलता है। इसका कारण यही तो है कि क्रियाकाण्ड आदि करते भी धर्म टिक सके, उतनी प्राथमिक विशुद्धि उनके जीवन की नहीं हो ई।

र्मिकता की पहचान

व्यक्ति के जीवन में धर्म फलित हुआ है या नहीं, इसकी कसौटी त सीधी-सी है। अगर प्रतिकूलता में व्यक्ति अपना संतुलन नहीं खोता तो मानना चाहिए कि उसके जीवन में धर्म फलित हुआ है। इसके रीत मन की जरा-सी प्रतिकूलता में वह यदि अपना संतुलन खोकर पे से बाहर हो जाता है तो यह मान लेना चाहिए कि अभी तक धर्म ल चोगे के रूप में है, आत्मगत नहीं।

धार्मिक व्यक्ति की एक बहुत बड़ी पहचान है कि वह गुस्सा नहीं ता। गुस्सा करना अधार्मिकता का द्योतक है। एक व्यक्ति एक महात्मा पास गया और प्रश्न की भाषा में बोलाह्न'महाराज ! स्वर्ग और नरक त्तविक हैं अथवा कपोलकल्पित ?' महात्मा ने प्रश्न को उत्तरित करने अपेक्षा प्रतिप्रश्न कियाह्न'तू कौन है ?' उसने गर्व के साथ कहाह्न बा ! मैं यहां के महान सम्राट का अंगरक्षक हूं।' व्यंग्य भरी हंसी हंसते बाबा ने कहाह्न'अरे ! किस मूर्ख ने बना दिया तुझे अंगरक्षक ? तेरा रा ही सम्राट का अंगरक्षक बनने जैसा नहीं है। मुझे तो तू भूखा खारी प्रतीत होता है।'

संत के इन बोलों को सुनते ही वह अंगरक्षक गुस्से में आ गया। के चेहरे का रंग बदल गया। होठ फड़फड़ाने लगे। आंखें लाल हो । कमर पर लटकती तलवार की मूठ की ओर आथ बढ़ गया। पर वह वार बाहर निकालता, उससे पूर्व ही बाबा ने मुस्कराते हुए

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कहाह्न'अच्छा, तू तलवार भी रखता है! परंतु ख्याल रखना इस तल
से मेरा सिर नहीं कटेगा। मेरा सिर काटने के लिए तो कोई दूसरी
तलवार चाहिए।' अब तो अंगरक्षक का क्रोध सातवें आसमान पर
गया। तलवार बाहर निकल गई। दांत किटकिटाते हुए वह बोलाह्न'कि
सिरफिरे से पाला पड़ा है! मेरे प्रश्न का जवाब देना तो दूर, उलटे
ही आलोचना ! मैं इसे कभी भी बर्दास्त नहीं कर सकता......' इस
संन्यासी ने जोरदार ठहाका लगाया और बोलेह्न'तेरे आधे प्रश्न का उ
तो तुझे मिल गया है। नरक का दरवाजा तो तूने खोल लिया
इसलिए नरक है या नहीं, यह पूछना अब बेमानी है।'

आधा प्रश्न समाहित होने की बात सुनकर अंगरक्षक जरा संभल
मन-ही-मन सोचने लगाह्नअरे ! यह तो मेरी कसौटी हो रही है। मैं
चला गया ! उसका गुस्सा शांत हुआ। तलवार वापस म्यान में च
गई। महात्मा के प्रति दुर्व्यवहार के लिए उसका मन पश्चात्ताप से
गया। वह उसके चरणों में गिरकर पुनः-पुनः क्षमायाचना करने लग
तब संन्यासी ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहाह्न'अब तेरे प्रश्न का
समाधान हो गया है। तूने अब स्वर्ग का दरवाजा खोल लिया है।'

प्रश्न का जवाब देने की यह अनोखी शैली देखकर वह अंगरक्ष
अत्यंत प्रभावित हुआ। श्रद्धावनत संत को नमन कर वह ज्यों ही लौ
लगा, संत ने उसे रोकते हुए प्रतिबोध की भाषा में कहाह्न'मेरी ब
ध्यान से सुनो ! यह केवल क्रोध और अक्रोध/शांति की बात नहीं
अपितु समग्र जीवन-पद्धति का प्रश्न है। जब-जब तू क्रोध की ही त
अहंकार, माया, लोभ, वासना, ईर्ष्या...में चला जाता है, तब-तब न
का दरवाजा स्वतः खुल जाता है। इसी के समानांतर जब-जब
अक्रोध/शांति की तरह ही मुक्ति, आर्जव, मार्दव, संयम, तप, त्य
सत्य, ब्रह्मचर्य... में आ जाता है, तब-तब स्वर्ग का दरवाजा खुल ल
है। वस्तुतः स्वर्ग और नरक को कहीं बाहर खोजना निरी भ्रांति है। स
और नरक दोनों अपने भीतर ही हैं।'

बन्धुओं यही बात मैं इस रूप में कहना चाहता हूं कि क्रो
अहंकार, माया, लोभ वासना आदि अधार्मिकता की पहचान हैं और क्ष
मुक्ति, आर्जव, मार्दव आदि धार्मिकता की कसौटी। यदि व्यक्ति क्रोध
अक्रोध, असत्य से सत्य और माया से ऋजुता की ओर मुड़ जाता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

समझ लेना चाहिए कि उसके जीवन में धर्म फलित हुआ है।

या : दो मान्यताएं

अब मैं अपने मूल विषय पर लौटता हूं। मैं आपको छाया/ तिबिम्ब के बारे में बता रहा था। मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया किसी भी वस्तु के प्रतिबिम्बित होने में उस पदार्थ का बहुत बड़ा त्त्व है, जिसमें वह प्रतिबिंबित हो रही है।

छाया/प्रतिबिंब के बारे में जैसा कि मैंने प्रारंभ में बताया था, हर गी के शीरीर से तदाकार पुद्गल निकलते रहते हैं और उनकी छाया ती है। यह एक मान्यता है। इस संदर्भ मुें एक दूसरी मान्यता और भी हम जहां खड़े रहते हैं, वहां के पुद्गल उस रूप में रूपान्तरित हो ते हैं। इन दोनों मान्यताओं में से कौन-सी मान्यता सही है, इस ाद में मैं नहीं जाना चाहता। इन इतना तो दोनों ही मान्यताओं से र्विवाद रूप से प्रमाणित है कि छाया पुद्गल है।

भामंडल विज्ञानसम्मत है

छाया पुद्गल है, यह बात हम शास्त्रों में सदा से पढ़ते रहे हैं। पर ज विज्ञान ने भी अनेकानेक प्रयोगों के द्वारा इसे साबित कर दिया है। सदा से पढ़ते और सुनते आए हैं कि हर तीर्थंकर के आभामंडल ता है। आज विज्ञान ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। स्वीकार ही नहीं या है, विभिन्न प्रयोगों के द्वारा इसे प्रमाणित भी कर दिया है। विज्ञान यहां तक कहता है कि तीर्थंकर महापुरुष के ही नहीं, अपितु प्रत्येक गी के आभामंडल होता है। चूंकि तीर्थंकर महापुरुष का आभामंडल च्छ होता है, इसलिए वह बिलकुल स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता लेकिन सामान्य प्राणी का आभामंडल इतना स्वच्छ नहीं होता, लिए दिखलाई नहीं देता। आजकल ऐसा कैमरा विकसित किया गया जिसके माध्यम से सामान्य प्राणी के आभामंडल के भी फोटो लिए सकते हैं और लिए भी गए हैं। उन छायाचित्रों के आधार पर एक त महत्त्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि जिस व्यक्ति के विचार च्छे या बुरे जैसे होंगे, उसके आभामंडल का छायाचित्र भी उनके ुरूप आएगा। इस क्रम से विभिन्न व्यक्तियों के आभामंडलों के याचित्र भी अलग-अलग प्रकार के आएंगे। छायाचित्र ही क्यों, उनके भी अलग-अलग आएंगे। आभामंडल के रंग आदि को सविस्तार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

समझने के लिए जैन-दर्शन के *लेश्या* प्रकरण का अवधानपूर्वक अध्य
आवश्यक है। *लेश्या* का जैसा सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन जैन-दर्शन
उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं, लगभग अप्राप्त भी है।

आतप : उद्योत : प्रभा

सूर्यादीनामुष्णः प्रकाश आतपः।

चन्द्रादीनामनुष्णः प्रकाश उद्योतः।

मण्यादीनां रश्मिः प्रभा।

सर्व एव एते पुद्गलधर्माः, अत एतद्वानपि पुद्गलः।

सूर्य आदि के उष्ण प्रकाश को आतप कहा जाता है। चूंकि यह
पुद्गल की एक परिणति है, अतः इसे भी पुद्गल का एक लक्षण म
गया है। आ देखें, कुछ लोग इतने तेजस्वी होते हैं कि उनका तेज हर व
सहन नहीं कर पाता। जैसे डालगणी। ऐसा कहा जाता है कि उनका चे
तेजयुक्त था कि हर-किसी की यह हिम्मत हो नहीं होती थी कि वह उ
नजदीक चला जाए, उनसे बातचीत कर ले। महाराज गंगासिंहजी
उदाहरण भी आपके सामने है। उनका तेज भी असाधारण था। इस
में और भी अनेक व्यक्तियों का उल्लेख किया जा सकता है।

चंद्र आदि के शीतल प्रकाश को उद्योत कहा जाता है। यह
पुद्गल की एक परिणति है, इसलिए इसे भी पुद्गल का एक लक्ष
जानना चाहिए।

आतप की तरह कुछ लोगों की शीतलता भी उल्लेखनीय होती
पूज्य कालूगणी का उदाहरण हमारे सामने है। वे इतने शीतल थे कि
कोई उनके पास जा सकता था, उनसे अपने दिल की बात कह सक
था। और तो क्या, छोटे-छोटे बच्चे भी मुक्त भाव से उनके चरणों
उपस्थित होते थे। मैं पहले ीि कई बार बता चुका हूं और आज पु
बताता हूं कि मेरे वैराग्य का मूलभूत कारण पूज्य कालूगणी की
शीतल-सौम्य आकृति ही थी। जब-कभी कालूगणी लाडनूं पधारते,
घंटों-घंटों खड़े-खड़े उनकी उस दिव्य आकृति को निहारता रहता। धी
धीरे मेरे मन में यह तीव्र भावना बन गई कि मैं भी गुरुदेव का
छोटा-सा शिष्य बनकर उनके चरणों में समर्पित हो जाऊं।

रत्न आदि की रश्मियों को प्रभा कहते हैं। चूंकि यह भी पुद्गल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क परिणति है, इसलिए इसे भी पुद्गल का एक लक्षण बताया गया है।

अंधकार, छाया, आतप आदि पुद्गल के विभिन्न लक्षणों की चर्चा ने अपने प्रवचनों में की। ये सभी पुद्गल के धर्म हैं। अतः पुद्गल के भिन्न लक्षणों के रूप में इन्हें निरूपित किया गया है।

गल के दो प्रकार

पुद्गल की विभिन्न परिणति की चर्चा के पश्चात अब हमें यह मझना है कि पुद्गल के कितने प्रकार हैं।

माणुः स्कन्धश्च।

पुद्गल के दो प्रकार हैंह्न१. परमाणु २. स्कंध

परमाणु और स्कंध की विस्तृत चर्चा आज मैं नहीं करूंगा। संक्षेप आप इतना-सा समझ लें कि सूक्ष्मतम पुद्गल परमाणु है और अनेक माणुओं का एकीभूत रूप स्कन्ध। परमाणु के अतिरिक्त सभी पुद्गल ध हैं।

आप मेरे हाथ में यह कपड़ा देख रहे हैं। यह एक स्कंध है। ये ट्टी के सूक्ष्म कण भी स्कंध हैं। आप कहेंगे कि इतने सूक्ष्म कण भी ध हैं, तब परमाणु किसी कहें वास्तव में दृश्य जितने भी पुद्गल हैं, सब स्कंध ही हैं परमाणु कभी आंखों से दिखाई नहीं पड़ता।

इस संदर्भ में कोई यह भी प्रश्न कर सकता है कि वास्तविक माणु है या स्कन्ध। एक दृष्टि से परमाणु ही वास्तविक है। दो, चार, , हजार, करोड़, असंख्य, अनन्त परमाणुओं से मिलकर एक स्कंध ता है। पर जैसा कि मैंने पहले बताया, परमाणु इतना सूक्ष्म होता है उसकी कल्पना करना ही कठिन है। दो-पांच·····सौ, हजार परमाणुओं स्कंध के दीखने की बात तो बहुत दूर की है, संख्येयप्रदेशी और संख्येयप्रदेशी स्कंधों को भी हम अपने चर्म-चक्षुओं से नहीं देख कते।ह केवल स्कंध हमारी आंखों द्वारा ग्राह्य होते हैं। इसमें भी इतना र समझ लें कि सभी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हमारी आंखों के विषय नहीं ते। केवल वे अनन्तप्रदेशी स्कंध हम देख पाते हैं, जो स्थूल हैं। से हम परमाणु की सूक्ष्मता से परिचित हो सकते हैं। आपको शायद बात विचित्र लगे। पर वास्तव में यह कुछ भी विचित्र नहीं है। आज ज्ञान ने बहुत-सी सूक्ष्म-सूक्ष्म खोजें की हैं। प्रकाश एक लाख छियासी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हजार मील प्रति सेकंड की रफ्तार से गति करता है। जब इस सूक्ष्म
को आप स्वीकार करते हैं, तब शास्त्रों में वर्णित सूक्ष्मता पर
अविश्वास करने का कोई औचित्य ही नहीं है। हालांकि हमारे तीर्थं
के पास सुक्ष्मता को मापने के लिए यंत्र नहीं थे। पर उन्हें उनकी अपे
ही कहां थी ? वे आत्मद्रष्टा थे। उन्होंने आत्म-ज्ञान की गहराई में स
कुछ प्रत्यक्ष देखा। यंत्रों से मापने का काम विज्ञान का है। वह यंत्रों
विकसित कर विभिन्न सूक्ष्मताओं को मापने का प्रयास कर सकता है

गंगाशहर
२६ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१४ : परमाणु का स्वरूप

परमाणु की प्रासंगिक संक्षिप्त चर्चा मैं पिछले प्रवचनों में कई बार
 चुका हूं। पर उसका सांगोपांग विवेचन अभी तक अवशेष है। आज
परमाणु का कुछ विस्तृत विवेचन कर रहा हूं।

अविभाज्यः परमाणुः।

जिसका कोई विभाग न हो सके, तो कभी टूट न सके, उस
न्मतम पुद्गल को परमाणु कहा जाता है। उसकी संक्षिप्त परिभाषा है।
की विस्तृत परिभाषा देते हुए एक प्राचीन आचार्य ने लिख हैह्न

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यिलिंगश्च।।

ह्न जो किसी भी पौद्गलिक पदार्थ काक अन्तिम कारण है, सूक्ष्म है, नित्य है तथा एक रस, एक गंध, एक वर्ण व दो स्पर्शयुक्त है और जिसका अस्तित्व दृश्यमान कार्यों से जाना जाता है, वह परमाणु है।

इस परिभाषा में परमाणु को पौद्गलिक पदार्थों काक अन्तिम कारण
ाया गया है। अंतिम कारण को समझने से पूर्व आप कारण को समझें
र कारण को समझनें के लिए कार्य को भी समझें। जिससे वस्तु
र्मित होती है, वह कारण कहलाता है। तथा जो वस्तु निर्मित होती है,
 कार्य कहा जाता है। इसे आप उदाहरण से और स्पष्ट रूप से
झ पाएंगे। मिट्टी का घड़ा बनता है। यहां मिट्टी कारण है और घड़ा
र्य है। परमाणु कारण है, कार्य नहीं, क्योंकि परमाणुओं के मिलन से
टे-बड़े सभी स्कंध बनते हैं, परंतु परमाणु किसी से नहीं बनता।

अंतिम कारण वह होता है, जिसके बिना कार्य (वस्तु) होता ही
ां। मान लीजिए, एक व्यक्ति ने हजार बूंदियों को मिलाकर एक लड्डू
ाया। दूसरे व्यक्ति ने पांच सौ-पांच बूंदियों के दो लड्डू मिलाकर एक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लड्डू बनाया । तीसरे ने ढाई सौ-ढाई सो बूंदियों के चार लड्डुओं
मिलाकर एक लड्डू बनाया जाता सकता है। पर सबका अंतिम का
बूंदी ही है। यदि बूंदी न हो तो लड्डू बन ही नहीं सकता। परमाणु
अंतिम कारण है। उसके बिना कोई स्कंध बन ही नहीं सकता।

जैसा कि मैं पहले कई बार बता चुका हूं कि परमाणु सर्वा
सूक्ष्म है। उसकी सूक्ष्मता की कल्पना आप एक बात से करें। कि
व्यक्ति की आंख में बालू का एक कण गिर गया। गण बिलकुल छो
सा है, फिर भी आंख उसे सहन नहीं गरेगी। वह आंख में रह-रह
रड़कन और पीड़ा उत्पन्न करेगा। आखिर जब उसको निकाला जाए
तभी उस व्यक्ति को चैन पड़ेगा। पर एक परमाणु गिर जाए तो
पता ही नहीं चलेगा। एक परमाणु ही क्यों, हजार, लाख करोड़
असंख्येय परमाणुओं का स्कंध भी गिर जाए तो भी उसे कोई रड़कन
पीड़ा अनुभव नहीं होगी इससे भी और आगे कहूं तो सूक्ष्म अनंतप्रदे
स्कंध का भी उसे कोई अनुभव नहीं होगा। मात्र स्थूल अनंतप्रदेशी स्
का अनुभव हो सकेगा। यानी बालू के एक सूक्ष्म कण से परम
अनंतगुण सूक्ष्म है।

ऐसे सूक्ष्म परमाणु को न तो हवा उड़ा सकती है और न पानी
बहा सकता है अग्नि उसे जला नहीं सकती। तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण शस्त्र
धार भी उसे काट नहीं सकती। और तो क्या, लाखों सैनिकों-व
चक्रवर्ती की सेना भी यदि उस पर से होकर गुजर जाए तो भी
उससे सर्वथा अप्रभावित रहेगा, जरा भी इधर से उधर नहीं होगा।

परमाणु नित्य है। यानी वह सदा परमाणु था, परमाणु है
परमाणु रहेगा।

अब आपको वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की दृष्टि से परमाणु
समझना है। चूंकि परमाणु भी एक दृष्टि से पुद्गल ही है, इसलिए उ
वर्ण, गंध, रस और स्पर्श अवश्यमेव होते हैं। पर परमाणु चूं
एकप्रदेशी ही होता है, अतः उसमें एक वर्ण, एक रस एक गन्ध और
स्पर्श ही पाए जाते हैं।

यहां प्रश्न सामने आएगा कि परमाणु में कृष्णा, नील, श्वेत, र
और पीत-इन पांचों वर्णों में से कौन-सा एक वर्ण पाया जाता है परम
में कौन-सा एक वर्ण पाया जाता है, इसका कोई निश्चित विधान नहीं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ों वर्णों में से कोई एक वर्ण पाया जा सकता हैं हां, इतना अवश्य है वह एक वर्ण परिवर्तित होता रहता है। यानी श्वेत वर्ण का पीत वर्ण, वर्ण का रक्त वर्ण, रक्त वर्ण का कृष्ण वर्ण..... बन सकता है। इस वर्तन का कोई निश्चित क्रम नहीं है।

यही स्थिति परमाणु में गन्धस और रस की भी है। कोई एक गंध र एक रस उसमें पाया जा सकता है और उनमें परिवर्तन का क्रम भी ता रहता है।

स्पर्श के बारे में कुछ भिन्न विधान है। जहां वर्ण, गंध और रस- तीनों एक-एक ही पाए जाते हैं, वहां स्पर्श दो पाए जाते हैं। यहां पुनः न आएगा, कौन-कौन से दो स्पर्श पाए जाते हैं। इसका समाधान यह उष्ण और शीत इन दोनों स्पर्शों में से एक स्पर्श तथा रूक्ष और ग्ध इन दोनों स्पर्शों में से एक स्पर्श परमाणु में होता है। पर ये भी ायी नहीं है। इनमें भी परिवर्तन होता रहता है।

परमाणु का इतना विवेचन करने के बावजूद अब तक मैं पूर श्लोक अर्थ स्पष्ट नहीं कर पाया हूं। संस्कृत भाषा की यह विशेषता हे कि में बहुत थोड़े-से शब्दों में बहुत बात कह दी जाती है। दूसरी-दूसरी ाओं में बात को कहने के लिए बीस-तीस शब्दों की जरूरत होती वही बात संस्कृत भाषा में पांच-सात शब्दों में कही जा सकती है। मुच यह इस भाषा का अतयंत महत्त्वपूर्ण गुण है। भाषा को ही क्यों, वक्तृत्व को भी देखें। कुछ लोग जहां थोड़े से बहुत अधिक कहने कला में माहिर होते हैं, वहीं बहुत से लोग बोलते तो बहुत हैं, पर में तथ्य अत्यल्प या नहीं के बराबर होता है। उन पर यह कहावत रितार्थ होती हैह्न**'खोदा पहाड़, निकली चुहिया।'**

न की शक्ति

बोलने का अपना महत्त्व है तो न बोलने का भी अपना महत्त्व है, ल्कि बोलने की अपेक्षा न बोलना/मौन ज्यादा महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ा है। संसार के सभी महापुरुषों ने इसीलिए मौन पर बहुत बल दिया भगवान महावीर ने बारह वर्षों तक मौन किया। महात्मा गांधी सप्ताह एक दिन मौन किया करते थे। बोलने से शक्ति का क्षय होता है। उस रित को पुनः संगृहीत करने में मौन सर्वाधिक उपयोगी है। स्वयं के ुभव की बात मैं बताऊं। सुदूर प्रदेशों की यात्राओं के दौरान मुझे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बहुत अधिक बोलना पड़ता। कभी-कभी तो दिन में पांच-पांच
प्रवचन करना पड़ता। यदि निश्चित है कि कोई चाहे कितना ही स
क्यों न हो, अधिक बोलने से आखिर उसकी शक्ति तो टूटेगी ही ।
कई बार बोलते-बोलते बहुत थक जाता। मन में प्रश्न उभरा कि
समस्या का क्या समाधान खोजा जाए। मैंने प्रतिदिन दो घंटे मौन प्रार
कर दिया। इस मौन से मैं बहुत लाभान्वित हुआ। अनुभव हुआ
दिन-भर बोलने में जो शक्ति क्षीण होती है, वह दो घंटे के मौन से पु
अर्जित हो जाती है।

दीर्घश्वास का लाभ

कभी-कभी ऐसा भी होता कि बोलते-बोलते मेरा गला बैठने लग
और दूसरे दिन हजारों की विशाल सभा को सम्बोधित करना निश्चि
होता। (उन दिनों हमारे यहां माईक का उपयोग नहीं होता था) ऐ
स्थिति में मन में विचार आता कि यह कैसे संभव होगा। मैं रात
मौन करके सो जाता। सुबह उठकर अनुभव करता कि शक्ति अर्जित
हुई है, गला भी साफ हुआ है, फिर भी अभी तक हजारों की परिषद
सुनाने की स्थिति में नहीं हूं। इस स्थिति में मौन के साथ-साथ
दीर्घश्वास का प्रयोग करता। मौन और दीर्घश्वास दोनों का योग मि
से मुझे पूरी शक्ति प्राप्त हो जाती और मैं अपने निर्धारित कार्यक्रम
अनुसार प्रवचन का पाता।

अगर हम गौर से देखें तो पाएंगे कि पूरे दिन में ऐसे बहुत
प्रसंग आते हैं, जब बोलना व्यक्ति के लिए आवश्यक होता
अधिकतर तो व्यक्ति निष्प्रयोजन या बहुत सामान्य प्रयोजन से
बोलता है। इस तथ्य से अपरिचित होने के कारण लोग अपनी श
का बहुत अपव्यय करते हैं। इसीलिए हमारे तीर्थंकरों ने कहा
निष्प्रयोजन कोई काम मत करो।

मुझे लगता है कि महापुरुषों की वाणी सुनने में तो सबके
उसके आचरण गत बहुत कम लोग कर पाते है। जब आदमी कि
मुसीबत में फंसता है, तब उसे महापुरुषों की वाणी की स्मृति होती
इसीलिए कबीरजी ने कितना मार्मिक कहा है ह्न

दुःख में सुमिरन सब करै, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुःख काहे को होय।।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ह्न दुःख में, कठिन परिस्थितियों में सभी भगवान की वाणी को याद करते हैं, पर सुख में उसे काई याद नहीं करता। यदि सुख में, अनुकूलता परिस्थितियों में व्यक्ति भगवान की वाणी को याद कर ले तो संभवतः दुःख उत्पन्न ही न हो।

पर मानव मन की यह कमजोरी ही माननी चाहिए कि वह जानते भी सुख में भगवान और भगवान के उपदेश को भूल जाता है।

मैंने प्रसंगवश कुछ बातें मूल प्रतिपाद्य से हटकर भी कहीं। पर ये ों भी कम उपयोगी नहीं हैं। समय-समय पर प्रसंगवश ऐसी बातें चन में आनी ही चाहिए, जिससे तात्त्विक ज्ञान के साथ-साथ लोगों व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्राप्त होता रहे।

ाशहर

जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१५ : परमाणु : एक अनुचिंतन

कल के प्रवचन में मैं परमाणु का विवेचन किया। आज पुनः उ
अधूरे विषय के विवेचन से प्रवचन का प्रारंभ कर रहा हूं। मैंने व
बताया था कि परमाणु कार्य (स्कंध) का अंतिम कारण है, अंतिम सू
है, नित्य है तथा एक वर्ण, एक गंध एक रस व दो स्पर्शों से युत है

जब परमाणु को आंखों से देखा नहीं जा सकता, यह प्रश्न अ
हमारे सामने है उसे हाथ से पकड़ा नहीं जा सकता, जब उसके अस्ति
को किस आधार पर स्वीकार किया जाए। यह अत्यन्त कारण हे। उस
बिना स्कंध की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि
परमाणु (कारण) दिखाई नहीं देता वह पकड़ में नहीं आता। पर उस
कार्य तो दिखाई देता ही है। जब कार्य सामने है तो कारण चाहे प्रत्
दिखाई दे या न दे, उसके अस्तित्व को कभी नकारा नहीं जा सकत
उसमें संदेह के लिए कहीं कोई अवकाश नहीं रहता। उदाहरणार्थ,
व्यक्ति के हाथ में मक्खन है। मक्खन दूध से निकलता है। यानि
मक्खन का अन्तिम कारण है। दूध के बिना मक्खन कभी हो नहीं
यानी दूख मक्खन का अन्तिम कारण है। दूध के बिना मक्खन कभी
नहीं सकता। पर उस व्यक्ति ने दूध कभी देखा नहीं। भले दूध न
देखा, परंतु जब उसने मक्खन देख लिया तो वह दूध के अस्तित्व
अस्वीकार नहीं कर सकता।

आपने धुआं निकलते देखा। पर वह कहां से निकल रहा है, अ
कहां है, यह सब दिखलाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में क्या आप अ
को नकार सकते हैं? कभी नहीं। क्यों? यह इसलिए कि धुआं है
अग्नि होगी ही। ऐसा कभी हो नहीं सकता कि धुआं तो मौजूद हो अ
अग्नि न हो। एक आदमी खूब हृष्ट-पुष्ट है, सपर कहता है। कि
दिन में कभी रोटी नहीं खता। इसका अर्थ है कि रात को अवश्य ख

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अन्यथा उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता।

न्याय-शास्त्र का एक नियम है कि कजब कार्य है तो कारण श्यमेव होगा। यह दूसरी बात है कि कारण कभी दिखाई देता है और ी नहीं भी दिखाई देता। परमाणु को भी हम इसी परिप्रेक्ष्य में देखें। हे परमाणु हमें दिखलाई नहीं देता, पर जब स्कन्ध दिखलाई देता है परमाणु का अस्तित्व स्वतः प्रमाणित है।

ृश परमाणुओं में तरतमता

परमाणु के वर्ण के बारे में मैंने कल बताया था। परमाणु में एक ही पाया जाता है। इस संदर्भ में एक बात और ज्ञातव्य हैह्नएक ही वर्ण परमाणुओं में परस्पर बहुत बड़ी तरतमता हो सकती है। हरणार्थह्नदो श्यामवर्ण के परमाणु हैं। उन दोनों परमाणुओं की श्यामता दो गुण से लेकर असंख्य, अनन्त और अनंतानंत गुण तक का अंतर सकता है। यानी एक परमाणु जितना श्याम है, उससे दूसरा परमाणु ख गुण, करोड़ गुण, असंख्य गुण, अनंतानंत गुण श्याम हो सकता हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक कपड़ा भी काला होता है, एक आदमी काला होता है और एक भैंस भी काला होता है। पर इनके कालेपन बहुत तरमता रह जाती है। श्यामवर्ण कि तरह सभी वर्णों में इसी तरह तमता होती है।

वर्ण की तरह परमाणु की गंध और रस में भी दो गुण से लेकन ंतानंत गुण तक तरतमता होती है। हम देखते हैं, एक इत्र ऐसा होता जिसकी महक दूर-दूर तक फैल जाती है। वहीं दूसरे इत्र की सुगंध छ दूर बैठे व्यक्ति की नाक का भी पूरा विषय नहीं बन पाती। इसी ार रस की तरतमता भी अनुभव की जा सकती है। दूध मीठा है। ्री मीठी है। गुड़ मीठा है। पर इनके मिठास-मिठासमें बहुत तरतमता यह तरतमता, जैसा कि पहले बताया गया, उत्कृष्ट रूप में अनंतानंत तक हो सकती है।

परमाणु में स्पर्श दो होते हैं। पर स्पर्श की तरतमता का क्रम पूर्व की तरह ही है। यानी वर्ण और रस की तरह ही स्पर्श की तरतमता दो गुण से लेकर अनंतानंत गुण तक हो सकती है। आप देखें, कुएं पानी गर्म है। दूध गर्म है। चूल्हा गर्म है। भट्ठी गर्म है। रेल का इंजन है। पर उनकी गर्मी-गर्मी में बहुत बड़ी तरतमता है। अब आप समझ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गए होंगे कि परमाणु परमाणु के बीच कितना अंतर हो सकता है। इ
संदर्भ में एक बात और बता दूं। आज एक परमाणु में वर्ण, गंध,
और स्पर्श की जो स्थिति है, वह कालांतर में परिवर्तित भी हो सक
है। आज जो परमाणु कम श्याम है, वह कल अधिक श्याम भी
सकता है। आज जो परमाणु कत तिक्त है, वह कल अति विक्त भी
सकता है।

परमाणु गति करता है

अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि परमाणु गति करते
या नहीं। परमाणु गति करते हैं। पर इसके साथ ही यह भी समझ ले
चाहिए। कि उनकी गति स्वप्ररित ही होती है। दूसरों के हिलाएं वे न
हिलते। आपकी जिज्ञासा हो सकती है कि परमाणुओं की गति कै
होती है। परमाणुओं की गति इतनी तेल होती है कि आप शायद कल्प
ही नहीं कर सकते। संसार का तीव्र-से-तीव्र गतिवाला यंत्र भी उन
तुलना में बहुत पीछे ठहरता है। शास्त्रों में उनकी गति की चर्चा क
हुए बताया गया है कि कोई भी परमाणु एक समय (काल का सूक्ष्म
हिस्सा) में लोकान्त में लोकान्त तक जा सकता है। पर इस विषय
कोई प्रतिबद्धता नहीं है। वह गति कर भी सकता है और बहुत ल
काल तक गतिविहीन भी रह सकता है।

परमाणु जितना सूक्ष्म है, उतना ही अधिक शक्तिशाली है।
स्कंधों की शक्ति उसमें अन्तर्निहित है। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं
जो जितना सूक्ष्म होता है, वह उतना ही अधिक शक्तिसम्पन्न होता
होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति का यह सिद्धांत है कि दवा जितनी सू
होकर शरीर में प्रवेश करती है, वह उतनी ही अधिक असरकारी हो
है। आयुर्वेद चिकित्सा-विज्ञान में भी सूक्ष्म दवा की एक परंपरा रही
वह दवा बड़ी तीव्र गति से रोग का निरोध करनेवाली और शवि
देनेवाली होती है।

तथापि परमाणु हमें दिखाई नहीं देता, न ही उसकी हमारे लिए व
उपयोगी है, तथापि वह हर छोटे-बड़े स्कंध का आधार है। इस दृष्टि
उसका महत्त्व कभी कम नहीं आंकना चाहिए।

स्कंध

परमाणु की विस्तृत विवेचना के पश्चात अब आप स्कंध

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

झें।

तदेकीभावः स्कन्धः।

तेषां द्व्यद्यनन्तपरिमितानां परमाणूनामेकत्वेनावस्थानं स्कन्धः, यथाद्वौ परमाणु मिलितौ द्विप्रदेशी स्कन्धः, एवं त्रिप्रदेशी, दशप्रदेशी, संख्येयप्रदेशी, असंख्ययप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी च।

दो से लेकर अनन्त तक के एकीभूत परमाणु स्कंध कहलाते हैं। ी दो, चार, दस, सौ, हजार, करोड़······· करे। संख्येय, असंयेय और ंत परमाणुओं तक का एक स्कंध हो सकता है। दो परमाणुओं से लकर बननेवाला स्कंध द्विप्रदेशी स्कंध और तीन परमाणुओं से लकर बननेवाला स्कंध त्रिप्रदेशी स्कंध कहलाता है। इसी प्रकार दस शी, हजारप्रदेशी, लाखप्रदेशी, करोड़प्रदेशी, संख्येयप्रदेशी, असंख्येय-शी और अनंतप्रदेशी स्कंध होते हैं। जैसा कि मैं पहले स्पष्ट कर ा हूं, हमें केवल अनंतप्रदेशी स्कंध दिखलाई देता है। उससे छोटे ध हमारी दृष्टि के विषय नहीं बन पाते।

अब हमें यह समझना है कि स्कंध केवल परमाणुओं के एकीभाव बनते हैं या किसी अन्य प्रकार से भी।

तद्भेदसंघातभ्यामपि।

स्कन्धस्य भेदतः संघाततोऽपि स्कन्धो भवति, यथाभिद्यमाना शिला, संहन्यमानाः तन्तवश्च।

परमाणुओं के एकीभाव/मिलन के अतिरिक्त स्कंधों के भेद से भी ध बनते हैं। एक मोटा लक्कड़ है। दर्शन की भाषा में वह एक स्कंध उसे तोड़ कर दो, चार, पांच·····टुकड़े कर दिए गए। अब उनमें से येक टुकड़ा एक स्कंध बन गया। बीस मीटर कपड़े का एक स्थान है। एक थान है। वह एक स्कंध है। अब एक-एक मीटर के बीच टुकड़े दिए गए तो प्रत्येक टुकड़ा एक स्कंध बन गया। स्कंध को तोड़ने से तक स्कंध बनते रहेंगे, जब तक वह परमाणु नहीं बन जाए। यानी तक दो प्रदेश अविशष्ट हैं, तब तक वह स्कंध ही कहलाएगा।

ंग जैन-रामायण का

जैन-रामायण में प्रसंग आता है कि राम के निदेशानुसार लक्ष्मण ने ण पर चक्र चलाया। चक्र रावण के पास आया। रावण ने कहा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

'चक्र! तू मेरे पास आया तो है पर मेरी मुट्ठी की ताकत शायद न जानता।' किंतु नहीं रुका। वह आगे-से-आगे उसकी ओर बढ़ता ही र तब रावण ने उस पर अपनी मुट्ठी का प्रहार किया। नतीजा यह आया चक्र के दो टुकड़े हो गए। दो टुकड़े कया हुए, दो चक्र हो गए। जब और भी कठिन समस्या खड़ी हो गई। उसे दो चक्रों में मुकाबला क पड़ा। उसने दोनों मुट्ठियों से उन पर प्रहार किया। परिणामतः वे चार गए। अब उसने ज्यो-ज्यों उन चक्रों पर प्रहार किया, त्यों-त्यों वे च बढ़ते ही गए।

घटना लंबी है। पर चूंकि यहां अप्रसंगिक हो जाएगी, इसलिए इसे यहीं समाप्त करता हूं। इसके माध्यम से मैं आपको मात्र यह बत चाहता हूं कि स्कंध के भेद से भी स्कंध बनते हैं

स्कंध बनने का एक अन्य प्रकार हैह्नस्कंधों का परस्पर मिलन। चार, सौ, हजार......स्कंध परस्पर एकीकृत होकर भी स्कंध का निम करते हैं। उदाहरणार्थह्नयह पट्ट आपके सामने है। यह एक स्कंध है। लकड़ी की अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों से मिलकर बना है। ये जितने टु हैं, वे सब अलग-अलग स्कंध हैं।

कैसे बनता है परमाणु

आप पूछ सकते हैं, क्या स्कंध तरह परमाणु भी बनता है। दृष्टि से परमाणु नहीं बनता। पर चूंकि स्कंध के टूटते-टूटते जो अन्ति अविभाज्य खंड बच जाता है, वह परमाणु है, अतः बोलचाल में हम सकते हैं कि परमाणु बनता है। उदाहरणार्थह्नलड्डू टूटा और उस बूंदियों अलग-अलग बिखर गईं। जिस प्रकार एक-एक बूंदी मिलकर लड्डू बना था, उसी प्रकार लड्डू के टूटने से बहुत-सी बूंदियों बन ग परमाणु बनने का यह एकमात्र प्रकार है। इसके सिवाय और कि प्रकार से परमाणु नहीं बनता।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि स्कंध परमाणुओं एकीभाव को ही कहते हैं या अन्य किसी प्रकार की?

अविभागिनि अस्तिकायेऽपि स्कन्धशब्दो व्यवह्रियते, यथा-धर्म धर्माकाशजीवास्तिकायाः स्कन्धाः

जैन-दर्शन में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय अ जीवास्तिकाय को भी स्कंध कहा गया है। यहां हमें यह समझना है

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

माणुओं के एकीभाव के अतिरिक्त अविभागी अस्तिकायों के लिए भी ध शब्द का व्यवहार हुआ है।

स्कंध दो प्रकार के हैंह्व१. स्वाभाविक २. कृत्रिम।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय और जीवास्तिकाय भाविक स्कंध हैं, क्योंकि ये सदा-सदा से बने हुए हैं। गलास्तिकाय के स्कंध कृत्रिम हैं। वे बनते रहते हैं। धर्मास्तिकाय, र्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायह्वइन तीनों का एक-एक स्कंध है। वास्तिकाय में प्रत्येक जीव का एक स्कंध है। पुद्‌गलास्तिकाय के ध अनंत हैं।

गल के प्रकार

आपने यह समझ लिया कि पुद्‌गल अनन्त हैं। अब आपको यह नना है कि पुद्‌गल के कितने विभाग हैं। जैनह्वदर्शन में पुद्‌गल के पांच ाग किए गए हैंह्व१. मनोवर्गणा २.वचना वर्गणा ३.काय वर्गणा ४. सोच्छ्‌वास वर्गणा ५. कार्मण वर्गणा।

मन रूप में प्रयुक्त होनेवाली सजातीय पुद्‌गल-समवाय को ोवर्गणा कहा जाता है। जैन-दर्शन की यह मान्यता है कि हम मन से कुछ भी चिंतन-मनन करते हैं, उसमें पुद्‌गलों का अनिवार्य सहयोग क्षित हैं हम मनोवर्गणा के पुद्‌गल ग्रहण करके ही चिंतन-मनन कर कते हैं, अन्यथा नहीं। मानसिक चिंतन की तरह हमारे बोलने में जो गल-समूह काम आता है, उसे वचन वर्गणा कहा जाता है। वचन णा के पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना हम एक शब्द भी नहीं बोल कते। औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस शरीर के रूप में काम निवाले सजातीय पुद्‌गल-समूल का नाम काय वर्गणा है। श्वासोच्छ्‌वास र कर्म-बंधन के रूप में काम आने वाले पुद्‌गल-समूह क्रमशः सोच्छ्‌वास वर्गणा और कार्मण वर्गणा कहलाते हैं।

र्वा श्वास का मूल्य

श्वासोच्छ्‌वास वर्गणा के पुद्‌गलों की बात मैंने अभी बताई। इस दर्भ में एक बात और ज्ञातव्य है। यद्यपि वह विषय से सीधी संबद्ध नहीं है, तथापि आप लोगों के लिए बहुत उपयोगी है, इसलिए गवश उसे बता ही देना चाहता हूं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हम सब श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। हम ही क्यों, संसार छोटा-बड़ा प्रत्येक प्राणी यह क्रिया अनिवार्य रूप से करता है। पर मु लगता है कि श्वास लेना बहुत कम लोग जानते हैं। वह हमारे जीवन लिए जितना उपयोगी है, उतनी ही उसके प्रति उपेक्षा बरती जाती है य व्यक्ति श्वासोच्छ्वास के प्रति जागरूक हो जाए तो उसका जीवन रूपांतरिक हो जाए।

हमें सदा दीर्घ श्वास लेना चाहिए। जिसने दीर्घ श्वास लेना सी लिया, मानना चाहिए कि उसने दीर्घ जीवन का नुस्खा प्राप्त कर लिय आप ध्यान दें, प्राणायाम के साधक प्रायः दीर्घजीवी हुए हैं। प्राणाय शब्द प्राण और आयाम इन दो शब्दों के योग से बना है। प्राणायाम अर्थ हैह्न श्वास का दीर्घीकरण, श्वास-प्रश्वास की गति का नियमन। कोई बहुत कठिन बात नहीं है। अभ्यास के द्वारा यह स्थिति निर्मित जा सकती है। आप स्यं इसका प्रयोग एवं अभ्यास करके देखें। आप इसके लाभ का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगेगा।

आप पूछेंगे कि श्वास को किस सीमा तक लंबाना चाहिए। इस कोई निश्चित उत्तर नहीं है। पर एक बात अवश्य ध्यान में रखने की कि श्वास लंबाने में जबरदस्ती कभी नहीं करनी चाहिए। यानी सहज से श्वास जितना दीर्घ हो सके, उसे उतना दीर्घ करना चाहिए। बला श्वास को दीर्घ करना खतरे से खाली नहीं है। आप घड़ी सामने रख अपने श्वास की गति को ओर ध्यान दें। संभवतः आपको एक मिनिट १८-२० श्वास आएं। अब आप संकल्पपूर्वक दीर्घ श्वास का अभ्य शुरू करें। कुछ समय के अभ्यास से आप अनुभव करेंगे कि आप श्वास दीर्घ होने लगा है। श्वासों की संख्या एक मिनिट में १८-२० घटर १४-१६ रह गई है। अभ्यास की परिपक्वता के साथ यह संख क्रमशः घटते-घटते १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, तक प सकती है। दीर्घकालीन अभ्यास के बाद एक मिनिट में एक श्वास स्थिति भी निर्मित हो सकती है।

हमारे जीवन में दीर्घ श्वास का बहुत बड़ा महत्त्व है। मैं तो य तक कहता हूं कि जिसने अपने श्वास पर नियंत्रण करना सीख लि उसने अपने शरीर और मन पर नियंत्रण करना सीख लिया। आप ध्य दें, चाहे कोई शारीरिक बीमारी हो या काम, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या,

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा कोई मानसिक आवेग हो, उस स्थिति में व्यक्ति का श्वास स्वाभावितक/चंचल बन जाता है। श्वासों की संख्या आवे की तीव्रता अनुपातानुसार बहुत बढ़ जाती है।

ध-विजय का उपाय

क्रोध की बीमारी से कौर पीड़ित नहीं है? क्रोध पर विजय प्राप्त ने के लिए श्वास-संयम का प्रयोग बहुत उपयोगी है। जिस समय पको क्रोध आए, उस समय आप अपने श्वास पर ध्यान दें। आप ंगे कि आपका श्वास स्वाभाविक नहीं रहा है। उसकी गति बढ़ गई यदि उस समय आप अपने श्वास की दीर्घ कर स्वाभाविक स्थिति में सकें तो निश्चित ही आप क्रोध-विजय के प्रयास में सफल हो ंगे।

एक व्यक्ति डॉक्टर के पास गया और बोलाह्न'डॉक्टर साहब ! क्रोध बहुत आता है। आप कोई ऐसी दवा दें, जिससे क्रोध न ए।' डॉक्टर लोग शारीरिक बीमारी को मिटाने की दवा तो दे सकते पर क्रोध-जैसी मानसिक बीमारी की दवा प्रायः उनके पास नहीं ी। पर वह डॉक्टर बड़ा अनुभवी था। उसने उस मरीज को एक भरी बोतल देते हुए कहाह्न'जिस समय तुम्हें क्रोध आए, तत्काल इस ल को खोलकर दवा मुंह में ले लेना। पर ध्यान रखना-दवा कुछ य तक मुंह में ही रखनी है, निगलनी नहीं है।'

वह मरीज बोतल लेकर घर आ गया। अब जैसे ही उसे क्रोध ता, वह बोतल खोलकर दवा मुंह में ले लेता । दवा से मुंह भर जाने देखते-देखते ही उसका क्रोध विदा हो जात है। इससे उस व्यक्ति को राहत मिली। उसके मन में विचार आयाह्नडॉक्टर ने तो गजब की दी है, जो महीनों, दिनों, घंटों व मिनटों में नहीं, अपितु सेकंडों में ही ना असर दिखा देती है।

बन्धुओ! उस दवा के प्रति आप भी जिज्ञासु होंगे। आपको सुनकर यद आश्चर्य होगा कि उस बोतल में दवा के नाम पर केवल पानी था। होता यह था कि ज्यों ही उस व्यक्ति का मुंह पानी से भरता कि स बंद हो जाता, और श्वास बंद हुआ कि क्रोध विदा हो जाता है।

बहुत-से लोग पूछते हैं कि क्रोध शांत कैसे किया जाए। मैं कोई क्टर नहीं हूं, तथापि उन्हें उपाय सुझाता हूं। मैं कहता हूं, जिस समय

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गुस्सा आए, उस समय कुछ क्षणों के लिए श्वास-निरोध की आ
डालो। पर कठिनाई यह है कि जब क्रोध का उन्माद आदमी पर छाता
उसे श्वास-निरोध की बात याद ही नहीं रहती। इसके बावजूद
निश्चित है कि जो व्यक्क्ति संकल्पपूर्वक श्वास-निरोध का अभ्यास
प्रयोग करता है, वह अवश्यमेव लाभान्वित होता है। श्वास को सव
रोकना यदि एकाएक कठिन हो तो श्वास-दर्शन करते हुए एक-एक श्व
को गिनना भी बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है।

क्रोध को ही क्यों, अन्यान्य सभी प्रकार के आंतरिक आवेगों
शांत करने के लिए श्वास-दर्शन व श्वास-संयम का प्रयोग रामब
औषध है। जब-कभी व्यक्ति को वासना सताए, तब तत्काल यदि
उपर्युक्त प्रयोग करे तो निश्चय ही उसे वासना-विजय में सफलता प्र
होगी। यह प्रयोगसिद्ध बात है कि धधकते अंगारों से भरे बर्तन को
ढक्कन से दिया जाता है तो अंगारे बुझ जाते हैं। कारण यह कि उन
हवा मिनी बंद हो जाती हे। जब बाहर की अग्नि बाहर की हवा के अ
में शांत हो जाती है, तब अंदर की यह आग (काम-वासना) अंदर
हवा (श्वास) के अभाव में शांत कैसे नहीं होगी?

गंगाशहर
२८ जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१६ : परमाणु-संश्लेष की प्रक्रिया

परमाणु और स्कंध की चर्चा कल मैंने की। यह तो आपने जाना परमाणुओं के मिलने से स्कंध बनता है। पर ये परमाणु परस्पर कैसे लते है, यह बात अभी तक बहुत-से लोग शायद नहीं जानते। क्या ई भी परमाणु अन्य किसी परमाणु से सहजरूप में मिल जाता है या के मिलने की कुछ विशेष परिस्थितियां होती हैं, इस विषय का जैन-न में बड़ा सूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है।

ग्ध और रूक्ष

स्निग्धरूक्षत्वाद् अजघन्यगुणानाम्।

अजघन्यगुणानाम्ह्वद्विगुणादिस्निग्धरूक्षाणां परमाणूनां तद्विषमैः समैर्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षैः परमाणुभिः समं स्निग्धरूक्षत्वाद्धे-तोरेकीभावो भवति न तु एकगुणानामेकगुणैः सममित्यर्थ।

अयं हि विसदृशापेक्षया एकीभाव।

सबसे पहले आप से बात को समझें कि परमाणुओं के परस्पर लने का मूल हेतु स्पर्श है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, स्पर्श रूक्ष और स्निग्ध-ये दो प्रकार है। अब सवाल उठ सकता है, क्या ों से एकीभाव होता है या केवल एक से, और यदि एक से ही होता तो वह रूक्ष से होता है या स्निग्ध से। इस प्रश्न का समाधान यह है मूलतः परमाणुओं का एकीभाव स्निग्धता के कारण होता है। आप ते हैं कि दीवाल पर यदि चिकनाहट है तो रजकरण आ-आकर उस चिपक जाते हैं। अन्यथा रजकण आ तो सकते हैं पर चिपकते नहीं। बात परमाणुओं के एकीभाव पर लागू होती है। पर इसके साथ ही भी ध्यान रखना चाहिए कि केवल स्निग्धता से भी एकीभाव नहीं हो कता। स्निग्धता के साथ-साथ थोड़ी रूक्षता भी चाहिए। आप कोई ठाई बना रहे हैं। यदि समें बहुत ज्यादा घी डाल दिया तो क्या वह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बंध सकती है? नहीं बंध सकती। बंधने के लिए स्निग्धता जरूरी है। वह एक सीमा तक ही जरूरी है। यदि स्निग्धता-ही-स्निग्धता हो अ रूक्षता बिलकुल न हो तो वह मिठाई बंध नहीं सकती। तत्त्व यह है स्निग्धता के साथ-साथ एक सीमा तक रूक्षता भी जरूरी है।

परमाणुओं के परस्पर एकीभाव के संबंध में शास्त्रों में बताया ग है कि अजघन्य गुणवाले अर्थात दो या दो से अधिक गुणवाले स्निग्ध रूक्ष परमाणु क्रमशः अजघन्य गुणवाले रूक्ष एवं स्निग्ध परमाणुओं मिलते हैं। यदि परमाणु जघन्य गुणवाले (एक गुणवाले) हैं तो उनका क परस्पर एकीभाव नहीं होता। अर्थात परमाणुओं के मिलने में एक परम कम-से-कम द्विगुण रूक्ष एवं दूसरा द्विगुण स्निग्ध अवश्य चाहिए।

सम और विषम परमाणु

यहां यह प्रश्न भी पूछा जा सकता है कि क्या सम गुणव परमाणु ही परस्पर मिलते हैं यह विषम गुणवाले परमाणु भी परमाणु के मिलने में गुणों की संख्या का सम होना कोई अनिवार्य शर्त नहीं सम गुणवाले परमाणु परस्पर मिल सकते हैं तो विषम गुणवाले परम भी परस्पर एकीभूत हो सकते हैं। उदाहरणार्थह्नएक परमाणु द्विगुण स्नि है और दूसरा त्रिगुण रूक्ष है तो उनका परस्पर एकीभाव हो जाएग इसी प्रकार एक परमाणु द्विगुण रूक्ष है और दूसरा परमाणु त्रिगुण स्न है तो उनका भी परस्पर एकीभाव हो जाएगा। सारांश यही है कि परम चाहे विषम गुणवाले हों या सम गुणवाले उनका परस्पर संबंध हो ज है। केवल एक शर्त है कि वे सब अजघन्य गुणवो होने चाहिए। पूछा सकता है, कया जघन्य गुणवाले भी परमाणु होते हैं? हां, बहुत होते और उनका कभी परस्पर एकीभाव नहीं हो पाता।

परमाणुओं के परस्पर मिलने के संबंध में एक प्रश्न और पूछा सकता है कि कया स्निग्ध परमाणुओं के साथ स्निग्ध परमाणुओं क तथा रूक्ष परमाणुओं के साथ रूक्ष परमाणुओं का एकीभाव हो सकता

द्व्यधिकादिगुणत्वे सदृशानाम्।

अजघन्यगुणानां सदृशानांह्नस्निग्धैः सह स्निग्धानां रूक्षैः रूक्षाणां च परमाणूनाम्, एकत्र द्विगुणस्निग्धत्वम्, अन चतुर्गुणस्निग्धत्वमितिरूपे द्व्यधिकादिगुणत्वे सति एकीभावो भव न तु समानगुणानामेकाधिकगुणानाञ्च। उक्तञ्चह्न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

निद्धस्स निद्धेण दुआहियेण लुक्खस्स लुक्खेण दुआहियेण।
निद्धस्स लुक्खेण उवेई बंधो, जहन्नवज्जो विसमो समो वा।।

हां, स्निग्ध परमाणुओं के साथ स्निग्ध परमाणुओं का तथा रूक्ष माणुओं के साथ रूक्ष परमाणुओं का एकीभाव हो सकता है। पर होता ी स्थिति में है, जब परस्पर मिलनेवाले परमाणुओं में द्विगुण या उनसे धिक गुणों का अंतर हो। उदाहरणार्थह्नदो गुण स्निग्ध परमाणु का चार । अथवा उनसे अधिक गुण स्निग्ध परमाणु के साथ संबंध होता है। ी प्रकार रूक्ष परमाणु का रूक्ष परमाणु के साथ संबंध होने के लिए ा-से-कम दो गुणों का अंतर अवश्यंभावी है।

ाशहर

, जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१७ : काल

छह द्रव्यों की व्याख्या के अंतर्गत धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिक आकाशास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय का विवेचन आप सुन चुके आज मैं काल के बारे में कुछ बताऊंगा। यद्यपि पुद्‌गल की तरह क को हम देख तो नहीं सकते, तथापि उसके अस्तित्व को नकारा नहीं सकता। हालांकि यह ठीक है कि वह एक औपचारिक द्रव्य है, वास्तवि नहीं, फिर भी वह हद्रव्य तो है ही, यह हमें मानना होगा। छहद्रव्यों उसको बराबर का स्थान प्राप्त है।

कालः समयादिः।

निमेषस्यासंख्येयतमो भागः समयः, कमलपत्रभेदाद्युदाहरणलक्ष्
आदिशब्दात् आवलिकापद्‌यश्च। उक्तञ्चह्न

समयावलियुमुत्ता, दिवसमहोरत्तपक्खमाया य।
संवच्छरजुगपलिया, सागरओसप्पिपरियट्टा।।

काल की सबसे छोटी इकाई

समय आदि को काल कहते हैं। *समय* काल काल का सबसे छो भाग है। एक बार आंख झपकने यानी एक निमेष में असंख्य समय ह हैं। दूसरे शब्दों में निमेष का असंख्यातवां भाग समय है। समय सूक्ष्मता को समझने के लिए *कमलपत्रभेद* और *जीर्ण वस्त्र फाड़नाह्नये* उदाहरण दिए गए हैं।

कमलपत्र-भेदह्नसौ कमल के पत्ते एक-दूसरे से सटे हुए हैं। व व्यक्ति सूई से उन्हें छेद देता है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है सारे पत्ते एक साथ छेदे गए हैं। किन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा भि है। पहला पत्ता जिस समय छेदा गया, उस समय दूसरा पत्ता नहीं दूस पत्ता जिस समय छेदा गया, उस समय तीसरा नही। इस प्रकार सब क्रमशः अलग-अलग छेदे गए हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दूसरा उदाहरण जीर्ण वस्त्र को फाड़ने का है। एक व्यक्ति जीर्ण-र्ण कपड़े को शीघ्रता से फाड़ डालता है। इतनी शीघ्रता से कि यक्षदर्शी को ऐसा लगता है कि पूरा वस्त्र एक साथ ही फाड़ा गया है। न्तु यह वास्तविकता नहीं है। जब तक ऊपर का पहला तन्तु नहीं ता, जब तक नीचे का दूसरा तन्तु नहीं फट सकता। अतः यह श्चित है कि कपड़े के फटने से कालभेद अवश्य रहता है। वस्त्र अनेक गों से मिलकर बनता है। प्रत्येक धागे में भी अनेक रोएं होते हैं। उनमें ऊपर का रोआं पहले छिदता है, उसके बाद उसके नीचे का रोआं, के बाद उसके नीचे का, उसके बाद......इस प्रकार एक-एक रोआं दते-छिदते पूरा धागा और एक-एक धागा छिदते-छिदते पूरा कपड़ा ता है।

कमल के पहले पत्ते तथा तंतु के पहले रोएं के छेदन में जितना य लगता है, उसका अत्यंत सूक्ष्म यानी असंख्यातवां भाग *समय* लाता है।

ल के विभिन्न विभाग

समय काल का सबसे छोटा और *पुद्गलपरावर्तन* काल का सबसे ा भाग है। समय और पुद्गलपरावर्तन के बीच आवलिका, मुहूर्त्त, स, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पल्योपम, गर कालचक्र आदि काल के विभिन्न विभाग हैं।

असंख्य समय की एक आवलिका होती है। (१६७७७२१६) एक ोड़ सड़सठ लाख सत्तर हजार दो सौ सोलह आवलिकाओं का एक र्त्त और तीस मुहूर्त्त का एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। पंद्रह दिन एक पक्ष और दो पक्षों का एक माह होता है। दो माह की एक ऋतु र तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयनों का एक साल और च साल का एक युग होता है। सत्तर कोड़ाकाड़, छप्पन लाख करोड़ का एक पूर्व होता है। असंख्यात वर्ष का एक पल्योपम और दस ड़ाकोड़ पल्योपम का एक सागर होता है। बीस कोड़ाकोड़ सागर का कालचक्र (अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी) होता है। अनंत कालचक्र एक पुद्गलपरावर्तन माना गया है।

ा समय वापस नहीं आता

बंधुओ! काल-विभाग का यह संक्षिप्त विवेचन मैंने आपके सामने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रस्तुत किया। काल सतत प्रवहमान है। गया हुआ काल वापस न
आता, जबकि खोया हुआ धन वापस मिल सकता है, खोया हु
स्वास्थ्य पुनः मिल सकता है, खोई हुई इज्जत भी कठिनाई से वा
मिल जाती है। और तो कया, सफेद केश भी पुनः काले हो सकते
गिर हुए दांत भी फिर आ सकते हैं।

मुझे बहुत अच्छी तरह याद है कन्हु चौधरी। उसकी वय
सौ आठ वर्ष की थी। महाराज गंगासिंहजी ने उसे कंठी बख्शिश क
अपने राज्य के वृद्धतम व्यक्ति के रूप में सम्मानित किया था। वह पू
गुरुदेव कालूगणी के दर्शनार्थ आया। पूज्य कालूगणी ने पूछाह्न'कन्हु !
दांत तो सारे गिर गए होंगे ?' कन्हु ने करबद्ध निवेदन कियाह्न'
महाराज ! एक बार तो सारे ही गिर गए थे, पर अब पुनः नए आ
हैं' इसके साथ ही उसने अपना मुंह खोलकर दिखलाया। सचमुच उ
नए दांत आ रहे थे। इसी प्रकार बिलकुल सफेद बने उसके केश,
पुनः काले होने शुरू हो गए थे।

हां, तो मैं आपसे बता रहा था कि धन, संपत्ति स्वास्थ्य अ
सब-कुछ पुनः प्राप्त हो सकता है, पर बीता हुआ काल किसी कीमत
लौट कर नहीं आताह। आपमें से किसी भाई-बहिन के पास यदि
ऐसी विद्या या शक्ति हो, जिससे की बीते हुए काल को लौटाया जा स
तरो वह मुझे भी बताए। मैं उसे ग्राहक-बुद्धि से स्वीकार करूंगा। पर
निश्चित जानता हूं कि आप ही क्या, संसार का कोई व्यक्ति ऐसी वि
या शक्ति से सम्पन्न नहीं है।

चिंता नहीं, चिंतन करें

काल बीतता जा रहा है, इसकी हमें कोई चिंता नहीं होनी चाहि
हमें तो इसे बात का चिंतन करना है कि यह काल किस प्रकार बीत
है। भगवान महावीर ने कहाह्न

जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ।।
जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ।।

ह्न जो-जो रातें बीत रही हैं, वे लौटकर नहीं आतीं। अ
करनेवालों की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं। इसके

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विपरीत धर्म करनेवालों की रात्रियां सफल होती हैं।

भगवान की इस वाणी के परिप्रेक्ष्य में आप लोग इस बिंदु पर ीरतापूर्वक विचार करें कि आपका जीवन किस प्रकार व्यतीत हो रहा । यदि आपका समय सत्य, शील, संतोष, समता, मैत्री····की आराधना व्यतीत हो रहा है, तब तो आपके जीवन की सार्थकता है। फिर पको बीते हुए काल के लिए किंचित भी अफसोस नहीं करना चाहिए, ोंकि उसका सार आपने निकाल लिया। पर इसके विपरीत यदि पका अमूल्य समय हिंसा, शोषण, कलह, हास्य, चुगली, आलोचना-यालोचना, निठल्लेपन·····में बीतता है तो अवश्य ही चिंता की बात है। चमुच जीवन के कीमती क्षणों को इन बातों में खोना एक बहुत बड़ी धि से हाथ धोना है। जो लोग ऐसी जिंदगी जीते हैं, उन्हें देखकर कई र मेरे मन में विचार आता है, क्या ही अच्छा हो कि इनका सारा-का-रा समय मुझे मिल जाए, क्योंकि मेरे पास इतना काम है कि दिन-रात स्त रहने के बावजूद कभी पूरा नहीं होता, वह आगे-से-आगे तैयार ता है। यों मैं तो मानता हूं कि व्यक्ति के सामने काम आगे-से-आगे ा ही रहना चाहिए। जिस व्यक्ति के सामने करणीय कार्य नहीं है, वह क्ति किस काम का !

ां जाणहि

भाइयो ! आप निश्चित मानें, हमारी जिंदगी में एक मिनिट का भी ई भरोसा नहीं है। एक श्वास आया, पर दूसरा श्वास आएगा या नहीं, का किसी को पता नहीं है। एक पैर यहां रखा, पर दूसरा पैर रखा एगा या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं है। हमारे युवक भाई जरा चें। मैं मानता हूं, उनकी अवस्था जवान है। उनका जोश भी जवान है। की कर्मजा शक्ति भी जवान है। साथ ही उनका अहं भी जवान है। वे यद सोचते हैं कि मरनेवाले दूसरे ही हैं। हम तो सदा अमर रहेंगे। पर को मैं सजग करना चाहता हूं कि काल समवर्ती है। वह बच्चों, बूढ़ों र जवानों पर समान रूप से वर्तता है। इसलिए भगवान महावीर ने ाह्न**समयं गोयम ! पमायए**ह्नहे गौतम ! तू एक क्षण के लिए भी प्रमाद कर। सचमुच ही अप्रमाद का यह एक बहुत गहरा सूत्र है। जो क्ति काल के प्रति जागरूक हो जात है, वह फिर करणीय कार्य करने एक क्षण का भी प्रमाद नहीं कर सकता। यानी आज करने का कार्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कलह के लिए वही व्यक्ति छोड़ सकता है, जो काल के प्रति जागर
नहीं है। आगम की भाषा हमेंह्न

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सया।।

ह्न तीन ही प्रकार के व्यक्ति कल करने की बात कर कह सक
हैंह्न जिनका मौत के साथ मैत्री हो या जो मौत के आगमन
पलायन करने में समर्थ हो या जो यह जानते हो कि हम स
अमर रहेंगे। इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों के अतिरिक्त क
व्यक्ति करणीय कार्य करने के लिए कल की बात नहीं
सकता।

तात्पर्य यह है कि काल का आगमन हर व्यक्ति के लि
अवश्यंभावी है। इसलिए जिस क्षण व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाए, उ
क्षण से उसे धर्म की आराधना के लिए जागरूक बन जाना चाहिए। फि
एक क्षण का भी प्रमाद करना उसके लिए समझदारी की बात नहीं
आप देखें, संसार में जितनी भी ऊंची आत्माएं हुई हैं, उन्होंने काल
स्थिति समझते हुए ध-वैभव, परिवार.......को तिलांजलि देकर संय
आराधना का पथ अंगीकार किया है।

प्रसंग थावच्चापुत्र का

ज्ञाताधर्मकथा में थावच्चापुत्र का घटना-प्रसंग आता है। वह सेठ
थावच्चा का पुत्र था। उसके नाम से उसे थावच्चापुत्र की अभिधा
संबोधित किया जाता था थावच्चापुत्र की वृत्ति बचपन से ही धार्मिक थ
एक बार द्वारिका में तीर्थंकर अरिष्टनेमि का पर्दापण हुआ। हजारो-हज
लोग उनके उपदेशामृत से लाभान्वित होने के लिए उपस्थित हु
भगवान अरिष्टनेमि ने अपने प्रवचन में मानव-जीवन की दुर्लभता
संसार की निस्सारता का बोध कराते हुए जन-जन को आत्म-संयम
ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। उपदेश से प्रभावित होकर लोगों ने यथाशि
महाव्रत और अणुव्रत स्वीकार किए। थावच्चापुत्र भी भगवान
समवसरण में उपस्थित था। भगवान के उपदेशामृत से उसका हृदय अ
हो गया। उसके मन में संसार से विरक्ति हो गई और वैराग्य के अं
फूट पड़े। अवसर देखकर वह भगवान अरिष्टनेमि के श्रीचरणों
उपस्थित हुआ। बद्धांजलि मुद्रा में उसने भगवान से निवेदन कियाह्न'भंते

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संसार की नश्वरता को समझी है, मनुष्य-जीवन की कीमत आंकी
अब मैं आपके चरणों में संयम-जीवन स्वीकार कर आत्म-कल्याण
ना चाहता हूं। भगवान अरिष्टनेमि ने कहाह्न**'अहासुहंह्न**जैसा तुम्हें
वकर हो, जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।'

उन्हीं पैरों वहां से चलकर वह माता थावच्चा के पास आया और
ाम कर बोलाह्न मां ! आज मैं भगवान अरिष्टनेमि के समवसरण में
ा था।'थावच्चा ने उसका मस्तक सहलाते हुए कहाह्न'पुत्र! तूने अच्छा
या।' थावच्चापुत्र बोला मां ! 'मैं वहां गया ही नहीं, अपतु मैंने भगवान
प्रवचन भी सुना।' थावच्चा बोलीह्नबेटा ! यह तो तूने बहुत ही अच्छा
या।' भाव-विभोर होता हुआ थावच्चा पुत्र बोलाह्न'मां ! मुझे भगवान का
चन बड़ा मार्मिक और प्रिय लगा।' थावच्चा बोलीह्नबेटा ! तू अत्यंत
भाग्यशाली है। अन्यथा प्रथम तो भगवान के दर्शन नहीं होते, धर्म की
ी सुनने को नहीं मिलती। कदाच मिल जाती है तो उस पर प्रतीति
ं होती, वह प्रिय नहीं गलती। अच्छा, अब तू प्रतिदिन भगवान का
चन सुना कर।' थावच्चापुत्र बोलाह्न'ठीक है मां ! अब मैं प्रतिदिन
चन सुना करूंगा। तू मुझे आज्ञा दे, मैं भगवान का शिष्य बन जाऊं।'
च्चा ने कहाह्न'ना-ना, वत्स ! यह शिष्य बनने की बात किसने
ाई? मैं तुझे इसकी आज्ञा नहीं दूंगी।' थावच्चा पुत्र ने कहाह्न'मा !
ी तूने ही तो कहा था कि उनका प्रतिदिन प्रवचन सुना कर।' थावच्ची
लीह्न'हां, प्रवचन सुनने के लिए कहा था, उनका शिष्य बनने के लिए
ं कहा था।' उनका शिष्य बनने के लिए नहीं कहा था।'

बंधुओ! मैं नहीं समझता कि लोगों के प्रवचन सुनने का उद्देश्य
ा है। यदि प्रवचन मात्र सुनने के लिए है, उसका जीवन में कोई
लित नहीं हैह तो मानना चाहिए कि उसके श्रवण का बहुत लाभ नहीं
वास्तव में प्रवचन सुनने का उद्देश्य तभी फलित होता है, जब प्रवचन
बातें जीवन-व्यवहार में उतारी जाएं। आज युवा-वर्ग में धर्म के प्रति
रुचि और अनास्था का भाव उभर रहा है। इसका एक बहुत बड़ा
रण तथाकथित धार्मिकों का जीवन है। उनका जीवन-व्यवहार उसके
वा-वर्ग के) धर्म के प्रति आकृष्ट होने में बाधक बन रहा है। यदि यह
कहा जाए तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनका जीवन-व्यवहार
पीढ़ी में धर्म के प्रति अनास्था और अरुचि पैदा होने का एक प्रमुख
रण है। आजकल के तथाकथित धार्मिक क्रियाकांड, प्रवचन-श्रवण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आदि तो अवश्य करते हैं, पर धर्म करने के पश्चात भी वही गुस्सा, व
छल-प्रपंच, वही दुकान में बैठकर ग्राहकों के साथ धोखा, वही शो
और अन्याय ! ऐसी स्थिति में आज का बौद्धिक एवं चिंतनशील यु
यदि धर्म के प्रति आकृष्ट न हो तो कोई आश्चर्य नहीं। हां, आकृ
होता है तो आश्चर्य अवश्य है।

सेठ अद्वैतवादी था। प्रतिदिन अद्वैत पर प्रवचन सुनता। एक ि
उसका बेटा भी प्रवचन सुनने के लिए चला गया। पंडितजी ने अद्वैत
का बहुत तपस्पर्शी विवेचन कियह्न **एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**...... **उ
चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्**।...... बेटा बहुत प्रभावित हुआ। वहां
चलकर वह दुकान आया। दुकान अनाज की थी । दुकान पर बैठे
थोड़ी ही देर हुई होगी कि एक गाय वहां आई और दुकान में
अनाज को खाने लगी। बेटे ने गाय को देखा, पर उसे हटाने का
प्रयास नहीं किया। उसने सोचाह्न अभी-अभी मैं प्रवचन में सुनकर अ
हूं कि इस जगत में न कोई अपना है और न कोई पराया। पशु
मनुष्य में कोई अंतर नहीं है। सब एक ब्रह्म के ही रूप हैं। अनाज
खाऊं या गाय खाए, एक ही बात है। जैसा मेरा शरीर है, वैसा
इसका शरीर है।......

संयोग से दो-चार मिनिट बाद ही सेठ दुकान की ओर आया।
से उसने देखा-गाय दुकार का अनाज खा रही है और बेटा हाथ-पर-
दिए देख रहा है। उसने अपनी चाल तेज की। यथाशीघ्र दुकान पहुंच
झट हाथ में लट्ठी संभाली। गाय के दो-चार लट्ठियां जमाकर उसे
भगाया और आंखें लाल रकता हुआ बेटे से बोलाह्न'ओ बवकूफ ! बै
बैठा क्या देख रहा था ! गाय अनाज खा रही थी और तूने उसे हट
तक नहीं।' बेटे ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक निवेदन कियाह्न'पिताजी !
तो हम प्रवचन सुनकर आए थे कि पशु और मनुष्य एक ही है। ह
और उनमें कोई अंतर नहीं है। इस स्थिति में अनाज हम खाएं या
खाए, दोनों एक ही तो बात है। सेठ ने झिड़कते हुए कहाह्न'ये उपदेश
बातें मुझे बताना रहने दे। ये उपदेश तो मैंने तेरे से बहुत ज्यादा
हैं। पर ये उपदेश धर्मस्थानों में सुनने के लिए होते हैं, यहां दुकान
लाने के लिए नहीं होते। यदि इन उपदेशों को दुकान पर लाया गया
हमारा धंधा चौपट हो जाएगा।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बंधुओ! कितना करारा व्यंग्य है यह आज के धार्मिक जीवन पर! ा-पिता तथा बुजुर्गों के लंबे धार्मिक जीवन की उपलब्धियों को कर उनके बच्चे धर्म को अफीम या दकियानुसी विचार समझने लगे वे ऐसे धर्म की जीवन के लिए कोई उपयोगिता नहीं देखते।

मुझे कुछ समय पहले की एक घटना याद आ रही है। एक श्रावक अपने लड़के की शिकायत करते हुए कहाह्न'महाराजा ! मेरे बेट का झाइएं धर्म के प्रति उसके मन में जरा-सी भी अभिरुचि नहीं है। जब मैं उसे धर्म की बात कहता हूं तो वह कहता है कि मुझे नहीं चाहिए ।' उसको आश्वस्त करते हुए मैंने कहाह्न'ठीक है, कभी मौका लगेगा उससे बात करूंगा।'

संयोग से एक दिन वह लड़का मेरे पास आ गया। बातचीत के ंग में मैंने उससे पूछाह्न'धर्म के प्रति तुम्हारे मन में इतनी अरुचि ों? तुम धर्म से नफरत क्यों करते हो ?'

उसने चारों तरह सहमी-सहमी दृष्टि डाली कहीं पिताजी तो माजूद ीं हैं। फिर निश्चिंत होकर बोलाह्न'आचार्यश्री ! वास्तव में धर्म के मेरी कोई अरुचि नहीं। जीवन की पवित्रता में मैं विश्वास करता हूं। सामायिक, पौषध, उपवास संत-दर्शन आदि में मेरी अभिरुचि नहीं है र इसके कारण हैंह्नमेरे पिताजी।' मैंने जरा विस्मय के साथ ाह्न'पिजाजी कारण कैसे ?' अपना मन खोलते हुए उसने कहाह्न'मेरे ाजी धर्म-क्रिया करते-करते बूढ़े हो गए हैं। पर उनका स्वभाव व वहार इतना विचित्र है कि मुझे बड़ा दुःख होता है। मुंह से दिन भर लियां बोलते रहते हैं। गुस्सा तो इस सीमा तक है कि मुझे पीट देते मेरी माताजी को पीट देते हैं। मुझे कहे गए अपशब्द और गालियां तो ,मैं सहन कर सकता हूं, अपनी मार भी सहन कर सकता हूं, पर माताजी को कुछ भी कहा जाए या उन्हें पीटा जाए, यह मेरे बर्दाश्त ने की सीमा से बाहर की बात है। इस प्रकार वे स्वयं तो अशान्त ते ही हैं, साथ ही पूरे परिवार के वातावरण को भी अशांत बनाए ते हैं। मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न उभरता है कि जब इन्हें पचास धर्म करते हो गए और इनके जीवन में कोई रूपांतरण घटित नहीं ा, इन्हें मानसिक शांति नहीं मिली, तब उस धर्म से हमारा क्या ा हो सकेगा। युवक को समाहित करते हुए मैंने कहाह्न'तुम्हारे पिताजी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ने धर्म को सही अर्थ में नहीं समझा है, इसलिए उनके जीवन
रूपांतरण नहीं हुआ। यदि धर्म को वे सही रूप में समझते और अपन
तो निस्संदेह उनका जीवन शांतिमय होतां पर दूसरों को बदलना कि
के साथ की बात नहीं। स्वयं को ही बदला जा सकता है। अब तुम '
को सही रूप में अपनाकर आदर्श उपस्थित करो।'

बंधुओ! यह एक युवक की बात मैंने कही। पर आप इसे
युवक की बात न ही समझें। मुझे लगता है कि काफी युवकों की अ
लगभग ऐसी मनःस्थिति है। गहराई से अनुभव करने से मैं इस निष्क
पर पहुंचा हूं कि वस्तुतः युवा पीढ़ी धर्म के प्रति उदासीन नहीं, अ
तथाकथित धार्मिकता से नफरत करती है। धर्म का जो व्यावहा
फलित उसके सामने आता है, वह निश्चय ही उसे आकर्षित करनेवा
नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है, यदि आज भी धर्म का सही रूप युव
के सामने हो, पवित्रता, मानसिक शांति आदि के रूप में उस
व्यावहारिक फलित धार्मिकों के जीवन में परिलक्षित हो तथा धर्म
क्षेत्र में उन्हें सही मार्ग-दर्शन मिले तो वे इस क्षेत्र में भी बड़े उत्साह
साथ आगे आने के लिए तैयार हैं।

मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि जो लोग प्रति
धर्मोपदेश सुनते हैं, उनका ह्रदय परिवर्तित क्यों नहीं होता ! क्यों उन
मानस आद्र नहीं होता! मुझे लगता है कि ऐसे लोग केवल सुनने
लिए प्रवचन सुनते हैं, ग्राहक बुद्धि से नहीं सुनते। यदि ग्राक बुद्धि
एक भी प्रवचन सुन लिया जाए तो उससे व्यक्ति का जीवन रूपांत
हो सकता है, ह्रदय आर्द्र व वैराग्य भावना से परिपूर्ण हो सकता है

हां, तो थावच्चापुत्र का ह्रदय भगवान अरिष्टनेमि के एक दिन
प्रवचन-श्रवण से आर्द्र हो गया। उसने माता से पुनः-पुनः दीक्षा
अनुमति प्रदान करने के लिए सविनय प्रार्थना की। माता ने साधु-जी
की कठिनाइयों से परिचित करवाते हुए एवं भौतिक सुखों का प्रलोभन
हुए उसे संयम-जीवन स्वीकार न करने की बात कही। पर आज जानते
कि जिसके मन में वैराग्य की तीव्रतम भावना जाग्रत हो जाती है,
साधु-जीवन की कठिनाइयां और भौतिक सुखों के प्रलोभन संयम-पथ
आगे बढ़ने से रोक नहीं पाते। थावच्चापुत्र भी अपने विचारों में बिलकु
दृढ़ रहा और भिन्न-भिन्न प्रकार से माता के समक्ष अपना वैचारिक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तुत करता रहा। आखिर माता को जब यह विश्वास हो गया कि यह
म पूर्ण रूप से विरक्त हो गया है, संसार के क्षणिक सुखों में फंसनेवाला
ां है तो उसने उसे दीक्षा की अनुमति दे दी।

वह घर से चल कर सीधी महाराज श्रीकृष्ण के दरबार में उपस्थित
और बोलीह्न'महाराज ! मेरा इकलौता लाडला पुत्र दीक्षित हो रहा है।
उसके वैराग्य की जांच करने के लिए अनेक प्रयत्न किए हैं। पर वह
हर परीक्षा में उत्तीर्ण रहा है। अब मैं उसकी दीक्षा का समारोह
ना चाहती हूं। अतः आप मुझे समारोह के लिए आवश्यक
ाजिमाह्नघोड़ी, आभूषण, छत्र आदि दिलवाने की कृपा करें।' श्रीकृष्ण
बड़े ध्यानपूर्वक उसकी बात सुनी और उसे निश्चिन्त करते हुए
ाह्न'तुम्हें इस संबंध में जरा भी चिंता करने की जरूरत नहीं, मैं स्वयं
की दीक्षा का समारोह मनाऊंगा।'

राजा जब स्वयं दीक्षा का समारोह मनाए, फिर प्रसन्नता का कहना
क्या ! माता थावच्चा खुशी-खुशी घर लौट आई।

थोड़ी दे पश्चात श्रीकृष्ण स्वयं चलकर थावच्चा के घर पहुंचे।
ार के रंग-लावण्य एवं चेहरे की आकृति देखकर उनको सहसा लगा
यह कोई मनुष्य-पुत्र नहीं, अपितु अवश्य हीदेवकुमार है। उन्हें बड़ा
श्चर्य तो इस बात का हुआ कि बचपन की इस छोटी अवस्था में
ने संयम के कठोर पथ पर बढ़ने का निर्णय किया है ! उसके विचारों
दृढ़ता को मापने की दृष्टि से उन्होंने उससे कहाह्न'कुमार ! तू दीक्षा
ले। तेरे जीवन की सारी जिम्मेदारी मैं लेता हूं। यह हवा तो तेरा
र्श करके अवश्य निकलेगी, इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार का
ट में मैं तेरे जीवन में नहीं आने दूंगा।' थावच्चापुत्र ने बहुत ही
क्तिक ढंग से अपनी बात कहीह्न'आपने संरक्षण प्रदान करने की बात
कर मेरे पर बड़ी कृपा की। मैं आपके आदेशानुसार दीक्षा नहीं लूंगां
दो खतरों की तरफ से पहले आप मुझे आश्वस्त कर दें। मुझे अपनी
दगी में कभी बुढ़ापा न देखना पड़े और मैं कभी काल द्वारा ग्रसित न
ऊं।' श्रीकृष्ण कुमार की ज्ञान-भरी बात सुनकर चकित रह गए। वे
नेह्न'इन दोनों खतरों को टाल सकूं, यह सामर्थ्य मुझमे नहीं। मैं तो
ा साक्षात तीर्थंकरदेव भी इनकी अनिवार्यता को नहीं टाल सकते।
को टालने का तो एकमात्र मार्ग हैह्नसंयम आराधना।' था वच्चापुत्र

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अत्यंत विनम्रतापूर्वक बोलाह्न'प्रभो ! यही कार्य तो मैं करने जा रहा ह

यह घटना लंबी है। मैं इसे अभी अंबाना नहीं चाहता। मैं
इतना-सा बताना चाहता हूं कि काल को सफल बनाने का एकमात्र म
हैह्नसंयम की आराधना, धर्म का आचरण। धर्म के सिवाय इस संसार
हमारा कोई त्राण नहीं है। मृढ़ प्राणी धन, परिजन......को शरण या त्र
मानकर उनमें आसक्त होता है। पर मौत, बीमारी, बुढ़ापा आदि
समय इनमें से कोई उसका त्राण या सहारा नहीं बनता। उपाध्य
विनयविनयजी ने इस स्थिति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हैह्न

- **स्वजनजनो बहुधा हितकामं, प्रीतिरसैरभिरामम्।**
  मरणदशावशमुपगतवन्त, रक्षित कोऽपि न सन्तम्।।
- **तुरगरथेभनराऽऽवृतिकलितं, दधतं बलमस्खलितम्।**
  हरित ययो नरपतिमपि दीनं, मैनिक इव लघु मीनम्।।
- **प्रविशति वज्रमये यदि सदने, तृणमथ घटयति वदने।**
  तदपि न मुञ्चति हतसमवर्ती, निर्दयपौरुषनर्त्ती।।
- **विद्यामंत्र महौषधिसेवां सृजतु वशीकृत-देवनाम्।**
  रसतु रसायनमुपचयकरणं, तदपि न मुञ्चति मरणम्।।
- **शरणमेकमनुसर चतुरंग़, परिहर ममतासंगम्।**
  विनय ! रचय शिवसौख्यनिधानं, शान्तसुधारसपानम्।।

मैं इन पद्यों का सविस्तार अर्थ नहीं करूंगा। इनका सारांश इत
ही है कि मनुष्य की इस अशरण की स्थिति में धर्म ही उसका एकम
त्राण है, शरण है, सहारा है। इसके सिवाय सभी सहारे एक समय जा
असहारे सिद्ध होते हैं।

ये मीठे-मीठे बातें करनेवाले पारिवारिक जन व्यक्ति की पीड़ा
नहीं बंटा पाते, बुढ़ापे को नहीं रोक पाते, उसे मौत से नहीं बचा पा
यह मकान, यह जायदाद और अपार धन-संपत्ति सब-कुछ उस समय ज्य
का-त्यों धरा रह जाता है।

ऐसा पता होता तो.......

कहते हैं कि मुहम्मद गजनवी भारतवर्ष से बहुत-सा धन लूट
अपने देश लौटा। वहां जाकर उसने कई ऐसी तिजोरियां बनवाईं,
सभी प्रकार के खतरों से सुरक्षित थीं। वह उस धन को उन तिजोरि
में रख कर बड़ा प्रसन्न था। आखिर जब मौत का समय निकट आ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उसको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने कहाह्न'यह सारा-का-सारा धन छाती पर लाकर रख दो।' उसके मन में विचार आयाह्नहाय ! जिस को प्राप्त करने के लिए मैंने कितनी-कितनी हत्याएं कीं, कितनी-तनी लड़ाइयां लड़ीं, वह धन मेरे कुछ भी काम का नहीं! मुझे ऐसा होता तो मैं क्यों इतना पाप करता !

यह एक सच्चाई है। यह सच्चाई से लोग अनभिज्ञ हैं, ऐसा तो मैं कह सकता। पर आसक्तिवश या अज्ञानवश अधिकतर लोग इस -परिवार के चक्कर में अपने करणीय कार्य को भूल जाते हैंह्न यह वास्तविकता है। इसीलिए कवि 'किसन' ने सबको सचेत किया हैह्न

- **जे ते मनि-माणिक है जो रे मतिमान कहै,**
  धरा में धरे हैं सो तो धरा ही धरायबो।
  एक भूख राख, मत राख भूषण की,
  वह भूख राख, जो न भूषण बनायबो।
  देह देह देह फिर पायबो न एह देह,
  कहा जानू इह जीव कौन जोन जायबो।
  गमन के समय नग गन न गनन देह,
  नग न चलेंगे संग नगन चलायबो।।
- **जे ते मनि-माणिक है जो रे मतिमान क है,**
  धरा में धरे हैं सो तो धरा ही धरायबो।
  एक भूख राख, मत राख भूषण की,
  वह भूख राख, जो न भूषण बनायबो।
  देह देह देह फिर पायबो न एह देह,
  कहा जानू इह जीव कौन जोन जायबो।
  गमन के समय नग गन न गनन देह,
  नग न चलेंगे संग नगन चलायबो।।

बंधुओ! हम लोग सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं से न्न थे। अपने धन, परिजन, ऐशो-आराम को छोड़ कर हमने कोई तो नहीं की है। हमने उन्हें निस्सार और आशरण जाना है। यही रण है कि हम अकिंचन होते हुए भी प्रसन्न हैं।

प रोते हैं, मैं हंसता हूं !

दिल्ली की घटना है। भारत व पाकिस्तान का उस समय बंटवारा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हुआ ही था। हजारों-हजारों शरणार्थी पाकिस्तान से भारत आए। ब
दयनीय स्थिति थी उनकी। किसी का बेटा पीछे रह गया तो किसी
बाप छूट गया। किसी की मां छूट गई तो किसी का पति से वियोग
गया। उनका धन छीन लिया गया, मकान छीन लिए गए। बिलकु
बेसहारे और दुखी थे वे लोग। किसी के कहने से वे सैकड़ों की संख
में मेरे प्रवास-स्थल पर आए और अपनी दर्दभरी कहानी सुनाने ल
सुनाते-सुनाते उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। अब
सामने भी कठिन परिस्थिति थी, क्योंकि सैकड़ों व्यक्तियों को दुःख-
से रोते देख अपने-आपको संभालकर रखना किसी व्यक्ति के लिए ब
मुश्किल होता है। पर मैंने ऐसी परिस्थितियों में अपने-आपको संभाल
रखने का अभ्यास किया है।

हां, तो उनको रोते देखकर मैंने सोचाह्नइन्हें आवश्यक संबल
अपेक्षा है। धन, परिवार, मकान आदि तो मैं इन्हें वापस नहीं
सकता, पर मानसिक संबल अवश्य दे सकता हूं और वह मुझे दे
चाहिए। मैंने कहाह्न'भाइयों! आप अन्यथा न मानें, आपकी और मे
स्थिति लगभग एक-जैसी है।'

मेरी यह बात सुनकर वे रोना तो भूल गए और अगली बात सु
के लिए सोत्सुक मेरी तरफ देखने लगे। मैंने कहाह्न'मकान आपके
नहीं है और मेरे भी नहीं है। परिवार आपका भी छूट गया है और मे
भी छूट गया है। सम्पत्ति आपके पास भी नहीं है और मेरे पास भी न
है।.................सारकार आप लोगों को पुनः बसाने के बारे में तो सं
रही है, पर हमारे बारे में तो ऐसी भी कोई बात नहीं है।'

उनको मेरी बात पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। वे बोलेह्न
'आपके चेहरे पर तो मुस्कान है। दुःख और चिन्ता की एक रेखा
नहीं।'

तब मैंने तत्त्व-बोध देते हुए कहाह्न'हां, इन समान परिस्थितियों
बावजूद इतना अन्तर अवश्य है कि मैं सदा हंसता-खिलता रहता हूं अ
आप आंसू बहाते हैं। इसका कारण है कि आपसे ये सारी चीजें छीन
गई हैं और मैंने इन्हें असार समझकर प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दिया है।
रोना धन-संपत्ति और परिजन के न होने का नहीं, अपितु उन
जबरदस्ती छीने जाने का है। यह हंसना-खिलना उनको स्वेच्छापूर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ड़ देने के कारण है।'

दो क्षण रुककर प्रसंग को थोड़ा-सा मोड़ देते हुए मैंने कहाह्न'मैं
नता हूं कि आप लोग कठिन परिस्थितियों में हैं। पर अब रोने और
य पर हाथ धरकर बैठने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। आपमें से हर
क्ति के दो हाथ हैं, दो पैर हैं, शरीर भी आप लोगों के हृष्ट-पुष्ट हैं।
न करने की आपमें क्षमता है। चिंतन करने के लिए हर व्यक्ति के
स दिमाग है। फिर किस बात की है? आपको ख्याल रहे, आदमी ने
सार में बहुत कुछ बनाया है, आदमी को किसी ने नहीं बनाया।......

मैंने सूक्ष्मता से उनके चेहरे को पढ़ा। मुझे लगा कि मेरे इन शब्दों
उनके मन में पुनः एक आशा की किरण फूटी है। वे मानसिक दृष्टि
अपेक्षाकृत स्वस्थ हुए हैं।

हां, तो मैं आपसे कह रहा था कि हमने अभाव में या किसी
ोभनवश यह संयम का मार्ग स्वीकार नहीं किया है। हालांकि कुछ
ोध लोग आज भी ऐसा मानते हैं और यदा-कदा मुंह से कह भी देते
कि पेट भरने के लिए ये लोग साधु बन गए हैं, तथापि हमारे मन में
के प्रति कोई रोष-आक्रोश नहीं है। लोग हमें कुछ भी बुरा-भला कहें,
लियां दें, निंदा करें, हमारे दोष निकालें, पर हम इन सब
स्थितियोंह्नप्रतिकुलताओं में अपने-आपको संतुलित रखने का प्रयास
ते हैं। हमारा सिद्धांत हैह्न'जो हमारा ही विरोध, हम उसे समझें
नोद।' विरोध को विनोद में बदल देने की यह कला हमने आचार्य भिक्षु
जीवन से सीखी है। आचार्य भिक्षु से किसी ने कहाह्न'महाराजा ! लोग
पके दोष निकालते हैं।' (आपकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते हैं)
नी आलोचना-प्रत्यालोचना की बात सुनकर साधारणतया व्यक्ति
जित हो जाता है। पर आचार्य भिक्षु ने ऐसा सुनकर अपने मन को
नक भी असंतुलित नहीं किया, बल्कि हंसते हुए कहाह्न'दोष निकालते
तो हैं, डालते तो नहीं ! वे (आलोचक) तो मेरे हितैषी ही हैं। मैंने
धु-जीवन इसीलिए तो अंगीकार किया है कि सारे दोषों (कर्मों) को
ट कर दूं। कुछ दोष तो मैं स्वयं त्याग/तपस्या/स्वाध्याय/ध्यान के
रा निकाल रहा हूं और कुछ वे (आलोचक) निकाल रहे हैं।'

बंधुओ! मैं मानता हूं कि विरोधी विचारों और आलोचना-
यालोचनाओं को समभावपूर्वक सहन करने की क्षमता सभी धर्मगुरुओं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में विकसित होनी चाहिए। मुझे तब बड़ा दुःख होता है, जब मैं देखता
कि धर्मगुरु कहलानेवाले, धर्म के अधिकारी कहलानेवाले समझदार ल
भी बिना सोचे-समझे कभी-कभी ऐसी छिछली एवं हलकी बात कर
हैं, कि जिससे लाखों-लाखों लोगों में उत्तेजना या द्वेष का भाव फै
जाता है। मैं नहीं समझता, जब धर्माधिकारी लोग भी समय पर थोड़ी-
गंभीरता नहीं रख पाते, विरोधी विचारों को हजम नहीं कर पाते, जब
लाखों-लाखों लोगों का धार्मिक पथ-दर्शन कैसे कर सकेंगे।

मानव-जीवन की सार्थकता

काल की अनिवार्यता को बताते-बताते मैं कहां का कहां प
गया। बंधुओ! अब आप काल को बहुत अच्छी तरह से समझ
होंगे। समझने का अर्थ यही है कि आप प्रतिक्षण बीतते हुए इस क
को अधिक-से-अधिक सत्य, शील, संतोष, त्याग, तपस्या आदि के द्व
सार्थक बनाने का प्रयास करें। इसी में मानव-जीवन की सार्थकता है।
सार्थकता प्राप्त होने के बाद काल किसी क्षण क्यों न आए, कोई चिं
की बात नहीं है।

काल-परिपाक

एक दृष्टि से काल का विवेचन समाप्त हुआ ह। पर एक अ
दृष्टि से भी आपको काल को समझना है। आप इस बात को समझें
हर कार्य, हर वस्तु काल का परिपाक मांगती है। जब तक काल
परिपाक नहीं हो जाता, तब तक अन्य सारे निमित्त मिलने पर भी क
बनता नहीं। आज किसान ने बीज बोया। पानी भी सींचा। पर वृक्ष
दिन में खड़ा नहीं होता। फूल-फल से हरा-भरा होता। फूल-फल आने
समय लगता है। यानी काल का परिपाक होने पर ही वृक्ष फूलों-फलों
हरा-भरा होता है। इसीलिए संत कबीरदास ने कहा है‒

धीरे धीरे रे मना ! धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

अर्थात किसी भी प्रवृत्ति या क्रिया का फल समय के परिपाक
मिलता है। इस तत्त्व को जानकर व्यक्ति को सदा धैर्य रखना चाहि
विद्यार्थी आज पढ़ना आरंभ करे और चाहे कि मैं आज ही विद्वान
जाऊं, यह कभी संभव नहीं है। धैर्यपूर्वक अध्ययन करने के बाद
काल का परिपाक होगा, तभी वह विद्वान बन सकेगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ख्य फल : गौण फल

कुछ लोगों की शिकायत रहती है कि हमने धर्म तो किया पर फल छ नहीं मिला। मैं मानता हूं, ऐसा कभी संभव नहीं है। अलबत्ता इस दर्भ में एक बात अवश्य ध्यान में रखने की है। धर्म के दो प्रकार के ल हैंह्नवास्तविक तथा प्रासंगिक। व्यक्ति ने धर्म की आराधना की और सको मानसिक शांति की प्राप्ति हुई, जीवन की पवित्रता उपलब्ध हुई, उसका वास्तविक और मुख्य फल है, तात्कालिक फल है। पर धर्म-या के साथ पुण्य का बंधन भी होता है और काल-परिपाक से जब पुण्य उदय में आता है, तब व्यक्ति को धन, संपत्ति, पुत्र.....के रूप में तिक लाभ भी मिलता है। यह है धर्म का प्रासंगिक या गौण फल। स्तविक/मुख्य/मूल तात्कालिक फल तो व्यक्ति को धर्म करने के थ-साथ ही प्राप्त होता है। पर अनुषंगिक फल काल के परिपाक के ना नहीं मिल पाता।

इस संदर्भ में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति को धर्म सदा त्म-शांति और जीवन की पवित्रता के लिए ही करना चाहिए। आत्म-ति और पवित्रता की दृष्टि से किए जानेवाले धर्म में प्रासंगिक/नुषंगिक फल तो सहज रूप से प्राप्त होता ही है। उसके लिए धर्म ने की जरूरत नहीं है। पर संसार में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं, प्रासंगिक/आनुषंगिक फलह्नधन-संपत्ति, मकान, जायदाद, संतान आदि तिक सुख-सुविधाओं के लिए ही धर्म करते हैं। मेरी दृष्टि में वे लोग नासमझ किसान कभी तूड़ी के लिए खेती करता है। हर कियान न के लिए ही खेती करता हैं तुड़ी तो उसे अनाज के साथ सहज रूप उपलब्ध होती है।

तेरापंथ धर्मसंघ के आद्यप्रणेता आचार्य भिक्षु ने धर्म करने के इस ष्टिकोण को बहुत सूक्ष्मता से स्पष्ट किया है। इस दृष्टिकोण को न मझने के कारण बहुत-से लोग मुख्य/मूल/सारभूत तत्त्व को तो गौण देते हैं और गौण/प्रासंगिक/अनुषंगिक तत्त्व को प्रमुख।

मैंने सुनी है एक घटना। एक यूरोपीय पर्यटक भारत आया। घूमता-ता वह रास्थान के रेतीले प्रदेश में पहुंच गया। संयोगवश एक दिन वह र्ग भूल गया और जंगल में भटकने लगा। उसे कड़कड़ाती भूख लग । पर रेतीले जंगल में खाने को मिले ही क्या ? आखिर काफी देर तक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इधर-उधर भटकने के पश्चात उसे दूर झोंपड़ी दिखाई दिया। वह उ
झोंपड़े के पास पहुंचा। वह एक किसान का घर था। वह अत्यंत प्रस
हुआ। किसान ने अतिथि का अपनी सांस्कृतिक शैली से स्वागत किय
पर्यटक ने अपनी परिस्थिति बताई। पर कठिनाई यह हो गई कि वे दो
ही एक-दूसरे की बात नहीं समझ पा रहे थे, क्योंकि किसान अंग्रेजी न
जानता था और वह पर्यटक हिंदी एवं राजस्थानी। पर अंततः वह पर्यट
संकेतों के माध्यम से किसान को यह समझाने में सफल हो गया कि
भूखा हूं, मुझे खाने को कुछ दो। किसान ने एक बाजरे की रोटी पर थोड़
सा प्याज रखा और वह उसके हाथ में थमा दी। विदेशी पर्यटक ने प्य
तो खा लिया और उस रोटी को तस्तरी समझकर फेंक दिया। उस
इतना ज्ञान नहीं था कि यह तस्तरी नहीं, रोटी है और यही सारभूत ख
की वस्तु है। प्याज तो मात्र इसके साथ लगावन के रूप में है।

बंधुओ! आप हंस सकते हैं उस विदेशी पर्यटक के अज्ञान प
पर टटालें जीरा अपने-आपको। कहीं आप भी तो ऐसी भूल नहीं कर
हैं? धर्म की क्रिया यदि आप आत्म-शांति और जीवन की पवित्रता
लिए करते हैं, तब तो ठीक है, पर कहीं भौतिक सुख-सुविधाओं
भोग-विलास की सामग्री की प्राप्ति के लिए करते हैं तो मानना होगा
आप भी उसी पर्यटक के साथी हैं। मैं नहीं चाहता, कोई भी व्यक्ति उ
पर्यटक जैसी भूल करे। अपेक्षित है, आप धर्म करने के सही दृष्टिक
को समझें और मात्र आत्म-शांति और जीवन की पवित्रता के उद्देश्य
उसे जीवन में स्थान दें।

गंगाशहर

३० जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१८ : काल के लक्षण

'काल' के स्वरूप की विस्तृत चर्चा कल की गई। आज की चर्चा
ल को कैसे पहचाना जाए, इस बिंदु पर होगी।

वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वादिभिर्लक्ष्यः।

वर्तमानत्वम्ह्नवर्तना। पदार्थानां नानापर्ययेषुपरिणतिःह्नपरिणामः।
क्रियाह्नचंक्रमणादिः। प्राग्भावित्वम्। पश्चाद्भावित्वम्ह्नअपरत्वम्।

जैन-दर्शन में काल को पहचानने के लिए पांच लक्षण बताए गये
१. वर्तना २. परिणाम ३. क्रिया ४. परत्व ५.अपरत्व।

र्ना

वर्तमान से रहने का नाम हैह्नवर्तना। यह वस्तु वर्तमान है, मौजूद
इसे हमे काल से ही जानते हैं। इसी प्रकार यह वस्तु अतीत में थी
भविष्य में होगीह्नयह भी काल के द्वारा ही जाना जाता है, क्योंकि
ीत की वस्तु भी कभी-न-कभी वर्तमान में अवश्य थी और भविष्य की
तु भी कभी-न-कभी वर्तमान में अवश्य रहेगी। हमारे पूज्य गुरुदेव
लूगणी अब अतीत हो गए, पर मेरे से पहले वे वर्तमान थे। उनके
ले हमारे धर्मसंघ के सात आचार्य वर्तमान थे। उनके पहले दूसरे-
रे आचार्य वर्तमान थे और उनके पहले भगवान महावीर वर्तमान थे।
ी प्रकार भविष्य में भी जितने आचार्य होंगे, वे अपने-अपने समय में
मान होंगे। काल को हम नहीं देख सकते, पर वर्तमान में मौजूद उस
क्ति को तो देख सकते हैं।

काल सबको चलाता है। एक-एक क्षण चलाता है। बच्चे को जवान
र जवान को बूढ़ा बना देता है। काल के सिवाय संसार में और कोई
री शक्ति नहीं, जो किसी को जवान या बूढ़ा बना सके। यह वर्तना
इसके द्वारा काल को पहचाना जा सकता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिणाम

परिणाम अर्थात परिणति। हम संसार के पदार्थों में जितनी प्रकार की परिणतियां देखते हैं, वे सब काल के ही कारण हैं। बच जवानी में परिणत हो जाता है। यह काल के द्वारा ही होता है। अ अवस्था तक बालकपन, अमुक अवस्था तक कैशोर्य, अमुक अवस्था त जवानी, अमुक अवस्था तक प्रौढ़ता....ह्नये सब काल की ही विभि परिणतियां हैं।

संसार के हर पदार्थ में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। यह व आवश्यक नहीं कि कजो पदार्थ हमारे काम आते हैं, उन्हीं में परिणति ह बल्कि जो पदार्थ हमारे काम नहीं आते, उनमें भी परिणति होती रह है। उदाहरणार्थह्नकोई कपड़ा अपने बक्से में रख दिया। कुछ वर्षों पश्चात उस कपड़े का रंग बदल गया। वह जीर्ण-शीर्ण हो गया। अ कहेंगे, हमने तो उसे काम में नहीं लिया। तात्पर्य यही है कि काल कारण हर पदार्थ में प्रतिक्षण सहज परिवर्तन होता रहता है।

क्रिया

काल हमारी हर क्रिया में परम सहयोगी। काल के अभाव में अ सभी निमित्त होने के बावजूद वह क्रिया नहीं हो पाती। इसलिए क्रिया समय चाहे कम लगे या अधिक, पर इतना निश्चित है कि लगे अवश्य। इसलिए क्रिया से हम काल को पहचान सकते हैं।

परत्व : अपरत्व

अमुक व्यक्ति बड़ा है और अमुक व्यक्ति छोटा है, यह प जन्मा है और यह बाद में जन्मा हैह्नयह सब काल के कारण ही है। क के अभाव में हम बड़े-छोटे का भेद नहीं जान सकते। इसलिए परत्व अ अपरत्वह्नये दोनों भी काल के लक्षण हैं। इनके द्वारा काल को हम ज सकते हैं।

हमारे धर्मसंघ में स्थान, भोजन आदि की व्यवस्थाएं दीक्षा-पर्याय होती हैं। उदाहरणार्थह्नरात को सोना है। जब प्रश्न सामने आता है सबसे पहले किसके स्थान का निर्धारण हो। हमारे आचार्यों ने व्यवस्था कि दीक्षा में जो सबसे बड़ा है, उसे सबसे पहले स्थान मिलना चाहि उससे छोटे वकझ्ाी उसके बाद, उससे छोटे को उसके बाद, उससे छ कोत्र.....। इस प्रकार दीक्षा-क्रम के अनुसार सबके स्थान का निर्धारण हो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यह दीक्षावस्था में बड़ा-छोटा होना काल का ही लक्षण है।

ंग मेघकुमार का

मेघकुमार का घटना-प्रसंग हम पढ़ते हैं। उसका मन संयम से चलित क्यों हुआ? रात-भर नींद न आने से। उसे रात-भर नींद क्यों ां आई ? उसके सोने का स्थान रास्ते में दरवाजे के बीच था। अतः ते-जाते साधुओं के रजोहरणों और पैरों से उसके शरीर का बार-बार र्श होता रहा, ठोकरें लगती रहीं। मेघकुमार को सोने का स्थान रास्ते दरवाजे के बीच क्यों मिला? दीक्षा-पर्याय में वह सबसे छोटा था। टे को स्थान सबसे बाद में मिलता है। वह छोटा क्यों हुआ? काल के रण।

काल को यद्यपि हम पकड़ नहीं सकते, देख नहीं सकते, तथापि ये व ऐवे लक्षण हैं, जिनसे हम उसे स्पष्ट रूप में जान सकते हैं, उसके स्तित्व को पहचान सकते हैं। हम सब काल को पहचानें और तदनुसार ने जीवन में मोड़ देंह्नयी कल्याण का पथ है।

ाशहर
जुलाई १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१९ : षड्द्रव्यों की स्थिति

छह द्रव्यों के अंतर्गत धर्म, अधर्म, आकाश, काल अ
पुद्गलह्नइन पांच द्रव्यों की व्याख्या संपन्न हो चुकी है। केवल जीव
विवेचन अब अवशेष है। जीव के बारे में हम अलग से फिर चर्चा करें
आज में इस बात पर विचार करना है कि छह द्रव्यों की स्थिति कि
किस रूप में हैह्न

आद्यत्रीणि एकद्रव्याणि अगतिकानि।

आकाशपर्यन्तानि त्रीणि एकद्रव्याणिह्नएकव्यक्तिका
अगनिकानिह्नगतिक्रियाशून्यानि

छह द्रव्यों में प्रथम द्रव्य-धर्म, अधर्म व आकाश एक-एक द्रव्य
त्रिकाल में भी इनके टुकड़े नहीं हो सकते। ये तीनों द्रव्य सर्वथा ग
शून्य हैं।

धर्म, अधर्म और आकाशह्नइन तीनों को छोड़कर शेष त
द्रव्यह्नकाल, जीव और पुद्गल अनेक-अनेक हैं। काल के विभाग ह
सामने हैं। दिन, रात, प्रहर, मास, वर्ष आदि काल के विभाग हैं।

पुद्गल भी अनेक (अनंत) हैं। परमाणु अनंत हैं और पुद्गल-स्
भी अनंत हैं।

जीव अनेक (अनंत) हैं, यह आप सब जानते ही हैं। पर आप
यह भी जानना चाहिए कि प्रत्येक जीव सत्ता रूप में स्वतंत्र है। जीव
तो किसी से पैदा होता है और ही किसी में विलीन होता है। कुछ ल
संसार के जीवों को ईश्वर के विभिन्न रूप मानते हैं। वे ईश्वर
परमपिता मानते हैं और संसार के प्राणियों को उनकी संतानें। ई
पूज्य है, इसलिए पूज्यता के भाव से उन्हें परमपिता कहा जाए, इ
कोई कठिनाई नहीं है। पर पैदा करने के अर्थ में ईश्वर को पिता कह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

-दर्शन के मान्यतानुसार सही नहीं है। जैन-दर्शन के अनुसार जीव को सी ईश्वर या परमात्मा ने पैदा नहीं किया है। वह तो अनादिकाल से यं पैदा हुआ है। इसलिए मैंने कहा कि जीव अनेक हैं और सबकी नी-अपनी स्वतंत्र सत्ता है।

पुद्गल और जीवह्नये दोनों गतिशील द्रव्य हैं। काल चूंकि पचारिक द्रव्य है, इसलिए वह न तो गतिशील है और न ही ातिशील ही।

र्थों की मापक इकाई

छह द्रव्यों के कितने-कितने प्रदेश हैं, अब इस प्रश्न पर हमें विचार ना है।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मलोकाकाशैकजीवानाम्

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीवह्नइन चारों प्रदेश असंख्य-असंख्य होते हैं।

धर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्य कैसे हैं, इस बात को आप ध्यान समझें। यों तो धर्मास्तिकाय, जैसा कि मैंने अभी-अभी बताया, एक य है। उसके टुकड़े नहीं हो सकते। पर यदि हम उसे प्रदेश के माप से तो वह असंख्येयप्रदेशी है। इस बात को आप सक स्थूल उदाहरण समझें। यह पंडाल है। बताया गया है कि यह लगभग पंद्रह हजार फुट का है। पर ये पंद्रह हजार घनफुट अलग-अलग कहां हैं? इस ाल को मापें तो पंद्रह हजार घनफुट हैं, अन्यथा पंडाल तो एक ही है। क यही बात धर्मास्तिकाय के बारे में जाननी चाहिए। धर्मास्तिकाय यों ही है। उसका कोई विभाग नहीं है। पर यदि मापा जाए तो परमाणु तने असंख्य विभाग उसके हो सकते हैं। इस दृष्टि से धर्मास्तिकाय संख्येयप्रदेशी है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश के प्रदेश असंख्य-असंख्य जानने चाहिए।

एक जीव के प्रदेश भी असंख्य हैं। पर यह बात शायद आप लोगों सहजतया समझ में नहीं आज सकती। वास्तव में जीवन में संकोच र विकोच की शक्ति होती है। वह चाहे तो अपने आत्मप्रदेशों को एक ा जितने सूक्ष्म शरीर में संकुचित कर सकता है और चाहे तो इतना कोच कर सकता है कि पूरे लोक में उसके (एक जीव के) आत्म-प्रदेश न सकते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अलोकस्यानन्ताः।

अलोकाकाश अनंतप्रदेशी है। आप कह सकते हैं, यह ब
तर्कसंगत नहीं है। वस्तुतः यह विवेचन दर्शन-जगत की सूक्ष्मता है। इ
तर्क के आधार पर समझने का प्रयास करना अनावश्यक है। क्यों ?
इसलिए कि आप इस बात को यदि तर्क से समझना चाहेंगे तो यह क
समझ में नहीं आएगी, प्रत्युत आप और अधिक उलझ जाएंगे। इसे
श्रद्धा से ही समझना होगा। इसे ही क्यों, ऐसी अनेक बातें श्रद्धा से
समझनी होंगी। पर मेरे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि तर्क सव
हेय है। मैं तर्क का एकांततः विरोधी नहीं हूं। तक-शास्त्र तो मैंने स
पढ़ा है और एक सीमा तक मैं तर्क को उचित भी समझता हूं। पर
जगह तर्क उतिच नहीं। बहुत-सी बातें तर्क से समझी जाती हैं,
कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जो तर्क की सीमा से परे की होती
आकाश इतना बड़ा क्यों है, आकाश में इतने तारे क्यों चमकते हैं, सू
पूर्व में ही क्यों उदित होता है,जैसे सैकड़ों नैसर्गिक बातें हैं, जिन्हें त
से कभी नहीं समझा जा सकता। यदि इन्हें तर्क से समझने का प्रय
किया जाएगा तो सिवाय गुत्थी के और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। ऐ
बातों को तो श्रद्धा से ही समझा जा सकता है। कील लकड़ी में ग
जा सकती है, दीवाल में गाड़ी जा सकता है, फर्श में गाड़ी जा सक
है, पर वज्र में नहीं गाड़ी जा सकती। इसलिए मैं आप लोगों को
सलाह देना चाहता हूं कि दर्शन की इन प्राकृतिक सूक्ष्म बातों
समझने के लिए आप तर्क का नहीं, विश्वास या श्रद्धा का उपयोग क
आप देखें, केवल जैन-दर्शन में नहीं, अपितु सभी दर्शनों में नैसर्गि
नियमों को समझने के लिए तर्क को अनुपयोगी माना गया है।

बंधुओ! श्रद्धा बहुत गहरा तत्त्व है। ये बड़े-बड़े वैज्ञानिक कि
श्रद्धालु होते हैं ! मैं दाद देता हूं इनकी श्रद्धा को। मुझे बहुत ख्याल
जब शुरू-शुरू में वैज्ञानिकों ने चंद्रलोक में जाने की कलपना प्रस्तुत
तो लाखों-लाखों, करोड़ों-करोड़ों लोगों ने उनका मखौल उड़ाया। पर
अपने विचारों के अनुसार आगे बढ़ते रहे। प्रारंभिक विफलताएं उ
निराश नहीं बना सकीं। इस प्रयास में उनकी कई पीढ़ियां खप ग
करोड़ों-अरबों रुपये खर्च हुए। पर अपनी श्रद्धा के बल पर आखि
उन्होंने उस कल्पना को साकार बना दिया। वे मखौल करनेवाले लो
देखते ही रह गए। अब उनके पास कुछ भी कहने को नहीं था।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मैं अपने शैक्ष साधुओं और साध्वियों से कहा करता हूं कि तुम ी ज्यादा तर्क में मत उलझो। तुम्हें जो आदेश, निदेश व अनुशासन ने, उसे श्रद्धा से स्वीकार कर आगे बढ़ते रहो। आदेश, निदेश एवं ुशासन के प्रति यह श्रद्धा तुम्हारे भावी जीवन-निर्माण का प्रमुखतम धार बनेगी। मैं यह बात केवल सिद्धांत के रूप में नहीं, अपितु अपने ुभव के आधार पर कह रहा हूं। मैं स्वयं कड़े अनुशासन में रहा हूं। अनुशासन में मैंने दृढ़ श्रद्धा के साथ अपने चरण बढ़ाए हैं।

तंत्रता सबको प्रिय है

अभी मैंने आपको बताया कि हर जीव की स्वतंत्र सत्ता है। सचमुच स्वतंत्रता बहुत ही प्रिय शब्द है। इससे प्रिय शब्द दूसरा हो नहीं कता। संसार का हर मनुष्य स्वतंत्र रहना चाहता है। मनुष्य ही क्यों, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, और कहना चाहिए कि संसार के सभी छोटे- ट प्राणी अपने-आपको स्वतंत्र रखना चाहते हैं। कोई परतंत्रता नहीं हता। कोई किसी का ताबेदार बनकर रहना पसंद नहीं करता। इसलिए सिद्धांत बन कि कोई किसी को अपना ताबेदार न बनाए। हमारे र्थंकरों ने यहां तक कहा कि यदि तुम किसी को ताबेदार बनाओगे तो हें हिंसा का पाप लगेगा। जब व्यक्ति स्वयं किसी का ताबेदार बनकर ां रहना चाहता, तब उसे क्या अधिकार है कि वह किसी को अपना बेदार बनाए?

इस संदर्भ में इतना अवश्य है कि यदि कोई अपने जीवन-निर्माण दृष्टि से स्वयं को दूसरे के अधीन रखता है तो यह परतंत्रता नहीं शिष्य गुरु से निवेदन करता है कि मैं आपकी आज्ञा में रहना चाहता मेरी सारी इच्छाएं आपकी इच्छा में विलीन करना चाहता हूं, आप अनुशासित करें। इस स्थिति में गुरु का कर्तव्य है कि वे उस पर ुशासन करें। उस पर अपना समय लगाएं। मैं तो यहां तक कहता हूं यदि किसी के सहारे किसी का जीवन निर्मित होता है तो उसे अपना वन झोंक देना चाहिए। लोग कहते हैं कि हम गुरु की हसेवा करते हैं। मैं तो सोचता हूं कि इस माने में तो गुरु ही उनकी सेवा करते हैं। -एक व्यक्ति के जीवन-निर्माण के लिए वे कितना प्रयास और कितने ोग करते हैं! बच्चे कहते हैं कि हम माता-पिता की सेवा करते हैं। पर तो देखता हूं कि बड़ी सेवा तो माता-पिता ही करते हैं। पिता का नाम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तो मैंने यों ही जोड़ दिया। वास्तव में तो माता ही बच्चों की सेवा कर
है। वह जैसी सेवा बच्चों की करती है, वैसी सेवा कोई दूसरा कभी
नहीं सकता। माना, दूसरी जगह बच्चों को दूध मिल सकता है, भो
मिल सकता है, मन-बहलाव के साधन मिल सकते हैं, पर मां
वात्सल्य/निश्छल प्यार कहां से मिलेगा ? वस्तुतः य वात्सल्य/निश्छ
प्यार ही बालक के जीवन-निर्माण का मौलिक आधार है।

सत्संस्कार : जीवन की थाती

आज पश्चिम जगत में यह विचार बड़ी तेजी के साथ फैल रहा
कि बच्चों को मां से कभी जुदा नहीं करना चाहिए। वहां के लोगों को
बहुत स्पष्टतया अनुभव हो रहा है कि बच्चों को माताओं से अल
रखकर हमने भयंकर भूल की है। बच्चों के जीवन में जो मानव
संवेदनशीलता आनी चाहिए, वह इस भूल के परिणामस्वरूप नहीं आ
है। पर आश्चर्य तो यह है कि भारतीय माताएं आजकल बाल-बच्चों
लालन-पालन को बोझ समझने लगी है ! यह पश्चिमी संस्कृति
प्रभाव है। दूसरी-दूसरी संस्कृतियों से अच्छे संस्कारों को ग्रहण कि
जाए, इसका मैं विरोधी नहीं हूं। पर आंखें मींच कर अनुकरण करने
मनोवृत्ति को कदापि उचित नहीं मानता। दूसरों की अच्छी बातों
ग्रहण करने का तात्पर्य यह नहीं कि आज अपने अच्छे संस्कारों
भूल जाएं। आपको अपने मौमिलक सत्संस्कारों को सुरक्षित रखना
सत्संस्कार जीवन की थाती हैं।

गंगाशहर

१ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२० : पुद्गल, धर्म व अधर्म की स्थिति

कल के प्रवचन में आपने जाना कि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काकाश और एक जीव के प्रदेश असंख्य-असंख्य होते हैं। नोकाकाश के प्रदेश अनंत होते हैं। अब हम लागे चलें।

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्।

चकारादनन्ता अपि।

पुद्गल-स्कंधों के बारे में मैं पहले ही बता चुका हूं कि वे द्विप्रदेशी लेकर अनंतप्रदेशी तक होते हैं। इसलिए कहा गया है कि पुद्गल-धों के प्रदेश संख्येय, असंख्येय और अनंत तीनों ही होते हैं।

माणु

पुद्गल के बाद परमाणु का क्रम है। प्रश्न उपस्थित है कि परमाणु प्रदेश कितने हैं।

न परमाणोः।

परमाणोरेकत्वेन निरंशत्वेन च न प्रदेशः।

परमाणु कोई प्रदेश नहीं होता, क्योंकि परमाणु अकेला ही होता है। का कोई भाग नहीं होता। व्यवहार में परमाणु को एकप्रदेशी कह दिया ता है। इसका इतना-सा ही अर्थ है कि परमाणु एक प्रदेश जितना ा है। हम कहते हैं, एक गज कपड़ा। वास्तव में कपड़ा कोई गज नहीं ा। केवल एक गज जितने परिमाणवाले कपड़े को हम एक गज कपड़ा देते हैं।

ा काल सप्रदेशी है

अब में इस प्रश्न पर विचार करना है कि काल के कितने प्रदेश ी हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कालोऽप्रदेशी।

काल का कोई प्रदेश नहीं होता। काल अप्रदेशी द्रव्य है, क्यों
काल का कोई भाग नहीं होता। यहां आपके मन में प्रश्न उभर सकता
कि सेकंड, मिनिट, घंटा, मास, वर्ष आदि के रूप में काल के अं
विभाग जब हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं, तब काल का कोई भाग न
होताहृइस कथन की क्या संगति है। मूलतः ये जो काल के विभाग ि
जाते हैं, वे सारे-के-सारे अवास्तविक काल्पनिक हैं। हमने अपनी सुवि
के लिए कल्पना से इसे अनेक भागों में विभक्त कर लिया है।

देश : प्रदेश

छह द्रव्यों का विवेचन के अंतर्गत स्कंध, देश, प्रदेश अ
परमाणुहृइन चार शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। स्कंध अ
परमाणु को मैं पहले स्पष्ट कर चुका हूं। अब देश और प्रदेशहृइन द
शब्दों को भी समझ लेना चाहिए।

बुद्धिकल्पितो वस्त्वंशो देशः।

वस्तुनोऽपृथग्भूतो बुद्धिकल्पितोंऽशो देश उच्यते।

किसी वस्तु (स्कंध) का बुद्धिकल्पित अंश/विभाग *देश* कहल
है। यों *देश* शब्द राष्ट्र के अर्थ में व्यवहृत होता है, पर हमारे दर्श
जगत में यह शब्द अंश/विभाग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हमारे य
श्रावक को *देशव्रती* कहा गया है। यहां इसका अर्थ यही तो है
आंशिक रूप में व्रतों को स्वीकार करनेवाला। इसी प्रकार अनेक स्थ
पर यह शब्द अंश के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। जैन-दर्शन के अतिरि
दूसरे-दूसरे दर्शनों में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

छह द्रव्यों में काल को छोड़ कर शेष पांच द्रव्यहृधर्म, अध
आकाश, जीव और पुद्‌गल के देश होते हैं।

निरंश प्रदेशः

*निरंशो देशः प्रदेशः कथ्यते। परमाणुपरिमितो वस्तुभ
इत्यर्थः। अविभागी परिच्छेदोऽप्यस्य पर्यायः। पृथग्वस्तुत
परमाणुस्ततो भिन्नः।*

जिसका कोई खंड/विभाग न हो सके, स्कंध के ऐसे सूक्ष्मतम भ
को *प्रदेश* कहा जाता है। प्रदेश परमाणु जितना होता है। एक दृष्टि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श और परमाणु दोनों एक ही हैं। उनमें कोई अंतर नहीं है। पर दूसरी ष्टि से वे दोनों एक नहीं भी हैं, भिन्न-भिन्न भी हैं। स्कंध का क्ष्मतम भाग, जब तक वह स्कंध के साथ जुड़ा हुआ है, प्रदेश हलाता है। पर वही सूक्ष्मतम भाग जब स्कंध से अलग हो जाता है, उसे परमाणु कहा जाता है। दूसरे शब्दों में परमाणु स्वतंत्र पुद्गल ता है, जबकि प्रदेश स्कंध के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसे मैं एक रल उदाहरण से और स्पष्ट करूं। मेरे हाथ में यह एक कपड़ा है। यह कड़ों-हजारों तंतुओं से बना है। हम समझने के लिए कल्पना से प्रत्येक तु को एक प्रदेश मान लें। इस प्रकार इस कपड़े में सैकड़ों-हजारों प्रदेश गए। अब हमने इसका एक तंतु बाहर निकाल लिया। यह तंतु अब श नहीं, परमाणु कहलाएगा। जब तक यह तंतु कपड़े के संलग्न था, तक ही प्रदेश था।

अविभागी परिच्छेद प्रदेश का दूसरा नाम है।

द्रव्यों की अवगाहना

देश और प्रदेश की चर्चा के बाद अब हमारे सामने प्रश्न है कि र्म, अधर्म आकाश, काल, पुद्गल और जीवह्नइन छह द्रव्यों की वगाहना कितनी-कितनी है यानी से कितने-कितने क्षेत्र में व्याप्त हैं सबसे पहले हम धर्मास्तिकाय को ही लें।

कृत्स्नलोकेऽवगाहो धर्माधर्मयोः।

धर्माधर्मास्तिकायौ सम्पूर्ण लोकं व्याप्य तिष्ठतः।

धर्मास्तिकाय क्षेत्र की दृष्टि से पूरे लोग में व्याप्त है। आप पूछ सकते हैं, कि यहां धर्मास्तिकाय है या नहीं। इसका उत्तर नकारात्मक है। आप पूछेंगे कि क्यों इस क्यों का उत्तर आपको *भगवती* सूत्र में प्राप्त हो जाएगा। भगवान महावीर से प्रश्न पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय पूर्व दिशा में है ?' भगवान ने कहाह्न'नहीं।' पुनः पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय पश्चिम दिशा में है ?' भगवान ने उत्तर दियाह्न'नहीं।' फिर पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय उत्तर दिशा में है ?' भगवान ने फिर वही उत्तर दियाह्न'नहीं।' पुनः पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय ऊर्ध्व दिशा में है ?' भगवान ने फिर वही बात कहह्न'नहीं।' पुनः पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय अधो दिशा में है ?' भगवान ने फिर वही उत्तर दियाह्न'नहीं।' पुनः पूछा गयाह्न'भंते ! क्या धर्मास्तिकाय विदिशा में है?'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भगवान का वही पूर्ववत उत्तर था 'नहीं।' पुनः पूछा गयाह्न'भंते ! क
धर्मास्तिकाय अनुदिशा में है ?' भगवान ने फिर पूर्ववत कहाह्न'नहीं।'

आप कहेंगे, एक तरफ तो भगवान बताते हैं कि धर्मास्तिक
लोकपरिमाण है और दूसरी तरफ कहते हैं कि यह पूर्व, पश्चिम, दक्षि
आदि किसी भी दिशा में नहीं है, यह विसंगति क्यों।

आप निश्चित मानें कि भगवान जो कुछ भी कहते हैं, वह यथ
से किंचित भी परे नहीं हो सकता, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। उनकी वाणी
संदेह नहीं किया जा सकता। जो उनकी वाणी में संदेह करता है,
अज्ञानी हैं । अब रही बात धर्मास्तिकाय के संदर्भ में विसंगति की। य
आप थोड़ा गहराई से ध्यान दें तो पाएंगे कि धर्मास्तिकाय के संबंध
भगवान जो कुछ कह रहे हैं, उसमें कोई विसंगति नहीं है। बिलकु
संगति है। केवल आप लोग समझ नहीं पा रहे हैं। कई बार ऐसा हो
है कि तत्त्व बिलकुल सामने होता है, फिर भी लोग उसे पहचान न
पाते। संस्कृति भाषा का एक श्लोक हैह्न

माला स्वयं वरस्थाने, कण्ठे रामस्य सीतया।
मुधा बुधा भ्रमन्त्येव, प्रत्यक्षेपि क्रियापदे।।

आप लोग संभवतः इसे न समझें। संस्कृति जाननेवाले इसे सम
सकेंगे। इस पूरे श्लोक में क्रिया कहां है ? बिलकुल प्रत्यक्ष है। लेकि
श्लोक-रचना इस ढंग से हुई है कि सहजतया विद्यार्थी उसे पकड़ न
पाते और वे उलझ जाते हैं। पर यदि थोड़े गहरे में जाकर देखा ज
है तो वह बहुत साफ नजर आ जाती है।

प्रत्यक्षेपि जिसका अर्थ सहजतयाह्नहोने पर भीह्नयह समझा जाता
वह स्वयं क्रिया है। इसे न समझने के कारण प्रत्यक्ष होने के बावजूद
ध्यान में नहीं आती। ठीक यही बात धर्मास्तिकाय के संबंध में भगव
द्वारा किए गए कथनों के लिए लागू होती है। धर्मास्तिकाय पूरे लोग
व्याप्त है और धर्मास्तिकाय पूर्व, परिश्चम……दिशा में नहीं है,इन दो
कथनों में पूर्ण संगति है। आप जरा गहराई से ध्यान दें, भगवान ज
स्पष्ट कह रहे हैं कि धर्मास्तिकाय पूरे लोक में व्याप्त है, तब के
पूर्व, पश्चिम, उत्तर या अन्य किसी भी एक दिशा में कैसे समाएगी
हां, किसी भी दिशा में, यहां गंगाशहर में या अन्यत्र कहीं (लोक
धर्मास्तिकाय का एक हिस्सा है, यह कहने में कोई कठिनाई नहीं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खंड धर्मास्तिकाय तो मात्र लोकाकाश में व्याप्त है। आपको एक स्थूल
ाहरण दूं। आदमी का शरीर है। मैं पूछता हूं, क्या यह हाथ शरीर है?
र होगाह्ननहीं। क्या पैर शरीर है ? नहीं। तब क्या यह पेट शरीर
नहीं। फिर शरीर क्या है ? शरीर हाथ, पैर, पेट, पीठ आदि सभी
सवों के योग का नाम है। सब शरीर के एक-एक अंग हैं। इनमें से
ई अकेला शरीर नहीं है। जब ये सारे मिलते हैं, तब इस योग को हम
ीर कहते हैं।

वास : ऊनोदरी

किसी ने अन्न खाने का त्याग कर दिया। क्या इसे हम उपवास मान
? नहीं क्यों? यह इसलिए कि वह फल, दूध, आदि नाना प्रकार की
जें खाने के लिए सावकाश है। यह ठीक है कि उसे अन्न खाने का
ग है, पर मात्र अन्न के त्याग को हम उपवास तो नहीं कह सकते।
वास तो तभी होगा, जब खाने-पीने का सर्वथा त्याग किया जाएगा। वैसे
ारी परम्परा में पानी पीकर उपवास किया जाता है, पर वास्तव में चारों
हारह्नअशन, पान, खादिम, स्वादिम का त्याग करने से ही उपवास होता
भगवान महावीर ने जितनी तपस्या की थी, वह सारी-की-सारी बिना
ी के ही की थी। इसलि उपवास आदि में चारों ही प्रकार के आहार
त्याग होना चाहिए। योत जितना त्याग किया जाए, वह अच्छा है। पर
ऊनोदरी में गिना जाता है, उपवास में नहीं।

शन का मूल्य

एक दिन के उपवास से लेकर दो दिन, तीन दिन......यावज्जीवनम
त्याग (संथारा) के लिए हमारे यहां *अनशन* शब्द का प्रयोग हुआ है।
यह *अनशन* आजकल चलनेवाले अनथन से सर्वथा अलग है।
नीतिक लोगों ने अनशन को इतना विकृत रूप दिया है कि यह शब्द
नाम बनता जा रहा है। जहां भी अनशन की बात चलती है, लोग
झते हैं कि जरूर कुछ गड़बड़ है।

वस्तुतः उपवास/अनशन बहुत ऊंचा तत्त्व है। आध्यात्मिक दृष्टि
तो इसका महत्त्व है ही, शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षा से भी यह कम
योगी नहीं है। महीने में यदि दो उपवास होते रहें तो शरीर के पाचन-
को विश्राम मिलता है। दीर्घ काल तक कार्य करने के लिए यह
यावश्यक है। आप देखें, आप की कार भी चलते-चलते विश्राम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मांगती है। यदि उसके इंजन को बीच-बीचमें विश्राम न मिले तो ब
जल्दी बेकार हो जाती है। यही बात हमारे शरीर के यंत्रोंके बारे में
है। स्वास्थ्य-विशेषज्ञ भी इस सिद्धांत का पूर्ण समर्थन करते हैं। आयु
में कहा गया है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दिन में दो बार, म
में दो बार और वर्ष में दो बार जरूरी है। यानी दिन में दो बार उत्स
महीने में दो बार उपवास (लंघन) और वर्ष में दो बार जुलाब(विरेच
बहुत आवश्यक है।

हां, तो मैं आपसे कह रहा था कि वस्तु के एक अंश को उस व
का एक भाग कहा जा सकता है, संपूर्ण वस्तु नहीं। इस दृष्टि
गतिसहायक द्रव्यह्नधर्मास्तिकाय लोक के हर प्रदेश में मौजूद है। पर
संपूर्ण धर्मास्तिकाय नहीं, आंशिक धर्मास्तिकाय है। संपूर्ण धर्मास्तिक
तो पूरे लोक में ही व्याप्त है।

धर्मास्तिकाय की तरह अधर्मास्तिकाय भी क्षेत्र की दृष्टि से लो
परिमाण। संपूर्ण लोकाकाश में अधर्मास्तिकायह्नस्थितिसहायक द्र
व्याप्त है।

एकप्रदेशादिषु विकल्प्यः पुद्गलानाम्

लोकस्यैकप्रदेशादिषु पुद्गलानामवगाो विकल्पनीयः।

पुद्गल क्षेत्र की दृष्टि से लोकाकाश के प्रदेश से लेकर सम
लोकाकाश में व्याप्त है। यानी कुछ पुद्गल लोकाकाश के एक प्रदेश
रहते हैं तो कुछ दो प्रदेशों में, कुछ तीन प्रदेशों में, कुछ चार प्रदेशों
कुछ पांच प्रदेशों में......और कुछ समूचे लोक में। परमाणु के कोई प्र
नहीं होता। वह केवल लोकाकाश के एक प्रदेश में रहता है। पुद्गल
स्कंध द्विप्रदेशी यावत अनंतप्रदेशी होते हैं। ये पुद्गल-स्कंध लोकाक
के एक प्रदेश से लेकर समूचे लोक में समाते हैं। मैंने पहले ही स्प
किया था कि एक प्रदेश एक परमाणु जितना होता है। अब सहज ही
प्रश्न उभरता है कि अनंतप्रदेशी स्कंध लोकाकाश के एक प्रदेश में कै
समाता है यह बात सहज बुद्धिगम्य नहीं है। पर जैसा कि कल मैंने क
था, सब बातें बुद्धि और तर्क से समझ में नहीं आतीं। तर्क और बु
से मात्र वे बातें समझ में आ सकेंगी, जो उनकी सीमा में हैं। बुद्धि अ
तर्क की सीमा से पार की बातों को हमें श्रद्धा और विश्वास के आध
पर जानना चाहिए। अनंतप्रदेशी पुद्गल-स्कंध लोकाकाश के एक प्रदेश

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ने समाता है, इस बात को हम इस आधार पर भी समझ सकते हैं पुद्गल का संकोच और विकोच का स्वभाव है। वह संकुचित हो तो माण जितने लोकाकाश के क्षेत्र में रह सकता है और विस्तार पाए तो ूचे लोक में व्याप्त हो सकता है। उदाहरणार्थह्नआपने कमरे में एक ब जलाया। उसका प्रकाश पूरे कमरे के आकाश में व्याप्त हो गया। । आपने दूसरा बल्ब और जला दिया। उसका प्रकाश भी उस कमरे आकाश में समा गया। इस प्रकार तीन, चार, दस, बीस, ास......बल्ब आपने अपने कमरे में जलाए और सबका प्रकाश उस रे में समा गया। कमरा एक है और बल्ब एक हो या हजार, सबका ाश उसमें समा जाता है। इसी प्रकार लोकाकाश के एक प्रदेश में ांत पुद्गल का स्कंध समा जाता है। आप पूछेंगे कि प्रकाश पुद्गल है ा। आप क्या भूल गए इतनी जल्दी? अभी कुछ ही दिनों पहले मैंने गलों के लक्षणों का वर्णन करते हुए आप लोगों को बताया था कि प्रकार, प्रकाश, उद्योत, छाया......सब पुद्गल के लक्षण हैं और जिसमें लक्षण पाए जाते हैं, वह पुद्गल है। अब आपको इस बात को ोकार करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि अनंत-प्रदेशी स्कंध काकाश के एक प्रदेश में भी समा सकता है।

ाशहर
अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२१ : संसार में जीव की अवस्थिति

कल के प्रवचन में धर्म, अधर्म और पुद्‌गल की अवगाहना के
में आपने सुना। आज हम जीव की अवगाहना पर विचार करेंगे।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम्।

जीवः खलु स्वभावात् लोकस्य अल्पादल्पं असंख्ये प्रदेशात्मकं असंख्ययेतमं भागमवरुध्य तिष्ठति, न पुद्‌गलव एकप्रदेशादिकम्, इति असंख्येयभागादिषु जीवानामवगाहः।

असंख्येयप्रदेशात्मके च लोके परिणातिवैचित्र्यात् प्रदीपप्र पटलवत् अनन्तानामपि जीवपुद्‌गलानां समावेशी न दुर्घटः।

जैन-दर्शन के मान्यतानुसार प्रत्येक जीव कम-से-कम लोकाकाश असंख्येयप्रदेशी असंख्यातवें भाग का अवगाहन करता है। अर्थात ज का अवगाहना लोकाकोश के असंख्येयप्रदेशात्मक असंख्यातवें भाग लेकर लोकाकाश तक है।

जीव संकोचह्नविकोच करता है

वास्तव में जीव शरीरव्यापी है। जिस जीव को बड़ा, छोटा जैसा शरीर मिलता है, वह उसी में व्याप्त होकर रहता है। जो जीव हाथी ज विशाल शरीर में रहता है, वही जीव चींआी या उससे भी बहुत छोटे प्र के शरीर भी रह जाता है। आ पूछेंगे कि क्या जीव छोटे-बड़े होते हैं नह जीवों में छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं होता। सभी जीव असंख्येयप्रदेशात होते हैं। पर जिसको जैसा शरीर मिलता है, वह उसी में व्याप्त हो ज है और यदि चींटी या कुंथुआ का शरीर मिला तो वह उसमें व्याप्त जाता है। शरीर के छोटे-बड़े होने से उसके व्याप्त हो जाता है। शरीर छोटे-बड़े होने से उसके व्याप्त होने में कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि ज का संकोच और विकोच का स्वभाव है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आप इस बात को स्थूल उदाहरण से समझ सकते हैं। एक व्यक्ति पास बहुत विशाल मकान है। उस मकान में दसियों-बीसियों कमरे हैं। ने का कमरा अलग, सोने का कमरा अलग, पढ़ने का कमरा लग·····लेकिन जब वही व्यक्ति बंबई और कलकत्ता-जैसे बड़े शहर में ता है तो एक छोटे-से कमरे में ही रह जाता है। खाना-पीना, सोना, व्ययन आदि उसके सारे कार्य उसी एक कमरे में होने लगते हैं। मैंने ा हैह्लएक-एक छोटे कमरे में परिवार के आठ-आठ, दस-दस सदस्य ते हैं। उनके सभी काम वहीं पर अच्छी तरह से होते हैं। हम साधु लोग हमें कभी बड़ा भवन मिल जाता है तो हम उसमें फैलकर रह जाते हैं र कभी एक-दो झोंपड़े मिलते हैं तो उनमें भी आराम से रह जाते हैं। की संकीर्णता या विशालता हमारे आवश्यक कार्यों में बाधक नहीं ती। इसी प्रकार जीव को भी यदि बड़ा शरीर मिलता है तो वह उसमें प्त हो जाता है और छोटे शरीर मिलता है तो उसमें व्याप्त होकर जाता है। यह संकोच और विकोच के कारण होता है वैसे संकोच और कोच पुद्गल भी करता है, पर पुद्गल की संकोच-विकोच की शक्ति र जीव की संकोच-विकोच में अंतर है। पुद्गल जहां संकुचित होकर काकाश के एक प्रदेश परिमाणवाले क्षेत्र में भी व्याप्त हो सकता है, वहीं व अधिक-से-अधिक लोकाकाश के असंख्येयप्रदेशात्मक असंख्यातवें ग में ही संकुचित हो सकता है। लोकाकाश के एक से लेकर ख्येयप्रदेश तक के क्षेत्र में वह नहीं रह सकता।

पुद्गल के संकोच-विकोच को समझने के लिए मैंने कल प्रकाश उदाहरण दिया था। वह उदाहरण जीव के संकोच-विकाच को समझने लिए भी काम में आ सकता है। दीपक जल रहा है। उस पर आपने ढक्कन रख दिया। परिणामतः उस दीपक का प्रकाश उस ढक्कन के दर-अंदर संकुचित हो गया। आपने ढक्कन हटा लिया और प्रकाश रे कमरे में फैल गया। इसी प्रकार जीव को छोटा शरीर मिलता है तो अपने आत्मप्रदेशों की संकुचित करके रह जाता है और विशाल ीर मिलता है तो आत्मप्रदेशी को फैलाकर रह जाता है।

भ्रमण का हेतु

इस संदर्भ में यह जान लेना भी प्रासंगिता है कि मनुष्य सदा ष्य ही नहीं रहता। इस जन्म में मनुष्य है तो अगले जन्म में वह देव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भी बन सकता है, नारक भी सकता है। पशु-पक्षी या पेड़-पौधा भी सकता है। इसी प्रकार पशु-पक्षी और पेड़-पौधों के जीव भी सदा उ योति में रहेंगे, यह बिलकुल भी जरूरी नहीं है। आज जो पशु है, व वह मनुष्य या पेड़-पौधे का शरीर भी धारण कर सकता है। निष्कर्ष है कि प्रत्येक जीव संसार की विभिन्न योनियों में चक्र लगाता रहता आप पूछेंगे कि जीव को विभिन्न योनियों में कौन भेजता है, न्यायध कौन है। न्यायधीश हैंह्नस्वकृत कर्म। यद्यपि कर्म। यद्यपि कर्म स्वयं जड़ हैं, तथापि उन्हें करनेवाला चेतनाशील है। वह उनमें शक्ति भर दे है, इसलिए वे जड़ होते हुए भी समय पर अपना फल देते हैं। *टाइम* को आप जानते होंगे। वह जड़ है। पर चेतना उसमें शक्ति भर देता और वह ठीक समय पर विस्फोट करता है। यह टेपरिकार्डर आप सामने है। क्या यह जड़ नहीं है ? पर चेतना इसमें आवाज के रूप शक्ति भर देता है। अब जैसे ही इसे चलाया जाता है, यह चेतना तरह आवाज करने लगता है। हां, तो मैं कह रहा था कि कर्म जड़ पर वे चेतन को फल भुगतने में समर्थ हो जाते हैं। इन कर्मों के का जीव विभिन्न योनियों में परिभ्रमण करता हुआ छोटे-बड़े शरीर को ध करता है।

आहारक लब्धि

हमारे शास्त्रों में आहारक लब्धि का वर्णन आया है। लब्धिध साधु उसका कभी-कभी प्रयोग कर लेते हैं। कल्पना करें कि, मुनि बैठे और किसी ने उनसे कोई प्रश्न पूछा। प्रश्न इतना गहरा है कि उस उत्तर उनको आता नहीं। अब मुनि सोचते हैंह्नमेरा यहां इतना सम्मान लोग मुझे बहुत बड़ा ज्ञान मानते हैं,इस स्थिति में यदि मैं प्रश्न का उ नहीं दे सकूंगा तो यह प्रश्नकर्ता मुझे क्या समझेगा। इस प्रतिष्ठा अहंकार को सुरक्षित रखने के लिए वे लब्धिधारी मुनि अपने शरीर एक हाथ का एक पुतला निकालते हैं और उसे केवलज्ञानी के पास भे हैं। उस पुतले में इतनी शक्ति होती है कि वह भी पहाड़ों और मुद्रों पार करता हुआ भी चला जाता है। कहीं रुकता नहीं । सैकड़ों-हज मील की दूरी पारकर वह वहां पहुंचता है, जहां केवलज्ञानी विराजित उनसे उस प्रश्न का जवाब लेकर वह वापस आता है और मुनि के श में प्रवेश कर जाता है। मुनि उसके उत्तर के आधार पर प्रश्नकर्ता समाहित करते हैं। पुतला यह काम इतनी त्वरित गति से और इ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ल्प समय में संपन्न करता है कि प्रश्नकर्ता को यह पता भी नहीं चल ता कि मुनिश्री को इस प्रश्न का उत्तर नहीं आता या उन्होंने इसके र देने में तनिक भी विलंब किया है। उसे तो ऐसा ही महसूस होता है मैंने प्रश्न पूछा और मुनि महाराज ने मेरे प्रश्न का तत्काल समाधान दिया।

कोई पूछ सकता है कि मुनि जब शरीर से पुतला निकालते हैं, तब त्मा कहां रहती है, शरीर में या पुतले में इसका समाधान यह है कि त्मा मुनि के मूल शरीर और पुतले दोनों में ही रहती है। आप कहेंगे पुतला तो मूल शरीर से सैकड़ों-हजारों मी दूर भी हो सकता है, फिर नों में आतमा कैसे। वास्तव में आतमा के प्रदेश उस समय फैल जाते और मूल शरीर से लेकर पुतले तक (चाहे वह कितनी भी दूर न हो) का एक तांता लग जाता है। बीच का एक प्रदेश भी आत्मप्रदेश से त नहीं रहता।

सूत्रों में बताया गया कि तीव्र बीमारी, तीव्र, क्रोध, लब्धि-ोग(समुद्घात) आदि के समय आत्मा शरीर से बाहर निकलती है। कृष्ट रूप में एक आत्मा पूरे लोकाकाश में व्याप्त हो सकती है।

ल की अवगाहना

जीव की अवगाहना को जानने के बाद अब हम काल की गाहना को समझें।

कालः समयक्षेत्रवर्ती।

समयक्षेत्रम्‌ह्नमनुष्यलोकः। तत्रैव सूर्यचन्द्रप्रवर्तितो व्यावहारिकः कालो विद्यते। नैश्चयिकस्तु प्रतिद्रव्यं वर्तते तेन तस्य सर्वव्यापित्वम्।

काल को जैन-दर्शन में केवल समयक्षेत्रवर्ती माना गया है। यक्षेत्र यानी मनुष्यलोक। जंबूद्वीप, धातकीखंड और अर्धपुष्करह्नइन ई द्वीपों तथा लवणोदधि एवं कालोदधिह्नइन दो समुद्रों को मिलाकर ष्यलोक बनता है। समय केवल इस मनुष्यलोक में है। सूर्य और चंद्र रा प्रवर्तित दिन, रात, मास, वर्ष आदि सब मनुष्यलोक में ही होते हैं, योंकि सूर्य और चंद्र दोनों मनुष्यलोक में ही गतिमान होते हैं। ष्यलोग के बाहर वे गतिमान नहीं होते। अतः मनुष्यलोक के बाहर ा कोई काल का विभाग नहीं है। इस अपेक्षा से मनुष्यलोक को

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

समयक्षेत्र कहा गया है।

इस संदर्भ में एक बात और ज्ञातव्य है। काल दो प्रकार हैह्नव्यावहारिक और नैश्चयिक। दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष......व्यावहा काल के भेद हैं। नैश्चयिक काल का अर्थ हैह्नवर्तमान। यहां काल को मनुष्यलोकवर्ती कहा गया है, वह व्यावहारिक काल की अपेक्षा से नैश्चयिक काल तो लोक और अलोक दोनों में सर्वत्र व्याप्त है।

गंगाशहर

३ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२२ : द्रव्य के सामान्य गुण (१)

छह द्रव्यों का विवेचन चल रहा है। गुण और पर्यायों के आश्रम द्रव्य कहा जाता हैह्नयह मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूं। दूसरे शब्दों जिसमें गुण और पर्याय दोनों विद्यमान हों, वह द्रव्य है। सवाल किया सकता है। कि गुण किसे कहते हैं।

सहभावी धर्मो गुणः।

'एगदव्वस्सिआ गुणा' इत्यागमवचनात् गुणो गुणिनमाश्रित्यैव अवतिष्ठते, इति स द्रव्यसहभावी।

द्रव्य के सहभावी धर्म को गुण कहा जाता है। संसार के हर पदार्थ कुछ-न-कुछ अपना धर्म होता है। धर्म शब्द विभिन्न संदर्भों में भिन्न अर्थों में व्यवहृत होता है। प्रस्तुत संदर्भ में वह स्वभाव के अर्थ प्रयुक्त हुआ है।

हभावी धर्म क्या है

धर्म के दो प्रकार हैंह्नसहभावी और परभावी। पदार्थ के निरंतर साथ नेवाले धर्म को सहभावी धर्म तथा कभी-कभी साथ रहनेवाले धर्म को भावी धर्म कहा गया है। सवहभावी धर्म द्रव्य से कभी अलग नहीं हो कता। आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों आगम में इसका समाधान देते हुए कहा ा हैह्न**एकदव्वस्सिआ गुणा।** अर्थात गुण एकमात्र द्रव्य के आश्रित होकर ते हैं। द्रव्य के बिना उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। द्रव्य है तो गुण द्रव्य नहीं तो गुण भी नहीं। उष्णता अग्नि का सहभावी धर्म है। अग्नि ाप्त हो गई तो उष्णता में भी समाप्त हो गई। यह कभी संभव नहीं अग्नि तो समाप्त हो जाए और उसका सहभावी धर्मह्नउष्णता शेष रह ए। इसलिए द्रव्य के सीभावी धर्म का गुण कहा गया है।

आप पूछ सकते हैं कि भूख, प्यास, वासना आदि मनुष्य और पशु सहभावी धर्म हैं या नहीं। यह ठीक है कि ये सब बातें मनुष्य और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पशु के साथ रहती हैं। पर इन्हें हम सहभावी धर्म नहीं कह सक
क्यों? यह इसलिए कि ये निरंतर साथ नहीं रहतीं। भरपेट भोजन क
के बाद भूख कहा शेष रहती है? वासना भी आदमी को सदा न
सताती। प्रसंग उपस्थित होने पर ही वह अपना उन्माद दिखलाती
सहभावी धर्म में 'कभी है' और 'कभी नहीं' की स्थिति नहीं होती।

जीव का स्वभाव

कुछ लोग कह दिया करते हैं कि क्रोध तो जीव का सहज स्वभ
है। पर वास्तव में क्रोध जीव का सहज स्वभाव नहीं है। क्रोध जीव
होता है, इसलिए भाव तो है, पर स्वभाव नहीं है, विकृत भाव या विभ
है। आप कहेंगे कि तब स्वभाव क्या है। जीव का स्वभाव हैह्नचेतन
चेतना के बिना चेतन/जीव नहीं हो सकता। दुःख, सुख में,बुढ़ा
बीमारी आदि जीव की सभी स्थिति में चेतना अनिवार्य रूप में मौ
रहेगी। **गुणो गुणिनं विहाय न तिष्ठति।** अर्थात गुण त्रिकाल में भी गु
को छोड़कर नहीं रह सकता। आप निश्चित मानें, गुण गुणी के सिव
अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। न तिजोरियों में मिल सकता,
भंडारों में मिल सकता और न ही बाजार और दुकानों में मिल सकत
यानी उसके मिलने का एकमात्र स्थान वह गुणी है।

धर्म और धार्मिक

मैं बहुधा कहा करता हूं कि धर्म धार्मिक के जीवन में ही व
करता है। यदि वह धार्मिक के जीवन में नहीं है तो कहीं भी नहीं
परंतु आज कठिनाई यह हो गई कि वह धर्मस्थलों और धर्मशास्त्रों
समा गया है। धार्मिक के जीवन से उसका संबंध कटता-सा चला
रहा है। यह स्थिति धर्म के विकास में सबसे बड़ी बाधा बनी है।
दृढ़ विश्वास है कि धर्म जब तक धार्मिक के जीवन में नहीं आता,
तक वह मानव-समाज का अपेक्षित हित कभी कर सकता।

आप देखें, काला, लाल, पीला, सफेद आदि जितने भी रंग हैं,
सब किसी-न-किसी पदार्थ में मिलते हैं। पदार्थ के बिना उनका कहीं व
अस्तित्व नहीं है। हम मिठास को ही लें। वह कहां है ? क्या वह बि
पदार्थ कहीं मिलती है ? नहीं, ऐसा कभी भी नहीं होता। मिठास होगी
गुड़, चीनी, मिश्री, दूध....में ही होगी। केवल मिठास कभी नहीं
सकती। द्रव्य का आधार उसको अवश्य चाहिए। हां, यह दूसरी बात

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

द्रव्य के रस, रंग आदि में कालांतर में परिवर्तन आ जाए। जो वस्तु ज मीठी लगती है, वह कुछ दिनों पश्चात खट्टी या कड़वी भी हो कती है। इसी प्रकार आज जो कपड़ा सफेद दिखाई देता है, वह कुछ नों पश्चात पीला या काला भी हो सकता है। पर इस परिवर्तन के वजूद वह द्रव्य तो रहेगा ही।

ा के प्रकार

सामान्यो विशेषश्च।

द्रव्येषु समानतया परिणतः सामान्यः।

व्यक्तिभेदेन परिणतो विशेषः।

गुण के दो प्रकार हैंह्न१. सामान्य २. विशेष।

सभी द्रव्ययों में समान रूप से पाया जानेवाला सहभावी धर्म मान्य गुण कहलाता है। एक-द्रव्य में पाया जानेवाला सहभावी धर्म शेष गुण कहलाता है। उदाहरणार्थह्नसंसार के जितने मनुष्य हैं, सब में ष्यता सामान्य गुण है। पर किसी व्यक्ति का विवेक कम जाग्रत होता और किसी का अधिक। कोई बहुत सहिष्णु होता है, तो किसीन में नशक्ति बहुत कम होती है। ये विशेष गुण हैं।

मान्य गुण के प्रकार

अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-प्रदेशवत्त्व-अगुरुलघुत्वादिः मान्यः।

विद्यमानताह्नअसितत्वम्।,

अर्थक्रियाकारित्वम्ह्नवस्तुत्वम्।

गुणपर्यायाधारत्वम्ह्नद्रव्यत्वम्।

प्रामणविषयताह्नप्रमेयत्वम्।

अवयवपरिमाणताह्नप्रदेशवत्त्वम्।

स्वस्वरूपाविचलनत्वम्ह्नअगुरुलघुत्वम्।

द्रव्य के सामान्य गुण के छह प्रकार हैंह्न१. अस्तित्व २. वस्तुत्व द्रव्यत्व ४. प्रमेयत्व ५. प्रदेशवत्त्व ६. अगुरुलघुत्व।

स्तित्व

हर द्रव्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। द्रव्य त्रिकाल में कभी नष्ट

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नहीं हो सकता। यह त्रैकालिक अस्तित्व जिस गुण के कारण होता वह अस्तित्व कहलाता है।

हमें यह तथ्य गहराई से समझ लेना चाहिए कि कोई पदार्थ हम दृष्टि से अलबत्ता ओझल तो हो सकता है, पर उसका अस्तित्व कभी न नहीं हो सकता। आप कहेंगे, यह बात तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखते हैं कि आदमी देखते-देखते मर जाता है। यह ठीक है आदमी मरता है और ऐसा लगता है कि वह समाप्त हो गया है। पर वास में ऐसा कुछ भी नहीं होता। मौत के पश्चात भी आत्मा का अस्तित्व ज्य का-त्यों विद्यमान रहहा है। केवल वह अपना घर या स्थान का परिव कर लेती है। आप स्थूल उदाहरण से समझें। आपके गंगाशहर के सैकड़ हजारों आदमी यहां से बार बंगाल, बिहार, आसाम आदि प्रांतों में च गए। वहां जाने से उनके मकान बदल गए, फिर भी उनका अस्तित्व विद्यमान है ही। ठीक यही बात मृत्यु के समय होती है। आत्मा एक श छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है। इस शरीर-परिवर्तन का न ही मृत्यु है। वस्तुतः आत्मा अमर है। जो अमर है, उसकी मौती कैस इस संदर्भ में इतना और समझ लें कि आत्मा अमर है, इसका तात्वर्य नहीं कि पुद्गल नाशवान हैं। पुद्गल भी अमर हैं। आत्मा कभी पैदा न होती तो पुद्गल भी कभी पैदा नहीं होते। केवल उनके पर्यायों में परिव होता रहता है। पर पर्याय-परिवर्तन तो आत्मा में भी होता है इसलि अ इस भ्रांति में न रहें कि पुद्गल नाशवान हैं और आत्मा अमर है।

आप पूछ सकते हैं कि जब आत्मा भी अमर है और पुद् (शरीर) भी अमर हैं, तब मौत किसकी होती है, नष्ट कौन होता नष्ट वही होता, जो पैदा हुआ है। जीव और शरीर दोनों ही पैदा न होते। पैदा होता है मात्र जीव और पुद्गल (शरीर) का संयोग। तात्वि दृष्टि से जीव और पुद्गल के संयोग का नाम ही जन्म है। जब संयोग नष्ट हो जाता है तो उसी हम मौत कह देते हैं। अब आप सामने यह स्पष्ट है कि मौत के समय आत्मा और शरीर दोनों ही न नहीं होते। नष्ट केवल दोनों का संयोग होता है। वियोग तभी है, ज संयोग है। संयोग नहीं तो वियोग कभी नहीं। जब आत्मा और पुद् दोनों ही शाश्वत हैं, तब भी मृत्यु के समय लोग रोते हैं, यह आश्चर्य है! आत्मा यहां से छूटकर स्थूल शरीर के रूप में दूसरे पुद्ग का ग्रहण कर लेती है और छोड़े हुए पुद्गल (स्थूल शरीर) दूसरे-दू

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र्यियों में परिवर्तित हो जाते हैं। फिर यह रोना, धोना किसके लिए? कोई नी माता को रोता है, कोई पिता को, कोई भाई को, कोई......। पर यथार्थ तो यह है कि सब अपने-अपने स्वार्थ जुड़े होते हैं। जब कोई क्ति चला जाता है तो अनेक व्यक्तियों के स्वार्थ उसके साथ चले ते हैं, इसलिए वे उसके पीछे आंसू बहाते हैं।

धार्मिक व्यक्ति की एक बड़ी पहचान है कि वह किसी की मौत पर ी रोता नहीं। सभी स्थितियों में वह अपने-आपको संभाल कर रखता मरे देखते-देखते मेरे हृदय-सम्राट, आराध्यदेव, पूज्य गुरुदेव लूगणी चले गए। आज भी वह दृश्य मेरी आंखों की पुतलियों में ज्यों--त्यों नाच रहा है। सूर्यास्त से थोड़ा पहले का समय। मैं हाथ में दवा पुड़िया लिए खड़ा हूं। पर वे अनशन कर लेते हैं और कुछ ही देर में सदा-सदा के लिए छोड़ कर चले जाते हैं। एक क्षण के लिए मुझे समय गहरा धक्का लगता है। मेरे लिए पूज्य गुरुदेव से बढ़कर ार में और कोई था? उनसे मैंने ज्ञान पाया, चिंतन पाया, पथ-दर्शन ा और जीवन पाया। निश्चय ही ऐसी स्थिति में गुरुदेव का एकाएक छोड़कर चले जाना आघातकारी था, फिर भी मैंने अपने-आपको ालकर रखा। उसके परिणामस्वरूप मेरी आंखें जरा भी गीली नहीं । मैंने सोचाहृसंयोग के साथ वियोग और जन्म के साथ मौत जुड़ी है। कोई भी व्यक्ति इसका अपवाद नहीं हो सकता। तब दुःख करना र्थ है। बंधुओ! सामान्य प्राणियों की तो हम बात ही छोड़ें, तीर्थंकर वान को भी एक दिन इस शरीर को छोड़कर जाना होता है। ऐसी यति में हम किस-किस की मौत पर आंसू बहाएं?

तुत्व

जिस गुण के कारण द्रव्य कोई-न-कोई अर्थक्रिया अनिवार्यरूप से , वह गुण वस्तुत्व कहलाता है। आप इस बात को सिद्धांत रूप में झ लें कि संसार में हर पदार्थ कुछ-न-कुछ क्रिया अवश्य करता है। द क्रिया नहीं है तो वह पदार्थ भी नहीं है। यह अलग बात है कि सी पदार्थ की क्रिया हमें दृष्टिगोचर होती है और किसी की नहीं भी ी। भले दृष्टिगोचर हो या न हो, पदार्थ होगा तो क्रिया होगी ही। ई भी पदार्थ इसका अपवाद नहीं हो सकता।

मेरे मन में बहुत बार यह प्रश्न उभरता है कि जब संसार का

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रत्येक प्राणी/पदार्थ क्रिया करता है तो मनुष्य निष्क्रिय क्यों रहता
आ देखें, ये जरा-जरा-सी चींटियां भी दिन भर सक्रिय रहती हैं।
मिल-जुलकर अपना घर बनाती हैं,खाद्य-पदार्थों का संग्रह करती हैं।
जाता है कि कोई चींटी काम किए बिना नहीं रह सकती। यदि एक-
चींटियां चाहें कि हम कार्य नहीं करेंगी तो उनहें दूसरी चींटियां तत्क
मार देती हैं, जीवित नहीं रहने देतीं। कथन का आशय यह है कि द्र
के साथ क्रिया अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।

द्रव्य

अपने जिस गुण के कारण द्रव्य सदा नए-नए पर्यायों को धा
करता है, वह सामान्य गुण द्रव्यत्व कहलाता है। दूसरे शब्दों में हम
सकते हैं कि द्रव्यत्व द्रव्य में होनेवाले परिणमन का एकमात्र आधार
यदि द्रव्यत्व न हो तो द्रव्य, द्रव्य नहीं हो सकता। यह ठीक वैसे ही
जैसे मनुष्यत्व के बिना कोई मनुष्य नहीं होता, साधुत्व के बिना
साधु नहीं होता।

प्रमेयत्व

किसी द्रव्य को हम ज्ञान के द्वारा जानते हैं, पर ज्ञान से त
जानते हैं, जब वह द्रव्य है। यदि वह द्रव्य है ही नहीं तो ज्ञान उसे
जानेगा? द्रव्य के जिस गुण के कारण हम ज्ञान के द्वारा किसी पदार्थ
जानते हैं, वह गुण प्रमेयत्व कहलाता है। वैसे हम किसी द्रव्य को ज
या न जानें, यह एक अलग बात है, क्योंकि हमारा ज्ञान सीमित है,
ज्ञान में वह शक्ति होती है कि वह हर द्रव्य को जान लेता है।

लोग कहते हैं कि भगवान आत्मा को देखते हैं। भगवान आतमा
देखते हैं। पर इसके समानांतर ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि आ
तो अरूप/अमूर्त है, फिर भगवान क्या देखते हैं। भगवान किसी भी प
को उसी अवस्था में देखते हैं, जिस अवस्था में वह है। यदि वह अ
और अवर्ण है तो उसे अमूर्त और अवर्ण देखते हैं। इसके विपरीत यदि
मूर्त और स्वर्ण है तो उसे मूर्त और स्वर्ण देखते हैं। वास्तव में भग
का ज्ञान सर्वथा अनावृत होता है। जहां ज्ञान अनावृत होता है, वहां
और अमूर्त, अवर्ण और सवर्ण सब द्रव्यों को सहजतया जाना होता

द्रव्य के प्रमेयत्व गुण के कारण ही प्रमाता द्रव्य को जानता है

गंगाशहर, ४ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२३ : द्रव्य के सामान्य गुण (२)

द्रव्य के सामान्य गुणों का प्रतिपादन चल रहा है। कल के प्रवचन अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व और प्रमेयत्व-इन चार सामान्य गुणों की र्चा संपन्न हो चुकी है। आज मैं शेष दो सामान्य गुणह्नप्रदेशवत्त्व और गुरुलघुत्व की चर्चा करूंगा।

शवत्त्व

द्रव्य के जिस गुण के कारण उसके प्रदेशों को मापा जा सके, उस ा का नाम प्रदेशवत्त्व है। प्रदेश का अर्थ, जैसा कि मैं पहले भी कई र स्पष्ट कर चुका हूं, अवयव/भाग/खंड है। हम जानते हैं कि द्रव्य प्रदेशी, द्विप्रदेशी……संख्येयप्रदेशी, असंख्येयप्रदेशी और अनंतप्रदेशी क होते हैं। द्रव्य के इन प्रदेशों को तभी मापा जा सकता है, जब द्रव्य ऐसा कोई गुण हो, जो मापने में कारण बने। यदि ऐसा कोई गुण य में न हो तो उन प्रदेशों को नहीं मापा जा सकता।

गुरुलघुत्व

द्रव्य के लिस सामान्य गुण के कारण द्रव्य अपने अस्तित्वह्नस्वरूप अवस्थित रहता है, वह गुण अगुरुलघुत्व कहलाता है। यदि वह गुण य में न हो तो उसके गुण बिखर कर अलग-अलग हो सकते हैं। गुरु अर्थ हैह्नभारीह्नवजनदार। लघु काक अर्थ हैह्नहलका। हम देखते हैं, छ पदार्थ भारी होते हैं और कुछ हलके। पत्थर भारी होता है तो सिर केश बिलकुल हलके होते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से रूपी द्रव्य एक-रे से हलका और भारी होते हैं। अगुरुलघुत्व द्रव्य का एक ऐसा धर्म जिसके कारण कोई भी द्रव्य हलके से भारी नहीं होता और भारी से का नहीं होता। अर्थात जिसका जो स्वरूप है, वह उसी स्वरूप में ता है। वह अपने अस्तित्व को छोड़कर दूसरे के अस्तित्व का नहीं ीकार करता। आ देखें, हम पुद्गल भी हैं और आत्मा भी। अनंतकाल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से पुद्गल और आत्मा का संबंध चला आ रहा है। पर पुद्गल क आत्मा नहीं बनते और आत्मा कभी पुद्गल नहीं बनती। धर्म और अ दोनों साथ-साथ रहते हैं, फिर भी त्रिकाल में धर्म अधर्म नहीं बनता अ अधर्म धर्म नहीं बनता, क्योंकि द्रव्य में एक ऐसा गुण है, जो उन्हें अ सीमा को छोड़कर दूसरे की सीमा में जाने से बराबर रोके रखता है

हम व्यवहार में देखते हैं कि विभिन्न संप्रदायों के लोग साथ-स रहते हैं, पर रहते हैं अपने-अपने संप्रदाय में ही। अपना संप्रदाय छोड़ दूसरे संप्रदाय में नहीं जाते और तब तक नहीं जाते, जब तक उन विश्वास अपने संप्रदाय के सिद्धांतों में बना है। यह विश्वास एक ऐ गुण है, जो लोगों को अपने संप्रदाय को छोड़कर दूसरे संप्रदाय में ज से रोके रखता है। जिस दिन किसी व्यक्ति का यह विश्वास समाप्त जाता है, उस दिन वह अपना संप्रदाय छोड़कर दूसरे संप्रदाय में भी सकता है।

प्रसंग आचार्य भिक्षु का

आचार्य भिक्षु के पास कुछ दिगंबर भाई आए और उन्ह कहाह्न'आपके विचार बहुत क्रांतिकारी हैं। आपका आचार निर्मल आपकी प्रतिभा विलक्षण है। आपकी तार्किक शक्ति अपराजेय है। प्र का तत्काल उत्तर देने की आपकी हकला का तो कहना ही क्या! य आप एक बात हमारी मान लें तो हम सब आपके अनुयायी बन जाए आचार्य भिक्षु प्रश्नाचित नयनों से मुखर हुएह्न'क्या?' समागत दिग भाइयों ने कहाह्नअपना अभिप्राय स्पष्ट कहते हुए 'आप कपड़े रखते यह उचित नहीं है। अतः आप कपड़े रखना छोड़कर दिगंबरत्व स्वीक कर लें।' उनकी बात सुनकर आचार्य भिक्षु तनिक भी उत्तेजित नहीं हु उन्होंने उन्हें अत्यंत मधुर उत्तर दियाह्न'भाइयो! मैंने धन छोड़ा, मक छोड़ा, परिवार छोड़ा और सारा संसार छोड़ा। ऐसी स्थिति में क छोड़ने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर एक कठिनाई है कि मैंने श्वेतां शास्त्रों के आधार पर दीक्षा अंगीकार की है। उन शास्त्रों पर मेरा विश्वास है। उनमें साधु के लिए निर्दिष्ट परिमाणयुक्त कपड़ा रखने विधान है। इसिलए मैं वस्त्र रखता हूं। अलबत्ता जिस दिन श्वेतां शास्त्रों से मेरा विश्वास हट जायेगा और दिगंबर शास्त्रों में विश्वास जाएगा, उस दिन मैं कपड़े रखने का तनिक भी आग्रह न करता हु

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

काल दिगंबर बन जाऊंगा।'

बन्धुओ! यह विश्वास एक ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति को बांधे ता है। हम देखते हैं कि एक घर में दसियों-बीसियों व्यक्ति रहते हैं। का दूसरे-दूसरे परिवार और समाज के लोगों के साथ संपर्क होता ता है। इसके बावजूद कोई व्यक्ति अपने घर या परिवार छोड़कर दूसरे या परिवार में नहीं जात, क्योंकि घर या परिवार सदस्य परस्पर ह के मजबूत धागे से बंधे होते हैं। जब तक यह स्नेह का धागा नहीं ता, तब तक कोई भी घर या परिवार का सदस्य अपना घर या वार छोड़कर दूसरे के साथ संबद्ध रनहीं हो पाता। पति-पत्नी का ंध उम्र-भर क्यों बना रहता? कारण स्पष्ट हे। दोनों प्रगाढ़ स्नेह सूत्र बंधे हुए होते हैं।

ना-अपना अस्तित्व

यही बात द्रव्य के संबंध में है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की सत्ता ीकार नहीं करता, क्योंकि अगुरुलघुत्व उसका एक ऐसा गुण है, जो ा अपनी सीमा में बांधे रखता है, दूसरे की सत्ता को स्वीकार करने से बर रोकता रहता है। आप गौर से देखें, जैन सिद्धांत यह कहता है, ों-नहीं सिद्धांत यह कहता है कि कोई द्रव्य कभी अपनी सत्ता को ड़कर दूसरे द्रव्य की सत्ता को स्वीकार नहीं करता।

सिद्धशिला में सिद्धत्माएं रहती हैं। संसारी आत्माओं की भी वहां ई कमी नहीं है। अलबत्ता स्थूल शरीरवाले प्राणी वहां नहीं हैं।, पर न्म शरीरवाले प्राणी तो वहां भरे पड़े हैं। इसके साथ ही बादर युकाय के जीव भी वहां अटे पड़े हैं। और वे जीव इस प्रकार भरे हुए जैसे काजल की कोठरी में काजल। मैं आपको यहां यह बताना हता हूं कि वहां न तो कोई संसारी आत्मा कभी अपने अस्तित्व को ड़कर सिद्धात्मा की सत्ता को स्वीकार करती हैं और न ही कोई सिद्ध त्मा संसारी आत्मा के अस्तित्व को।

हम आत्मा की बात छोड़ें। लोक में एकप्रदेशी (परमाणु), द्विप्रदेशी, देशी⋯⋯संख्येयप्रदेशी, असंख्येयप्रदेशी, अनंतप्रदेशी पुद्‌गल भरे पड़े पर त्रिकाल में भी नह कोई पुद्‌गल जीव बनता है और न ही कोई व पुद्‌गल । दोनों ही अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखते हैं। एक-रे की सत्ता को स्वीकार नहीं करते।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हमारी आत्मा (संसारी आत्मा) कर्मों से संबद्ध है। कर्म पुद्‌गल इसके बावजूद कर्म त्रिकाल में कभी आत्मा नहीं बनते और आत्मा क पुद्‌गल नहीं बनती। अलबत्ता प्रभावित एक-दूसरे को कर सकते हैं। यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। आप लोक-व्यवहार को ही देखें। क कोई पड़ोसी अपने पड़ोसी पर प्रभाव नहीं डालता है? कया एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता है? क्या राष्ट्र प्रभावित नहीं हो है ? यहां समझने की बात यह है कि प्रभव डालने या या प्रभावित ह काक अर्थ अपनी सत्ता छोड़कर दूसरे सत्ता स्वीकार करना नहीं है। क पुद्‌गल हमारी आत्मा को प्रभावित करते हैं और आत्मा कर्म-पुद्‌ हमारी आत्मा प्रभावित करते हैं और आत्मा कर्म-पुद्‌गलों को प्रभावि करती है। इसके बावजूद वे हर स्थिति में अपने-अपने अस्तित्व में रहते हैं। द्रव्य का जो गुण अपने अस्तित्व को बनाए रखता है, व हैह्नअगुरुलघुत्व। मैं इस बात को भिन्न-भिन्न प्रकार से और बार-ब बता रहा हूं, इसका उद्देश्य इतना-सा ही है कि मुझे सरलता या तत्त्व हृदयंगम करवाना है।

आत्मा पुरुषार्थ क्यों करे

कुछ लोगों (सांख्य मतावलंबियों) की ऐसी मान्यता है कि आ शुद्ध स्वरूप में ही रहती है। उसके कर्मों का बंधन नहीं होता वि आत्मा को बौर बांधता है? इसका समाधान वे यह देते हैं कि विश् आत्मा से प्रकृति का संबंध होता है। (कर्म को वे प्रकृति के रूप स्वीकार करते हैं) प्रकृति का कोई बंधन नहीं होता। सांख्य मतावलंबि के अतिरिक्त कुछ जैनों की भी ऐसी मान्यता है। पर हमारे अनुभव यह बात सही नहीं है। यदि कर्मों के ही कर्मों का बंधन है, आत्मा कर्म का बंधन नहीं है तो आत्मा कर्मों को काटने के प्रयास ही क करें? कर्मों को ही उन्हें काटने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। पर प्रत्यक्ष देखते हैं कि कर्म कभी कर्मों को काटने के लिए पुरुषार्थ न करते। त्याग, तप, ध्यान, स्वाध्याय आदि के द्वारा ही होता है। अ व्यापारी हैं। आपसे मैं पूछना चाहता हूं, कर्ज कौन चुकाता है। कर्ज व चुकाता है, जो कर्जदार है। जिसके कर्ज है ही नहीं, उसके कर्ज चुक की बात बेमानी है। जब यह कहा जाता है कि आत्मा के कर्मों का बं होता ही नहीं तो फिर आत्मा उन्हें काटने का प्रयत्न किय न्याय से क पर आत्मा कर्मों को तोड़ने का प्रयत्न करती है। इससे यह बात सव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यथार्थ साबित होती है कि आत्मा के कर्मों का बंधन नहीं होता।

ंध और बंधन

मैं उनसे (सांख्य मतावलम्बियों से) एक बात और पूछना चाहता कि आत्मा कर्मों से जुड़ी है या नहीं? वे कहेंगे कि जुड़ी है। जब त्मा कर्मों के साथ जुड़ी है तो यही बंधन है। बंधन का अर्थ दोनों का रूप होना नहीं, संबंध होना है। बहिन भाई के हाथ पर राखी बांधती क्या राखी से भाई-बहिन एक साथ जुड़ जाते हैं ? नहीं जुड़ते। पर स्पर का संबंध हो जाता है। यह संबंध ही रक्षा का बंधन हो जाता यही बात यहां समझने की है। सांख्य मतावलंबी भी कहते हैं कि ति के साथ आत्मा का बंधन नहीं, केवल संबंध होता है। मैं नहीं झता, यदि प्रकृति और आत्मा का बंधन नहीं होता तो फिर संबंध ने, और जब संबंध ही नहीं तो फिर उसे तोड़ने का प्रयास क्यों।

इन सब बातों से आत्म के कर्म-पुद्‌गलों का बंधन न बिलकुल ष्ट दिखाई पड़ता है। पर कठिनाई यह है कि मताग्रह के कारण यथार्थ समझकर भी व्यक्ति उसे स्वीकार नहीं कर पाता। व्यक्ति को यह लकुल साफ अनुभव होता है कि मैं गलती पर हूं, फिर भी मताग्रह के रण वह अयथार्थ छोड़कर यथार्थ तत्त्व स्वीकार करने में हिचकिचाता है र गलत तत्त्व से चिपका रहता है।

द्ध अध्यात्म

कल ही मेरे सामने सैकड़ों की संख्या में युवक बैठे थे। मैंने उनके व सामायिक की चर्चा की। सामायिक में **सावज्जं जोगं पच्चक्खामि** ी सावद्य (सपाप) प्रवृत्ति का त्याग किया जाता है। निरवद्यह्नपापरहित र्मिक प्रवृत्ति का उसमें कोई त्याग नहीं होता। दिल खोलकर कोई भी वद्य प्रवृत्ति की जा सकती है। आप पूछ सकते हैंह्नसामायिक में ाजी को नमस्कार करना या नहीं। नहीं करना, क्योंकि यह वहारिक नमस्कार है, आध्यात्मिक नमस्कार नहीं। आपका अगला न हो सकता है कि सामायिक में खाना-पीना आदि करना या नहीं। ं करना, क्योंकि यह सब सावद्य है। यह भी पूछा जा सकता है कि मायिक में संतों को दान देना या नहीं अवश्य देना चाहिए, क्योंकि यह वद्य प्रवृत्ति है। इस प्रकार की पचासों-सैकड़ों बातें पूछी जा सकती उन सबका एक ही जवाब हैह्नजो प्रवृत्त सावद्य है, वह नहीं की जा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सकती और जो प्रवृत्ति निरवद्य है, उसे करने में कोई कठिनाई नहीं।

एक व्यक्ति सामायिक करके बैठा है। उसके सामने कोई ब ऊपर से नीचे गिर रहा है। अब कोई सवाल कर सकता है कि उस बच्चे को बचा सकता है या नहीं। इसका उत्तर नकारात्मक क्यों? यह इसलिए कि यह प्रवृत्ति सावद्य है। पर यह केवल जैनधर्म ही बात नहीं है, अपितु प्रायः सभी धर्मों में शुद्ध अध्यात्म की भूमिका लगभग ऐसा ही विधान प्राप्त है। मुलसमान लोग नमाज पढ़ते हैं। नम पढ़ते समय यदि कोई मुसलमान भाई या बच्चा उसके सामने गिर है तो विधानानुसार वह उसे बचाने के लिए बीच में नहीं उठ सक क्योंकि नमाज पढ़ने के समय वह बच्चा है ही नहीं।

आप देखें, मूर्तिपूजक साधु-साध्वियां और सामायिक में मूर्तिपू श्रावक भी मूर्ति की पूजा नहीं कर सकते। ये सब बातें हैं, जिन्हें श अध्यात्म की भूमिका में ही समझा जा सकता है। जो लोग इस भूमि में नहीं हैं, उन्हें ये बातें ठीक से समझ में नहीं आ सकतीं। पर कि की समझ में आए या न आए, तत्त्व तो तत्त्व ही है। मैं तो ऐसा मान हूं कि यदि व्यक्ति अपना दुराग्रह या मताग्रह छोड़कर इनहें समझे समझ में आने में बहुत कठिनाई नहीं होती। पर मुश्किल यह है कि ल अपनी पकड़ नहीं छोड़ते। और जहां पकड़ होती है, वहां आद वास्तविक को जानकर भी उसे स्वीकार नहीं कर पाता। हां, तो मैं रहा था कि आत्मा के कर्मों का बंधन बिलकुल स्पष्टतया समझ में सकता है। पर वैचारिक, आग्रह के कारण लोग इस सत्य को अस्वीक करने का निष्फल प्रयास करते हैं।

एक विदेशी श्रावक

आत्मा के कर्म-बंधन के संबंध में एक प्रश्न यह भी पूछा सकता है कि आत्मा अरूप है और कर्म-पुद्‌गल रूपवान हैं। ऐसी स्थि में प्रारंभ में अरूप आत्मा और रूपवान कर्म-पुद्‌गलों का परस्पर सं कैसे हुआ। यह प्रश्न मेरे सामने सबसे पहले आज से लगभग चाल वर्ष पूर्व आया था। इससे पहले न तो कभी मेरे सामने यह प्र उपस्थित ही हुआ और न मैंने कभी इस पर चिंतन ही किया। एक की बात यह है कि यह प्रश्न किसी तेरापंथी, जैन या भारतीय विद्वान द्वारा नहीं, अपितु एक अंग्रेज विद्वान द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न थाह्नडॉ. हर्बर्ट वारन। जैन-दर्शन के वे एक प्रकांड पंडित थे। पर रे धर्मसंघ से उनका कोई संपर्क नहीं था और न ही उनके बारे में कोई जानकारी थी।

अभी नहीं उठूंगा

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर डॉ. एफ. ल्यू. थोम्स के माध्यम से उनके बारे में हमें सर्वप्रथम जानकारी ली। डॉ. थॉम्स भी गजब के आदमी थे ! ज्ञानप्राप्ति की उनकी तड़प रतीय विद्वानों के लिए अनुकरणीय है। जैन-दर्शन के अध्ययन के लिए भारत आये थे। हमारे बारे में उन्हें जानकारी मिली तो वे बीदासर में से मिलने आए। राजस्थान की भयंकर गर्मी और उसमें भी लू और भरी आंधियां। एक ठंडे मुल्क में रहनेवाले व्यक्ति वके लिए इन स्थितियों में रहना कितना कठिन होता है ! पर जैसाकि मैंने बताया, नप्राप्ति की उनके दिल में इतनी गहरी तड़प थी कि ऊपर की इन टी-मोटी कठिनाइयों की उन्हें कोई परवाह नहीं थी। मुझे बहुत याद जब बीदासर से प्रस्थान कर हम पार्श्ववर्ती छोटे-से गांव बेनाथा में तो वे वहां भी आए। घंटों-घंटों उन्होंने वहां जैन-दर्शन पर बहुत न्म और गहरी चर्चा की। श्रावक दानचंदजी चोपड़ा उस समय वहीं थे। होंने एक तंबू में उनके ठहरने की व्यवस्था की। अचानक सामने से धी आने लगी। दानचंदजी ने कहाह्न'साहब ! आपको यहां से उठना ा, क्योंकि आंधी आ रही है।' डॉ. थोम्स ने कहाह्न'नहीं, मैं अभी नहीं गा। मुझे काम कर दें, मेरा दिमाग अभी काम कर रहा है। यदि तंबू ता है तो आप लोग इसे पकड़ कर रखें।' इस एक उदाहरण से आप झ सकते हैं कि उनके मन में ज्ञानप्राप्ति की कितनी गहरी तड़प थी, ं के प्रति कितनी थी।

हां, तो डॉ. थोम्स के साथ लंबी चर्चा के बीच हमें डॉ. वारन की नकारी प्राप्त हुई। श्रावक शुभकरण दसानी ने पत्रों के माध्यम से उनसे र्क स्थापित किया संपर्क से ज्ञात हुआ कि डॉ. वारन का जैन-दर्शन ंधी ज्ञान अत्यंत ठोस है। यह जानकर तो आश्चर्य भी हुआ कि डॉ. न एक पक्के जैन श्रावक हैं और उसमें भी बारहव्रती श्रावक हैं। मायिक, पौषध आदि सभी जैन उपासनाएं वे विधिवत करते हैं। पर प्रश्न हुआ कि ग्यारह व्रतों का तो वे पालन करते हैं, लेकिन बारहवें

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

व्रत का पालन कैसे संभव है इस व्रत का पालन तो साधु को दान से ही हो सकता है और इंग्लैंड में साधु हैं नहीं। जब उनको इस सं में पूछा गया तो उन्होंने लिखाह्न'मैं जब भोजन करने बैठता हूं, तब प मिनिट तक पहले यह भावना करता हूंह्नसाधुजी महाराज! आइए पधारि मेरा भोजन ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिए। इस प्रकार भावना करने बाद मैं भोजन ग्रहण करता हूं।' मुझे उनके इस उत्तर से बड़ा सं हुआ। साधु भिक्षा के लिए आएं या न आएं, पर श्रावक भोजन करने पूर्व इस प्रकार भावना करेह्नयह प्राचीन पद्धति है।

डॉ. वारन ने पत्रों के माध्यम से मेरे सामने जैन तत्त्वज्ञान संब अनेक प्रश्न प्रस्तुत किए। उन प्रश्नों की लंबी श्रृंखला में उन्होंने अ आत्मा के साथ मूर्त कर्मों के संबंध का भी प्रश्न किया था। प्र उपस्थित होने पर मैंने इस पर चिंतन किया।

आप पूछेंगे कि इस प्रश्न का आपने क्या समाधान किया। समाधान दियाह्न'आकाश अमूर्त है, फिर भी उसमें सभी मूर्त पदार्थ र हैं। ठीक इसी तरह अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्म-पुद्‌गलों के सं को जाना जा सकता है।'

हालांकि हमने यह उत्तर दे तो दिया, हमें स्वयं भी इससे संतोष न था। हमने इस प्रश्न के समाधान के संदर्भ में डॉ. वारन के स्वयं के चिं को जानना चाहा। हमारी भावना उन तक पहुंची। उन्होंने अपना चिं प्रस्तुत करते हुए बतायाह्न'हम आतमा को अमूर्त कहते हैं' पर वह अ है कहां? वह तो अनादिकाल से पुद्‌गलों के आश्रित होकरक ही रह है। पुद्‌गलों का आश्रय या संबंध उसे एक अपेक्षा से पुद्‌गल बना दे है, मूर्त बना देता हे। और यह मूर्त ही मूर्त का संग्राहक होता है। वैसे शु स्वरूप में आत्मा अमूर्त है। उस अवस्था में आत्मा मूर्त का ग्रहण न करती। यह स्वरूप उसे मुक्तावस्था में प्राप्त होता है। यही कारण है मुक्त आत्मा (सिद्ध) पर कभी कोई कर्म-पुद्‌गलों का संबंध होता है

अगुरुलघुत्व की विवेचना करते-करते मैं और भी कई बातें गया। यद्यपि ये बातें विषय से सीधी संबद्ध तो नहीं है, तथापि ज्ञात बातों को भी प्रसंग अपने पर बतलाना अत्यंत आवश्यक है, जिससे अ लोगों को विभिन्न विषयों की जानकारी हो सके।

गंगाशहर, ५ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२४ : द्रव्य के विशेष गुण (१)

द्रव्य के सामान्य गुणों का विवेचन मैं पिछले दिनां अपहने प्रवचन कर चुका हूं। आज के प्रवचन में मैं उसके विशेष गुणों की चर्चा ‍ंगा।

गतिस्थित्यवगाहवर्तनाहेतुत्व-स्पर्शरसगन्धवर्ण-ज्ञानदर्शन-सुखवीर्य-नत्वाचेतनत्व-मूर्त्तत्याऽमूर्त्तत्वादिर्विशेषः।

गत्यादिषु चतुर्षु हेतुत्वशब्दो योजनीयः।

एतेषु च प्रत्येकं जीवपुद्गलयोः षड्गुणाः, अन्येषां च त्रयो गुणाः।

स्पर्शःह्नकर्कशमृदुगुरुलघुशीतोस्निग्धरूक्षभेदादष्टधा।

रसःह्नतिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदात् पञ्चविधः।

गन्धो द्विविधःह्नसुगन्धो दुर्गन्धिश्च।

वर्णःह्नकृष्णनीलरक्तपीतशुक्लभेदात् पञ्चधा।

द्रव्य का वह गुण, जो सभी द्रव्यों में समान रूप से प्राप्त नहीं ा, विशेष गुण कहलाता है। विशेष गुण सोलह हैंह्न१. गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्वा ३. अवगाहेतुत्व ४. वर्तनाहेतुत्व ५. स्पर्श ६. रस गन्ध ८. वर्ण ९. ज्ञान १०. दर्शन ११. सुख १२ वीर्य १३ चेतनत्व अचेतनत्व १५. मूर्त्तत्व १६. अमूर्त्तत्व।

तिहेतुत्व

जीव और पुद्गल की गति में जो अवश्यंभावी निमित्त बनता है, द्रव्य धर्मास्तिकाय है। इसके अभाव में कोई भी गतिक्रिया नहीं हो कती। यह गतिहेतुत्व धर्मास्तिकाय का विशेष गुण है। धर्मास्तिकाय के तिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में यह गुण प्राप्त नहीं हे। यद्यपि जीव और गल की गति में और भी अनेक कारणों का योग होता है, तथापि भूत निमित्त कारण धर्मास्तिकाय ही है। दाहरणार्थह्नयह कपड़ा हिल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रहा है। इस हिलने की गत्यात्मक प्रवृत्ति में हवा भी कारण है। और
अनेक कारण हो सकते हैं। पर मूलभूत कारण धर्मास्तिकाय ही हैं
धर्मास्तिकाय का सहयोग न हो तो उपादान और निमित्तह्नदोनों कार
की मौजूदगी के बावजूद कपड़ा कभी हिल नहीं सकता। इस
गतिहेतुत्व धर्मास्तिकाय विशेष गुण है।

स्थितिहुतत्व

जी और पुद्‌गल के स्थिर रहने में जो द्रव्य अवश्यंभावी हेतुभू
निमित्त बनता है, वह अधर्मास्तिकाय है। यह स्थितिहेतुत्व अधर्मास्ति
का विशेष गुण हे। गति की तरह यों तो स्थिति में भी दूसरे-दूसरे अ
कारणों का योग होता है, पर मूलभूत निमित्त कारण अधर्मास्तिकाय ही
अधर्मास्तिकाय के अभाव में दूसरे-दूसरे सारे कारण उपस्थित होने
उपरांत भी जीव या पुद्‌गल कभी स्थित नहीं रह सकता। मैं यहां
हूं। इसमें यह पट्ट भी कारण है। और भी कारण हो सकते हैं। पर
सबसे ऊपर हैह्नअधर्मास्तिकाय। उसके सहयोग के बिना में कि
स्थिति में यहां नहीं बैठ सकता। इसी प्रकार कोई जीव या पुद्
अधर्मास्तिकाय के अभाव में लोक में कहीं स्थित नहीं रह सक
इसलिए स्थितिहेतुत्व को अर्धर्मास्तिकाय का विशेष गुण माना गया है

अवगाहहेतुत्व

जीव और पुद्‌गल को अवगाह/आश्रय/स्थान देना आकाश
विशेष गुण है। आकाश के अतिरिक्त और किसी भी द्रव्य में यह
अप्राप्त है।

वर्तनाहेतुत्व

वर्तनाहेतुत्व काल का विशेष गुण है। हमारी जितनी भी प्रवृत्ति
चलती हैं या हम जितनी भी क्रियाएं करते हैं, उनमें काल हेतुभूत
यदि काल न हो तो कोई क्रिया नहीं हो सकती। कोई वस्तु नई से पुर
बनती है, आदमी बच्चे से जवान बनता है और जवान से बूढ़ा ब
हैह्नयह सब काल के कारण ही है यदि काल वर्तन न करे तो काई ज
न हो, कोई बूढ़ा न हो। न कोई वस्तु नई हो और न कोई पुरानी। क
के सिवाय वर्तन का गुण किसी अन्य द्रव्य में प्राप्त नहीं होती।

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण

स्पर्श, रस, गंध और वर्णह्नये चार पुद्‌गल के विशेष गुण हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निगध और रूक्षह्न ये आठ
ार के स्पर्श हैं।

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल और मधुरह्नये पांच रस हैं।

सुगंध और दुर्गंधह्नइन दो रूवसें में गंध को जाना जाता है।

कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेतह्नये पांच वर्ण के प्रकार हैं।

ये सारी बातें पुद्गल के सिवाय किसी अन्य द्रव्य में प्राप्त नहीं हो
ततीं।

न : दर्शन : सुख : वीर्य

ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यह्नये चारों बातें जीव में प्राप्त होती हैं
व के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में इनकी प्राप्ति नहीं है। अजीव में
शक्ति होती है और वह बहुत बड़े-बड़े काम भी करता है, पर उसमें
न नहीं, दर्शन नहीं, सुख की अनुभूति नहीं और सहज शक्ति नहीं।

ज्ञान और दर्शन को आप समझते हैं। सुख से भी आप परिचित
पर यहां जिस सुख की बात कही गई है, वह आत्मानंद है। जीवन
यह विशेष गुण है। हर आत्मा में किसी-न-किसी रूप में आत्मानंद/
खानुभूति अवश्य रहती है। शुद्धि आत्मा एकांत सुखमय होताी हे। सुख
तरह दुःख की अनुभूति भी सांसारिक आत्मा करती है। पर यह
त्मा/जीव का स्वभाव नहीं हे। आत्मा अपने मूल स्वरूप में किसी
ार के दुःख का वेदन नहीं करती।

वीर्य सहज शक्ति का नाम है। हर जीव में अनंत शक्ति सहज रूप
रहती है। आप कहेंगे, हमें तो अपनी अनंत शक्ति की अनुभूति नही
ती। हां, ठीक है आपकी बात। आपको यह अनुभूति नहीं हो सकती,
ोंकि आज वह शक्ति आवृत है, दबी हुई है, पूर्ण रूप से प्रकट नहीं
उसका आंशिक रूप ही प्रकट हो पाया है। जिस दिन उसके आवरण
हो जायेंगे। वह स्वयं प्रकट हो जाएगीं यह तयाग-तपस्या उसको
ावृत करने का ही उपक्रम है।

ाशहर
अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२५ : द्रव्य के विशेष गुण (२)

द्रव्य के सोलह विशेष गुण माने गए हैं। उन सोलह विशेष गुणों
बारह विशेष गुणों का संक्षिप्त विवेचन कल मैं कर चुका हूं।
चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्त्तत्व और अमूर्त्तत्पवह्न इन चार विशेष गुणों
बारे में आज कुछ बताना चाहता हूं।

चेतनत्व

द्रव्य के जिस विशेष गुण के कारण जीव चेतनायुक्त होता है,
विशेष गुणो चेतनत्व कहलाता है। जीव के सिवाय अन्य किसी कभी द्र
में यह विशेष गुण नहीं है।

अचेतनत्व

द्रव्य के जिस विशेष गुण के कारण धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिक
आकाशात्किाय, काल और पुद्गलास्तिकाय अचेतन हैं, वह विशेष
अचेतनत्व है। जीव में यह गुण अप्रास है।

मूर्त्तत्व द्रव्य के जिस विशेष गुण के कारण पुद्गल हमारी इंद्रियों
विषय बनते हैं, वह विशेष गुण मुर्त्तत्व के नपाम से पहचाना जाता
पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर शेष पांचों द्रव्योंह्नधर्मास्तिक
अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और जीवास्तिकाय में यह
नहीं होता।

अमूर्त्तत्व

द्रव्य के जिस विशेष गुण के कारण पुद्गल के अतिरक्त शेष प
द्रव्य हमारी इंद्रियों के विषय नहीं बनते, यह विशेष गुण अमूर्त्तत्व है

किस द्रव्य में कितने विशेष गुण

द्रव्य छह हैं और उनके विशेषस गुण सोलह हैं। कोई पूछ सक
है कि किस-किस द्रव्य में कौन-कौन से विशेष गुण प्राप्त होते हैं ज

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र पुद्गल में छह-छह विशेष गुण प्राप्त होते हैं। शेष द्रव्यों में तीन-न विशेष गुण होते हैं।

धर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तव्यह्नये तीन शेष गुण होते हैं।

अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्वह्नइन तीन शेष गुणों की प्राप्ति है।

आकाशस्तिकाय में अवगाहहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्वह्नये तीन शेष गुण पाए जाते हैं।

काल में वर्तनाहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्वह्नइन तीन विशेष णों की अवस्थिति है।

पुद्गलास्तिकाय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अचेतनत्व एवं मूर्त्तत्वह्नइन ह विशेष गुणों से युक्त होता है।

ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व और अमूर्त्तत्वह्नये छह विशेष गुण वास्तिकाय की पहचान के अनन्य हेतु हैं।

ाशहर
अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२६ : पर्याय : लक्षण व प्रकार (१)

द्रव्य के सामान्य और विशेष गुणों की चर्चा करने के पश्चात अ
मैं पर्याय के संबंध में आपको कुछ बताऊंगा।

पूर्वेत्तराकारपरित्यागादानं पर्यायः।

'लक्खणं पज्जावाणं तु, उभओ अस्सिया भवे' इत्याग
वचनात द्रव्यगुणयोर्यः पूर्वाकारस्य परित्यागः, उपराकारस्य
आदानं स पर्यायः।

जीवस्य नरत्वामरत्वादिभिः पुद्गलस्य स्कन्धत्वादि
धर्मास्तिकायादीनाञ्च संयोगविभागादिभिर्द्रव्यस्य पर्याया बोध्याः।

ज्ञानदर्शनादीनां परिवर्तनादेर्वर्णादीनां च नवपुराणतादेर्गुण
पर्याया ज्ञेयाः।

पूर्वोत्तराकोराणामानन्त्यात् पर्याया अपि अनन्ता एव।

हम देखते हैं कि प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन होता है। आप
आज हैं ऐसे दस वर्ष पूर्व नहीं थे और दस वर्ष बाद ऐसे नहीं रहेंगे।
शामियाने सामने लगे हुए हैं। क्या से प्रारम्भ में ऐसे ही थे ? नहीं,
नहीं थ। शुरू में इनका जो रंग था, इनकी जो मजबूत थी, वह आज
है। चातुर्मास की समाप्ति तक इनमा रूप और भी अधिक परिवर्तित
जाएगा। आप ध्यान दें, आप, आपको परिवार, आपके कपड़ों में, आ
व्यवहार आपके विचारों में........ कितना-कितना परिवर्तन आया है।
परिवर्तन शाश्वत सिद्धांत है। जिसमें यह परिवर्तन नहीं, वह द्रव्य न
द्रव्य है तो परिवर्तन अवश्यंभावी है। परिवर्तन के बिना वस्तु
अस्तित्व ही समाप्त हो जाता हे। उदाहरण के रूप में देखेंह्नआपने
को जमाया और वह दी बन गया। पर दही बनने से दूध नष्ट नहीं हु
केवल उसका रूप परिवर्तित हो गया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाय क्या है

हमारे यहां बहुत-से-भाई-बहिनों को सभी विगयों या कुछ विगय ने का त्याग होता है। दस प्रत्याख्यान के अन्तर्गत भी एक दिन बी' का होता है। यह मूलतः *'निव्विगई'* शब्द है। इसका अपभ्रांश -होते 'निबी' रूप बन गया है। *निव्विगई'* का अर्थ है-विगयरहित। विगय-वर्जन करनेवाले भाई-बहिनों को यदि पूछूं कि विगय क्या होती तो वे कहेंगे कि दूध, घी, तेल, चीनी और मिठाईह्नये छह विगय होती इनको नहीं खाना चाहिए। विगय छह होती हैंह्नयह तो ठीक है, पर ाय शब्द का अर्थ क्या है, यह वे नहीं जानते। विगय का अर्थ विकृत। गाय को आपने घास खिलाई। उसका विकार हैह्नदूध। दूध को कृत किया और दही बन गया। दही को विकृत किया, तब मक्खन, घी दि प्राप्त हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि विगय आपके प्रतिदिन योग में आनेवाले चीज है। आप उसे जानते भी हैं। पर परिभाषा ने इतना जटिल बना दिया है कि सहसा किसी को विगय का अर्थ जाये तो वह नहीं बता पाता ।

पर्याय शब्द की भी लगभग ऐसी ही स्थिति। यद्यपि आप सब ीय को अच्छी तरह जानते हैं, हरदम उससे होकर गुजरते हैं, तथापि से परिचित नहीं हैं। पूर्व अवस्था के परित्याग और उत्तर (नई) स्था की प्राप्ति को पर्याय कहा जाता है। पर पूर्वावस्था का परित्याग र नई अवस्था की प्राप्तिह्नये दोनों स्थितियां अलग-अलग नहीं होतीं। अवस्था का त्याग अर्थात नहीं अवस्था की और नई अवस्था की प्ति और नई की प्राप्ति यानी पूर्वावस्था का परित्याग। यह एक श्वत चक्र है। इसलिए इन दोनों को अलग-अलग देखने की बात ानी है। एक शब्द में पर्याय का अर्थ हैह्नपरिवर्तन। जैसा कि मैंने ाया, द्रव्य में सदैव परिवर्तन अवश्यंभावी है। ऐसा कोई द्रव्य नहीं, समें परिवर्तन न हो।

र्याय : एक दृष्टांत

आचार्य भिक्षु ने *तेरह-द्वार* में पर्याय को समझाने के लिए एक ल उदाहरण दिया हैह्नकिसी व्यक्ति के पास सोना है। उसने वह सोना सी सुनार को देकर गले का सूत बनवा लिया। थोड़े दिन पश्चात के मन में सूत पहनने की अनिच्छा हो गई। उसने उसकी अंगूठियां

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बनवा लीं। कुछ दिनों पश्चात अंगूठियां पहनने से भी उसके मन
अरुचि हो गई। तब उसने वे अंगूठियां सुनार को देकर वापस से
बनवा लिया। तात्पर्य यह है कि सोने की विभिन्न अवस्थाओं
परिवर्तन उसके विभिन्न पर्याय हैं।

जीवन में कितने पर्याय हैं

आप पूछ सकते हैं कि हमारी जिंदगी में कितने पर्याय होते
जीवन में स्थूल पर्याय तो बहुत कम हैं, पर सूक्ष्म प्रतिक्षण हैं, अनंत
यह मात्र हमारी जिंदगी की बात नहीं, अपितु प्रत्येक द्रव्य की स्थिति
उसमें प्रतिक्षण सूक्ष्म परिवर्तन होता ही रहता है।

सचमुच मैं बदल गया हूं!

कुछ लोग मुझे कहते हैं कि आप स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) से ब
बदल गए हैं। मैं उनकी बात को बिलकुल भी अन्यथा नहीं लेता। सच
मैं बदल गया हूं और प्रतिक्षण बदल रहा हूं। मैं ही क्यों, आप भी
प्रतिक्षण बदल रहे हैं और सदा बदलते रहेंगे। यह परिवर्तन कोई बुरा
है, अपितु कहना चाहिए कि द्रव्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

बदलते पर्याय : वस्तुओं की उपयोगिता

व्यवहार से कहा जाता है कि अमुक वस्तु पुरानी हो गई।
तात्विक दृष्टि से उसका इतना-सा ही अर्थ है कि उस वस्तु का पर
परिवर्तित हो गया है। आप जिस कूड़े-करकट को बेकार समझते
उसका बहुत बड़ा उपयोग है। उसके बड़े-बड़े ढेरों की बिक्री होती
उससे बहुत बढ़िया कागज तैयार होता है। और तो क्या, जिस मल-
को सर्वथा हेय और अनुपयोगी समझा जाता है, पर्याय-परिवर्तित होने
उसकी छोटी-सी-अच्छी खाद बनती है। लोग उससे लाखों-करोड़ों रु
कमाते हैं। सारांश यह हे कि पर्याय-परिवर्तन के कारण जो पदार्थ ह
लिए बेकार और अनुपयोगी हो जाता है, वही पुनः भिन्न पर्यायों में ह
लिए उपयोगी हो सकता है। इस तत्त्व को समझाने के लिए *ज्ञातृधर्म*
में एक सुंदर कथा मिलती है।

तत्त्व समझ में आ गया

राजा और मंत्री घूमते-घूमते शहर के बाहर चले आए। वहां पास
ही एक गंदा नाला बर रहा था। उसके बदबू से राजा का दम घु
लगा। उसने नाक सिकोड़कर उस पर कपड़ा लगा लिया। मंत्री जैन

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

च्छा तत्त्वज्ञ था। वह शांत भाव से चलता रहा। राजा से रहा नहीं ा। उसने मंत्री को संबोधित करते हुए कहाह्न'नाले से इतनी बदबू आ है और तुम यों ही चल रहे हो। नाक के आगे कपड़ा लगा लेते।' ो ने सहजभाव से कहाह्न'महाराज ! यह तो पुद्‌गलों का स्वभाव है।' ा ने जरा झुंझलाते हुए पूछाह्न'तुम बहुधा कहते रहते हो कि यह गल का स्वभाव है, यह पुद्‌गलों का स्वभाव है।······क्या है यह गलों का स्वभाव? मंत्री ने उसी शांति भाव से कहाह्न'महाराज! जो ी आपको आज गंदा एवं दुर्गंधमय लगता है, वही कल स्वच्छ और ंधमय बन सकता है। इसीके समानांतर जो पानी आज निर्मल एवं ंधयुक्त है, वह कल गंदा और दुर्गन्धयुक्त है, वह कल गंदा और न्धयुक्त हो सकता है।' राजा ने व्यंग्य कियाह्न'तब तो इस नाले का ी भी पीने के योग्य बन सकता है!' मंत्री ने आत्मविश्वास के स्वर में हाह्न'हां महाराज ! अवश्य बन सकता है।' राजा ने कहाह्न'यह त्रिकाल भी संभव नहीं है। मेरे अनुभव में तो गंदा, गंदा ही रहता है और च्छा, अच्छा ही। गंदा कभी अच्छा नहीं होता और अच्छा कभी गंदा ां बनता। सुगंधयुक्त कभी दुर्गंधयुक्त नहीं बनता और दुर्गंधयुक्त ी सुगंधयुक्त नहीं होता।'

मंत्री ने राजा से विवाद करना उचित नहीं समझा। अतः इस बात उसने वहीं समाप्त कर दिया। पर मन-ही-मन सोचा कि जब तक मैं नी बात सिद्ध न कर दूं, इस गंदे नाले का पानी राजा को न पिला तब तक मैं जैन कहलाने का वास्तविक अधिकारी नहीं।

राजा और मंत्री दूसरे-दूसरे विषयोंपर बात करते राजमहल लौट ए।

दूसरे दिन मंत्री ने उसी गंदे नाले का पानी घर मंगवाया। शोधन-क्रियाओं द्वारा उसका विधिवत शोधन शुरू किया। जब वह पूर्ण धित/स्वच्छ हो गया, तब कुछ सुगंधित द्रव्य मिला कर उसे महल ले आया। चूंकि इस सारे कार्य को संपादित करने में उसे कई लग गए, इसलिए जब तक राजा के दिमाग से गंदे नाले के पानी बात निकल चुकी थी।

अवसर देखकर मंत्री ने एक गिलास पानी राजा को पिलाया। पानी ी ही राजा की तबीयत प्रसन्न हो गई। एक गिलास के बाद दूसरा लास पीकर भी उसकी रसना तृप्त नहीं हुई। उसने मंत्री से कहाह्न'यह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पानी तो बड़ा मधुर और सुगंधित है। ऐसा पानी तो मैं अपनी जिंदगी पहली बार ही पिया है। किस कुंए से यह पानी मंगवाया गया है? अ से मेरे पीने के लिए उसी कुंए का पानी प्रतिदिन आना चाहिए।' म अपनी हंसी रोकते हुए कहाह्न'महाराज! यह तो पुद्‌गलों का स्वभाव है

'यह तो पुद्‌गलों का स्वभाव है।'ह्नइस शब्दावली को सुनते राजा को गंदे नाले के पानी की बात याद हो आई। वह एक झल्लाया। फिर व्यंग्यात्मक हंसी हंसते हुए बोलाह्न''अभी तक भूले न पुद्‌गलों के स्वभाव की बात को ! उस गंदे नाले के पानी का क्या हु ?' मंत्री ने करबद्ध निवेदन कियाह्न'महाराज ! यह उसी गंदे नाले पानी है।'

राजा को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहाह्नमैं तुम्हारे कहने मात्र यह बात नहीं मान सकता। तुम्हें मेरी आंखों के सामने सब-कुछ क दिखलाना होगा।'

मंत्री ने उसी दिन उस गंदे नाले का पानी फिर मंगवाया। र केसामने ही उसके शोधन की प्रक्रिया शुरू की। कुछ ही दिनों में प बिलकुल स्वच्छ हो गया। तब उसमें कुछ सुगंधित द्रव्य मिश्रित कर म ने उसे राजा को पिलाया। पानी पीते ही राजा को तत्त्व समझ में गया। उसने मंत्री के तत्त्व-ज्ञान की सराहना करते हुए पर्याप्त-परिवर्तन सिद्धांत को स्वीकार कर लिया।

बंधुओ! आप तत्त्व समझ गए होंगे। हम जो कुछ परिवर्तन दे हैं, नया या पुराना देखते हैं, नष्ट हुआ या पैदा हुआ देखते हैं, वह अ कुछ नहीं,मात्र द्रव्यों के पर्यायों का परिवर्तन है। न कोई द्रव्य कभी न होता है और न कोई पैदा होता है। केवल विभिन्न रूपों में उस परिणाम होता रहता है। उसकी एक अवस्था नष्ट होती है और दूसरी अवस्था को ग्रहण कर लेता है पूर्व अवस्था को छोड़ना और अवस्था को ग्रहण करनाह्नयह क्रम सदैव चलता रहता है।

छेड़छाड़ जरूरी है

लोग दर्शन की इन बातों को केवल पंडितों के लिए समझते हैं मैं जीवन में हर क्षण काम आनेवाली और प्रतिक्षण अनुभव होनेवाली बातों को पंडितों को ही नहीं, अपितु जनसाधरण को भी बताना चाह हुं, समझाना चाहता हूं इसीलिए दर्शन के इन तत्त्वों का परिषद

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चन करता हूं। पर इस संदर्भ में एक बात समझने की हैह्नसुनने मात्र आप बहुत अधिक लाभान्वित नहीं हो पाएंगे। आप सुनने के साथ-थ इन सब बातों पर स्वयं गहराई से चिंतन करें इनका अनुभव करें र जहां कोई बात न समझ में आए, वहां तर्क व जिज्ञासा उपस्थित । तत्त्व को सही रूप में समझने की यही प्रक्रिया है।

प्रवचन सू पूर्व मेरे उपपात में शैक्ष साध्वियां बैठी थीं। मैंने उनसे हाह्न'तुम लोग अ अध्ययन करती हो। तुम्हें पढ़ाया जाता है। किंतु तुम रों द्वारा पढ़ाए गए पर ही संतोष मत किया करो, अपितु अपना ाग और चिंतन भी उसके साथ लगाया करो। जो कुछ पढ़ा-पढ़ाया ता है, उसकी तह कि पहुंचने की कोशिश किया करो। तभी तुम्हारा न विकसित हो सकेगा; उसमें नए-नए उन्मेष आ सकंगे। सांप तब फन नहीं करता, जब तक उसकी छेड़-छाड़ नहीं की जाती। अग्नि जब तक इधर-उधर नहीं किया जाता, वह प्रज्वलित नहीं होती। ठीक स्थिति मस्तिष्क की है। जब तक तुम मस्तिष्क को कुरेदोगी नहीं, तक कुवल पढ़ी-पढ़ाई बातों से तलस्पर्शी ज्ञान नहीं हो सकेगा।'

धम्मो मंगल मुक्किटठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंस्सति, जस्स धम्मे सया गणे।।

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की इस प्रथम गाथा को तुत करते हुए मैंने कहाह्न'भगवान महावीर ने धर्म के तीन प्रकार बताए अहिंसा, संयम औ तप। तुम बताओ कि क्या अहिंसा संयम के र्गत नहीं है? क्या बिना संयम के भी अहिंसा होती है? यदि अहिंसा म के अंतर्गत है तो फिर अहिंसा और संयम-इन दो शब्दों का प्रयोग ों, जबकि हम मानते हैं कि तीर्थंकरों की वाणी में एक शब्द भी र्थक या निष्प्रयोजन नहीं होता? साध्वियां अपने-अपने ढंग से ाधान खोजने लगीं। मैंने उनसे कहाह्न'तुम इस बात की चिंता मत ो कि तुम्हारा समाधान सही है या गलत। पर तुम इस विषय पर राई से सोचो, अपनी बौद्धिक शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग करो।'

सभी साध्वियों ने अपना-अपना समाधान प्रस्तुत किया। उन्हें ने के पश्चात मैंने समाधान दियाह्न'हमें सबसे पहले यह सोचना हिए कि संयम कहां होता है हमारी सैद्धांतिक मान्यता के अनुसार थे गुणस्थान (अविरतसमयग्दृष्टि) तक सर्वथा संयम नहीं होता। पर म न होने के बावजूद चौथे गुणस्थान तक के प्राणी सत्प्रवृत्ति कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सकते हैं। सत्य का आचरण कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन सकते हैं।……अहिंसा इन सब सत्प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि शब्द है। बात से हमें समझना चाहिए कि संयम में अहिंसा अनिवार्य रूप से है, पर अहिंसा में संयम अनिवार्यता की नहीं। बिना संयम भी अहिंसा सकती है। जो लोग संयमी नहीं हैं, वे भी अहिंसारूप धर्म का पालन सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि बनने का मार्ग

कुछ लोगों की मान्यता है कि मिथ्यादृष्टि धर्म कर ही नहीं सकत उसकी अच्छी या बुरी सभी प्रकार की प्रवृत्तियां असत अर्थात अधर्म भवभ्रमण को बढ़ानेवाली हैं। ऐसी स्थिति में मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि बनेगा? यह तो ठीक है कि अभवी कभी भवी नहीं बनता। पर मिथ्याद सम्यग्दृष्टि बनता है। यदि मिथ्यादृष्टि ककी प्रवृत्तिमात्र को अधर्म लिया जाएगा तो इसका अर्थ यह होगा कि मित्यादृष्टि और अभवी एक ही हो गए। उनमें कोई अंतर नहीं रहा। यदि हम मिथ्यादृष्टि की मु मानते हैं तो यह निश्चित है कि वह कभी-न-कभी सम्यग्दृष्टि बनता इस स्थिति में क्या यह माना जाए कि वह असत्प्रवृत्ति यानी अधर्म सम्यग्दृष्टि बनता है? यह त्रिकाल में भी संभव नहीं है। मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि बनने का एकमात्र मार्ग सत्प्रवृत्ति अर्थात धर्म है।

तत्त्व यह है कि संयम सम्यक्त्व के बिन नहीं होता। जब तक व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है, जब तक चाहे वह कितना भी त्याग-प्रत्याख्य क्यों न करे, वह सैद्धांतिक दृष्टि से संयम नहीं कहलाएगा। पर त्याग-प्रत्याख्यान को धर्म मानने में कोई अड़चन नहीं है; संसार से की ओर गतिशील बनानेवाला सहयोगी तत्त्व मानने में कोई कठिनाई है। कोई मिथ्यादृष्टि अब्रह्मचर्य, असतय और चोरी करने का परित्य करता है। हम उसे त्याग दिलवाते हैं। ऐसी स्थिति में मैं पूछना चाह हूं, त्याग-भवभ्रमण करके क्या वह अधर्म कर रहा है? क्या हम त्य दिलवाकर उसका भवभ्रमण बढ़ा रहे हैं? अभी हम लाडनूं से गंगाश आए। मार्ग में हमने हजारों-हजारों व्यक्तियों को दुर्व्यसनों का त्यागने उपदेश दिया। उससे होकर सैकड़ों व्यक्तियों ने शराब, मांस, तंब तथा अन्यान्य अनेक प्रकार की बुराइयां छोड़ीं। हमने उनको त्य करवाए। क्या वे सभी सम्यग्दृष्टि थे ? नहीं, वे सब सम्यग्दृष्टि नहीं इस स्थिति में क्या हम ऐसा मानें कि उनहोंने शराब, मांस, तंबाकू अ छोड़कर अधर्म किया? नहीं, शराब, मांस आदि का त्याग करके न उन्होंने अधर्म किया और न ही हमने अधर्म किया और न ही ह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र्म के लिए प्रेरित किया। यह शुद्धि धर्म का काम है। व्यक्ति की त्मा जिस किसी असत्प्रवृत्ति से निवृत्त होती है, वह सदा धर्म ही है। में अधर्म की बात करना चिंतन का दारिद्र्य।

ुव्रत का सैद्धांतिक आधार

प्रस्तुत संदर्भ में अहिंसा और संयमह्नइन दो शब्दों के प्रयोग का त्पर्य यही है कि धर्म का द्वार केवल संयमी प्राणियों के लिए नहीं, पितु असंयमी प्राणियों के लिए भी खुला है। उन्हें भी सत्प्रवृत्ति/धर्म ने का उतना ही अधिकार है, जितना संयमी प्राणियों को। अर्थात त्मोत्थान या मोक्ष जाने का जितना अधिकार एक संयमी प्राणी को है, ना ही एक असंयमी प्राणी को भी। इसी सिद्धांत के आधार पर हमने *ुव्रत* की बात कही। की बात कही। एक जैन अणुव्रती बन सकता है एक अजैन भी अणुव्रत बन सकता है। एक सम्यग्दृष्टि अणुव्रती बन कता तो एक मिथ्यादृष्टि भी अणुव्रती बन सकता है। संसार के प्रत्येक ष्य के लिए, फिर चो कोई नास्तिक भी क्यों न हो, अणुव्रत का द्वारा ा खुला है। शर्त एक ही है कि उसका विश्वास जीवन की पवित्रता में ा चाहिए। आपको यह जानकर प्रसन्नता होनी चाहिए कि हजारों-ारों अजैन और मिथ्यादृष्टि कहे जानेवाले लोगों ने अणुव्रत के सहारे ने जीवन को ऊंचा उठाया है, अपने आचरण और व्यवहार में धर्म स्थान दिया है।

हां, तो मैं आपसे कह रहा था कि आप सुनें ही नहीं, उस पर राई से चिंतन भी करें, अपनी बौद्धिक शक्ति का उपयोग कर उस व को आत्मसात करने का प्रयास भी करें। ऐसा करने से ही आपके ने की पूरी सार्थकता होगी और जन-जन को तत्त्व-ज्ञान से परिचित वाने का मेरा उद्देश्य भी पूरा हो सकेगा।

ाशहर
अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२७ : पर्याय : लक्षण व प्रकार (२)

पर्याय के संबंध में मैंने कल कुछ बातें आप से बताईं। आज उ
विषय को कुछ और स्पष्ट करना चाहूंगा।

लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे। अर्थात पर्याय द्र
और गुणह्नइन दोनों के आश्रित रहता है। इस आगम-वाक्य के अनुस
द्रव्य और गुण की पूर्व-पूर्व अवस्था के व्यय और उत्तर-उत्तर (नई-न
अवस्था के उत्पाद को पर्याय कहते हैं।

हम देखते हैं कि जीव देव, मनुष्य निर्यंच और नारक रूपों
परिवर्तित होता है। इन अवस्थाओं में वह न जाने कितने-कितने रूनों
बदलता है। इसी प्रकार पुद्‌गल भिन्न-भिन्न स्कंधों के रूप में परिण
करते रहते हैं। कोयले को जलाने से वह राख के रूप में परिवर्तित
जाता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं काल
साथ जीव व पुद्‌गलों का संयोज और विसंबंधन होता है। यह सब द्र
के पर्याय हैं।

जीव के ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि में परिवर्तन होता रहता
पुद्‌गलों के स्पर्श, रस, गंध और वर्ण परिवर्तित होते रहते हैं। वे नव
और पुरातन होते हैं । ये सब गुण के पर्याय हैं।

आपका प्रश्न हो सकता है कि पर्याय कितने हैं चूंकि पूर्व अवस्
और उत्तर अवस्थाएं अनंत हैं, इसलिए पर्याय भी अनंत हैं। हम अप
ही उदाहरण लें। हम में से प्रत्येक के अनंत-अनंत पर्या बदलते हैं।
और भविष्य की बात हम छोड़ दें, केवल वर्तमान में हम इतने पर
बदलते हैं, जिनकी गणना कठिन है।

अब हम इस बात को समझें कि पर्याय के कितने प्रकार हैं

व्यञ्जनार्थभेदेन स्वभाव-विभावभेदेन चास्य द्वैविध्यम्।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पर्याय के दो प्रकार हैंह्न१. व्यञ्जन पर्याय २. अर्थ।

पर्याय पर्याय के अन्य दो प्रकार भी हैंह्न१. स्वभाव पर्याय २. ाव पर्याय।

ञ्जन पर्याय

स्थूल पर्याय को व्यंजन पर्याय कहते हैं। यह इसकी संक्षिप्त भाषा है। विस्तार में जाएं तो जो पर्याय बिलकुल स्पष्ट होता सर्वसाधारण जिसका अनुभव कर सकता है,जिसे शब्दों के द्वारा ाया जा सकता है और जो त्रिकालदर्शी है, वह व्यञ्जन पर्याय है। ाहरणार्थह्नबच्चा जवान हो गया। केश काले से सफेद हो गए।......ये ऐसे ाय हैं; जो सर्व-साधारण के लिए भी बुद्धिगम्य हैं, शब्दों के द्वारा भिव्यक्त होते हैं और त्रिकालस्पर्शी हैं।

र्थ पर्याय

सूक्ष्मो वर्तमानवर्ती अर्थपरिणामः अर्थपर्यायः।

सूक्ष्म पर्याय अर्थ पर्याय कहलाता है। आप इसे और स्पष्ट रूप में झें। जो पर्याय स्पष्ट है, प्रतिक्षण परिवर्तन होने के पश्चात भी सर्व-धारण के लिए गम्य नहीं है, जिसके बदल जाने से भी द्रव्य का कार नहीं बदलता और जो केवल वर्तमानर्वी है, वह अर्थ पर्याय है। ाहरणार्थ, यह सामने बेल है। प्रतिक्षण यह बढ़ रही है, इसमें परिवर्तन रहा है, फिर भी हमें इसका बोध नहीं होता। कवि की भाषा मेंह्न

चंदा तो चलता न दीखे, बढ़ती ना बेल।
साधु तो जपता न दीखे, यह कुदरत का खेल।।

ह्न चंद्रमा चलता हुआ दिखाई नहीं देता, बेल बढ़ती हुई मालुम नहीं पड़ती, साधु जाप करता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि ये सब प्रकृतिगत बातें हैं।

बन्धुओ! सचमुच कवि ने बहुत गरी बात कही है। साधु जाप ता हुआ दिखलाई नहीं देता। आप यदि घंटा-आधा घंटा णमो हंताणं, णमो सिद्धाणं......या अर्हं-अर्हं की ध्वनि को ही जाप मानते हैं बहुत बड़ी भूल में हैं। वास्तव में साधु का हर क्षण, हर सांस और प्रवृत्ति जापमय होती है। मैं प्रतिदिन प्रवचन करता हूं। क्या यह जाप ं है? मैं इसे किसी जान से कम महत्त्व नहीं देता। दो घंटे तक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मुद्राविशेष में अवस्थित होकर किसी मंत्र की साधना करना जाप है दो घंटे जनता के बीच बोलना, उसे तत्त्व-ज्ञान देना भी जाप है। मे दृष्टि में यह बहुत उपयोगी और आवश्यक भी है।

सच्चा सेवक कौन

आज समाज का हर वर्ग अपने-आपको सेवक बताता है। व्याप कहते हैं कि हम समाज की सेवा कर रहे हैं। जनता की जीवनापये सभी वस्तुओं को स्थान-स्थान से एक स्थान पर लाना, उन व्यवस्थित रूप में वितरित करना जनता की कितनी बड़ी सेवा है! मज कहते हैं कि हम कठिन श्रम करते हैं, खून का पसीना बनाकर उत्पा करते हैं, जिससे पूरे राष्ट्र का काम चलता है। सैनिक कहते हैं कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करते यह सबसे महत्वपूर्ण सेवा है। नेताओं की तो बात ही छोड़ें। वे सोचते हैं कि हम जैसी सेवा करते हैं वैसी सेवा तो दूसरा कोई कर नहीं सकता। यदि हम न हों तो पता नहीं जनता और राष्ट्र का कै बुरा हाल हो!......मैं सोचता हूं, वास्तव में अधिकतर लोग राष्ट्र अ जनता की सेवा के बहाने अपनी ही सेवा करते हैं। अपनी उदरपूर्ति स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही अधिकतर काम करते हैं, राष्ट्र और जनता पथ-दर्शन करते हैं। उसे ज्ञान-दान देते हैं। उन्हें कोई भिक्षा देता है भी वे ज्ञान देते हैं तथा कोई नहीं देता है तो भी अपना कर्तव्य निभ हैं। भिक्षा देने के साथ उनके ज्ञान-दान का कोई संबंध नहीं है। और क्या, उम्रह्मभर गालियां देनेवाले को भी वे ज्ञान-दान से वंचित न रखते, पथ-दर्शन के लिए इनकार नहीं करते। उसके प्रति भी अ कर्तव्य को विस्मृत नहीं करते।

संतजनों का स्वभाव

एक भाई साधु-संतों का बहुत बड़ा आलोचक था। उम्र-भर उ साधु-संघ की बहुत निम्नस्तरीय निंदा की। जीवन के संध्याकाल में बीमार पड़ा। उसने मुझे दर्शन देने के लिए कहलाय। मुझे सुन आश्चर्य तो हुआ, पर मैं तत्काल वहां गया। उसकी मानसिक समाधि लिए मैंने संभावित प्रयत्न किया। उसको अत्यंत प्रसन्नता हुई। अ उम्र-भर के दुर्व्यवहार के लिए उसका मन पश्चाताप से भर गया। उ भाव-धारा में उसे कहाह्ममैं तो आउम्र आपकी निंदा-आलोचना क

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

, पर आपने अपना संत-स्वभाव नहीं छोड़ा।'

बंधुओ! संत सदा आत्म-स्वभाव में रमण करते हैं। चंदन को सो तो भी वह सुवास ही फैलाएगा। वृक्ष का भले पत्थर की मारो, पर तो मधुर फल ही देगा। यही वृत्ति संतों की होती है। संतो को चाहे ई कितनी ही गालियां दे, उन्हें मारें-पीटें, वे इन हरकतों का गाली र मारपीटसे प्रतिकार नहीं करते। और जो गाली के बदले गाली दें, का जवाब पत्थर से दें, वे संत नहीं हैं। संत तो हर स्थिति में सबके ए करुणा की भावना ही रखते हैं। तटस्थ भाव से सबको आत्मोत्थान ओर प्रेरित करते हैं। इसलिए मैंने कहा कि संत लोगों की सेवा ही ची सेवा है।

मैं प्रसंगवश आपसे बहुत-सी दूसरी-दूसरी बातें कह गया। मेरा प्रतिपाद्य थाह्नपर्याय। पर्याय के दो प्रकारह्नव्यञ्जन और अर्थ को ने जाना। अब हम पर्याय के अन्य प्रकारों को भी समझें।

भाव पर्याय

परनिमित्तानपेक्षः स्वभावपर्यायः।

सहज परिवर्तन अर्थात दूसरा वस्तु के निमित्त की अपेक्षा ने नेवाली अवस्था को स्वभाव पर्याय कहा जाता है। जिस प्रकार पानी सज रूप से कल्लोलें उठती रहती हैं, उसी प्रकार वस्तु में बिना सी निमित्त के सहजरूप से परिवर्तन होता रहता है, उसका पर्याय वर्तित होता रहता है। आपके घर में दूध हे। उस दूध में बिना किसी जह के मिले सहजरूप से प्रतिक्षण सूक्ष्म परिवर्तन होता हैह्नयह भाव पर्याय है।

नाव पर्याय

परनिमित्तापेक्षो विभावपर्यायः।

दूसरे पदार्थों के निमित्त से होनेवाले परिवर्तन को विभाव पर्याय ते हैं। मैंने अभी दूध का उदाहरण दिया। दूध में जो स्वाभाविक वर्तन होता है, वह स्वभाव पर्याय है। पर मान लीजिए, आपने उसमें का जामन दे दिया। इससे वह दही के रूप में परिवर्तित हो गया। दही के रूप में परिवर्तित होना विभाव पर्याय है, क्योंकि बिना जामन निमित्त मिले, वह दही के रूप में परिणत नहीं हो सकता था।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्रोध स्वभाव नहीं, विभाव है

कुछ लोग क्रोध, वासना आदि को स्वभाव कह देते हैं। पर वस्तु
ये सब स्वभाव नहीं, विभाव हैं, क्योंकि ये कर्मों के निमित्त से पैदा ह
हैं। यदि क्रोध, वासना आदि स्वभाव हैं तो शुद्ध आत्मा/सिद्ध में भी ह
चाहिए। पर हम देखते हैं कि शुद्धात्मा में इनका सर्वथा अभाव
इसलिए क्रोध, वासना आदि को स्वभाव नहीं, विभाव ही जानना चाहि

पर्याय के लक्षण

पर्याय के प्रकार के पश्चात अब हम पर्याय के लक्षणों पर च
करेंगे।

एकत्व-पृथक्त्व-संख्या-संस्थान-संयोग-विभागास्तल्लक्षणम।

एतैः पर्याया लक्ष्यन्ते

एकत्वम्-भिन्नेष्वपि परमाण्वादिषु यदेकोऽयं घटादिरिति प्रतीतिः।

पृथकत्वमह्नसंयुक्तेषु भेदज्ञानस्य कारणभूतं पृथक्त्
यथाह्नअयमस्मात् पृथक।

संख्याह्नद्वौ त्रय इत्यादिरूपा।

संस्थानम्ह्नयथा इदं परिमण्डलम्।

संयोगःह्नअयमंगुल्योः संयोगः।

विभागःह्न वियुक्तेषु भेदज्ञानस्य कारणभूतो विभागः, य
अयमितो विभक्त।

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और **विभाग**ह्नये
पर्याय के लक्षण हैं।

एकत्व

भिन्न-भिन्न परमाणुओं व स्कंधों से बना होने के बावजूद 'यह घ
एक है' इस प्रकार की प्रीति के कारणभूत पर्याय को एकत्व कहते हैं

पृथक्त्व

भिन्न-भिन्न परमाणुओं एवं स्कंधों से बने एक पदार्थ में भिन्
की प्रतीति के कारणभूत पर्याय को पृथक्त्व कहते हैं। उदाहरणार्थह्न
पट्ट है। यह पूरा एक स्कंध है। पर इसके बावजूद इसमें लकड़ी
भिन्न-भिन्न छोटे-मोटे अनेक टुकड़ों का हमें अनुभव होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ख्या

जिसके द्वारा दो, पांच, सात...... संख्यात, असंख्यात आदि की ीति होती है, वह संख्या है।

स्थान

गोल, परिमंडल, त्रिकोण आदि पदार्थों को संस्थान कहा जाता है।

योग

अंतररहित मिलन को संयोग कहते हैं। जैसे, पांचों अंगुलियां लकर मुष्ठि बन गईं।

भाग

अलग-अलग पदार्थों में भिन्नता की प्रतीति के कारणभूत पर्याय को भाग कहा जाता है।

इस विवेचन के साथ *जैनसिद्धांतदीपिका* का प्रथम प्रकाश समाप्त ता है। कल संभवतः मैं द्वितीय प्रकाश का विवेचन प्रारंभ कर सकूंगा।

ाशहर

अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२८ : नव तत्त्व

पिलछे प्रवचनों में अप लोगों ने द्रव्य, गुण और पर्याय के संबंध
जाना आज मैं तत्त्व के संबंध में कुछ बताऊंगा। जैन-दर्शन में नौ त
माने गए हैं।

जीवाऽजीव-पुण्य पापाश्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षास्तत्त्वम्।

तत्त्वं पारमार्थिकं वस्तु।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष
नव तत्त्व हैं।

तत्त्व क्या है

प्रश्न है, तत्त्व किसे कहते हैं। पारमार्थिक वस्तु तत्त्व कहा जाता
अर्थात जिस वस्तु का महानतम प्रयोजन हो, वह तत्त्व है। हम व्यवहार
भी प्रायः कहते हैं कि उसमें तत्त्व क्या है। यानी जो कुछ कहा ग
बताया गया, पढ़ा गया, उसमें सारभूत क्या है। आप जानते हैं कि
जो- कुछ पढ़ते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, उसमें सब-कुछ सारभूत नहीं हो
व्यक्ति जो कुछ खाता-पीता है, उसमें सारभूत तत्त्व उतना ही होता
जिसका शरीर में रस के रूप में परिणमन हो जाए शेष निस्सार होता
आप कहेंगे कि, तब तो हमें केवल सारभूत तत्त्व ही ग्रहण करना चाहि
निस्सार हिस्से से हमारा क्या प्रयोजन, बात ठीक है। पर कठिनाई
है कि सारभूत तत्त्व को ग्रहण करने के लिए प्रारंभ में सम्पूर्ण वस्तु
ग्रहण करनी होती है। फिर उसमें से सारभूत को अलग निकाला जाता
यह सारभूत ही तत्त्व कहलाता है । यो तो यह संसार बहुत लंबा-चौ
है पर इसमें सारभूत बातें नौ ही हैं उन्हें ही तत्त्व कहा गया है।

ज्ञेय नव ही तत्त्व हैं

नौं तत्त्वों की संक्षिप्त जानकारी प्रत्येक जैन कहलाने वाले भा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इन को अवश्य होनी चाहिए। यद्यपि इन नौ तत्त्वों में से संवर, निर्जरा र मोक्षह्नये तीन ही तत्त्व उपादेय हैं। शेष छह तत्त्वह्नजीव, अजीव, य, पाप, आश्रव और बंध हेय हैं। पर उपादेय और हेय सभी तत्त्वों अवबोध आवश्यक है।

व हेय क्यों

आप कह सकते हैं कि अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और बंध छोड़ने य हैं, यह बात तो बुद्धिगम्य है, पर जीव को छोड़ने योग्य क्यों कहा ा, यदि जीव को ही छोड़ देंगे तो शेष रहेगा ही क्या। इस बात को राई से समझना चाहिए। वास्तव में संसार में जीव कभी शुद्धावस्था में ीं रहता। वह कर्मों से बंधा हुआ रहता है। कर्मबद्ध जीव कभी उपादेय ीं हो सकता। कर्मबद्ध जीव को छोड़ने का अर्थ हैह्नमोक्ष की। उस स्था में जीव तो रहेगा, पर वह कर्ममुक्त यानी शुद्ध चैतन्य-स्वरूप ा।

व को जानें

नौ तत्त्वों में जीव पहला तत्त्व है। जिस प्रकार कंकर और गेहूं, छ और मक्खन, मिट्टी और सोना दोनों साथ-साथ रहते हैं, उसी ार जीव और अजीव/पुद्गल दोनों साथ-साथ रहते हैं। जिस प्रकार ् को नहीं समझनेवाला गेहूं और कंकर को अलग-अलग नहीं कर कता, मक्खन को नहीं जाननेवाला छाछ से मक्खन को विलग नहीं सकता, सोने को नहीं जाननेवाला मिट्टी से सोने को नहीं निकाल कता, उसी प्रकार जीव को नहीं समझनेवाला जीव और अजीव का भेद ीं जान सकता। इसलिए जीव को जानना नितांत जरूरी है।

उपयोगलक्षणो जीवः।

उपयोग लक्षण है जिसका, तत्व जीव कहलाता हे। उपयोग किसे ते हैं ? साधारण बोलचाल में उपयोग का अर्थ होता हैह्नकाम में ा। पर जैसाकि मैंने पहले भी कई बार कहा, हर शब्द हर स्थान पर ही अर्थ में व्यवहृत नहीं होता। भिन्न-भिन्न स्थानों पर वह भिन्न न्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत संदर्भ हमें उपयोग शब्द एक ोष अर्थ में पयुक्त हुआ है।

चेतनाव्यापारः उपयोगः।

चेतनाह्नज्ञानदर्शनात्मिका। तस्या व्यापारःह्नप्रवृत्ति उपयोगः।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चेतना के व्यापार को उपयोग कहा जाता है। चेतना क्या है
ज्ञान व दर्शन की प्रवृत्ति को चेतना कहा जाता। इस अपेक्षा से हम
सकते हैं कि ज्ञान और दर्शन की प्रवृत्ति उपयोग है।

चेतना का विस्तार-क्षेत्र

हम अपने कानों से अनेक शब्द सुनते हैं। अपनी आंखों से वि
रूपों को देखते हैं। नाम से गंध लेते हैं। जीभ से रस का अनुभव क
हैं। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान करते हैं। शब्द, रूप, गंध, रस और स्प
का ज्ञान होना चेतना का व्यापार है। कान, आंख, नाक, जीभ अ
त्वचाह्नइन सब में चेतना परिव्याप्त है इसे भावेंद्रिय कहते हैं। भावेंद्रिय
अतिरिक्त भाव मन भी चेतन है। मन से सुख-दुःख का अनुभव क
चेतना का व्यापार है।

पांच इंद्रियों और मन की चेतना के विभिन्न स्तर हैं। उनके द्व
हम विभिन्न रूपों में ज्ञान करते हैं। पांच इंद्रियों और मन की
चेतना स्थूल चेतना है। स्थूल चेतना पुद्गलसापेक्ष होती है। कि
व्यक्ति की आंखें चली गईं तो यह देख नहीं सकता। यद्यपि देखने
शक्ति उसके पास विद्यमान है, यद्यपि पौद्गलिक यंत्र के खराब हो ज
से उस शक्ति का कोई उपयोग नहीं होता। इसलिए हम तात्त्विक चर्चा
अचक्षु आहदमी के इंद्रियां पांच ही स्वीकार करते हैं। वास्तव में
ऊपर से जो इंद्रियां दिखाई देती है, वे उनके पौद्गलिक आकार
इंद्रियों में ज्ञान करने की चेतना तो अंदर विद्यमान होती है। पर
चेतना पौद्गलिक उपकरणों (इंद्रियों और मन) की सहायता के बि
अपना व्यापार नहीं कर सकती, इसलिए उस चेतना को स्थूल चेत
माना गया है।

उस स्थूल चेतना के अतिरिक्त एक सूक्ष्म चेतना और है।
सूक्ष्म चेतना पुद्गलसापेक्ष नहीं है। यानी उस चेतना को अपना व्याप
करने में पौद्गलिक उपकरणों (इंद्रिय और मन) की अपेक्षा नहीं होती
वह आत्मा के स्तर पर अपना कार्य करती है। अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञ
और केवलज्ञानह्नये तीनों उस कोटि में आते हैं। स्थूल चेतना में मतिज्ञ
और श्रुतिज्ञान का समावेश है।

अधजल गगरी छलकत जाए

चेतना का सर्वाधिक विकसित रूप केवलज्ञान है। सचमुच स्थि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

करने जैसी है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो उसके सामने बहुत ही ण्य हैं। पर मजे की बात तो यह है कि इस स्थिति के बावजूद लोग ने ज्ञान का अहं करते हैं। केवलज्ञानी अपने ज्ञान का किंचित भी भिमान नहीं करते। वस्तुतः अभिमान करना अपूर्णता का द्योतक है। ता की स्थिति में कभी कोई अभिमान नहीं कर सकता। सांप के पास तना जहर होता है, पर वह उसका कभी प्रदर्शन नहीं करता। उसकी ना में बिच्छू के पास बहुत थोड़ा जहर होता है, फिर भी वह अहं ता है, उसका प्रदर्शन करने के लिए अपनी पूंछ ऊंची करके चलता है!

श बनाम आत्म-निर्जरा

छोटे आदमी की यह बड़ी पहचान है कि वह कार्य कम करता है र उसका प्रदर्शन अधिक। उसके कार्य करने के पीछे कर्तव्य बुद्धि कम नहीं के बराबर होती है और नाम/प्रतिष्ठा की भावना अधिक। पर ान व्यक्ति की सिर्िति इससस्रे सर्वज्ञा भिन्न होती है। वह कर्तव्य-बुद्धि ही कार्य करता है। भगवान महावीर ने साधना की भूमिका प्रस्तुत ते हुए कहा कि साधक को मात्र आत्म-निर्जरा की भावना से प्रवृत्ति नी चाहिए। यश/प्रतिष्ठा/नाम के लिए किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होना हिए। सचमुच यह एक गहरी बात है। जिस साधक के जीवन में यह त्म-निर्जरा/कर्म-निर्जरा की भावना जितनी प्रबल होती है, उसकी धना उतनी ही अधिक तेजस्वी बनती है। हालांकि कर्म-निर्जरा की वना से किए जानेवाले कार्य में यश, कीर्ति, प्रतिष्ठा आदि बातें भी संगिक फल के रूप में सहज ही प्रापत होती हैं, तथापि आत्मार्थी धक इनकी किंचित भी आकांक्षा नहीं करता, इनके लिए अलग से षर्थ नहीं करता।

मैं प्रतिदिन प्रवचन करता हूं। इससे सैकड़ों-हजारों लोग सहज रूप ही लाभान्वित होत हैं, पथ-दर्शन प्राप्त करते हैं। कुछ लोग मेरी प्रशंसा कर सकते हैं, किंतु मेरे प्रवचन करने की मूलभूत उद्देश्य लोगों को भान्वित करना, उनका अवश्य है कि मेरी इस आत्म-निर्जरा की प्रवृत्ति ज्ञान प्रा के लिए पूरा-पूरा उपयोग होता है तो मुझे सहज रूप में तिरिक्त प्रसन्नता की अनुभूति होती है। पर यदि उसका पूरा उपयोग ं भी होता है तो मेरी आत्म-निर्जरा में कहीं कोई कमी नहीं आती।

बंधुओ! मेरे अंतःकरण की बहुत बड़ी तड़फ है, भावना है कि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

समाज का हर भाई और बहिन तत्त्व-ज्ञान सीखे। यह माना कि उसब
क्षयोपशम समान नहीं होता, इसलिए सब समान रूप से तत्त्वज्ञ नहीं
सकते, तथापि एक सीमा तक तो तत्त्व का ज्ञान प्रत्येक जैन अ
तंरापंथी कहलानेवाले व्यक्ति को होना ही चाहिए। मैं देख रहा हूं, सम
में इन दिनों तत्त्व-ज्ञान के प्रति थोड़ी अरुचि या उपेक्षा हो रही है।
उचित नहीं है। इस अरुचि या उपेक्षा को मिटाना चाहिए और ज्ञा
प्राप्ति के लिए अभिरुचि जाग्रत करना चाहिए। प्रारंभिक भूमिका त
तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से *कालूतत्त्वशतक* अत्यंत उपयोगी और आवश्
है। इस ग्रंथ का यदि सांगोपांग अध्ययन कर लिया जाता है। तो मान
चाहिए कि प्रारंभिक स्तर तक तत्त्व की जानकारी हो गई है। मैं अ
लोगों को आह्वान करता हूं कि आप इस ग्रंथ का अध्ययन अवश्य क
जो लोग नियमित रूप से इस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहेंगे, उ
लिए मैं स्वयं प्रतिदिन समय देने का संभावित प्रयास करूंगा।।

गंगाशहर
११ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२९ : उपयोग के दो प्रकार

धना का अर्थ

काल से मैंने नौ तत्त्वों का विवेचन प्रारंभ किया था। जैसा कि पने कल जाना-नौ तत्त्वों में कुछ हेय हैं, कुछ उपादेय हैं, पर ज्ञेय ी नौ तत्त्व हैं। साधना की दृष्टि से इस विवेचन का बहुत महत्व है, ोंकि जानने, छोड़ने और ग्रहण करने का ही दूसरा नाम साधना है। तक इन तीनों की समन्वित नहीं होती, तब तक साधना फलित नहीं सकती। कुछ लोग कहते हैं कि साधना के लिए कुछ भी छोड़ने की या अपेक्षा । मैं उनसे प्रतिप्रश्न करना चाहता हूं कि बुराई को छोड़े ा वे अच्छाई को स्वीकार कैसे करेंगे ? अच्छाई को स्वीकार करना तो बुराई को छोड़ना ही होगा। इसलि आपकी यह सहज मनोवृत्ति र संस्कार होना चाहिए कि आप अच्छाई को ग्रहण करें और बुराई परित्याग करें। हां, आपको कोई अच्छाई छोड़ने की बात कहे तो श्य आपके मन में प्रश्न हो सकता है, आपके लिए यह चिंतन का य बन सकता है। पर बुराई छोड़ने में चिंता और चिंतन किस बात ! आपसे कोई रोटी छोड़ने की बात कहे तो बेशक यह आपके लिए ठेन हो सकता है। पर आपको यदि मिट्टी छोड़ने के लिए कहा जाए र आप घबराएं तो यह आश्चर्य की बात है। कहने का तात्पर्य यह है सभी तत्त्वों को जानना और उनमें से उपादेय को ग्रहण करना जितना री है, उतना ही जरूरी है हेय को छोड़ना।

क्के के दो पहलू

वस्तुतः अच्छाई को ग्रहण करना और बुराई को छोड़नाह्नदो लग-अलग बातें नहीं, अपितु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि हम पक्ष को स्वीकार करते हैं तो दूसरा पक्ष सहज ही हमारे लिए कार्य हो जाता है। अच्छाई को स्वीकार करने का अर्थ ही हैह्नबुराई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को छोड़ने का अर्थ ही हैह्नअच्छाई का संग्रहण। अच्छी-अच्छी बातें ग्र
कीं कि बुरी-बुरी बातें स्वयं छूट जाएंगी। इसी प्रकार बुराइयां छूटीं
शेष अच्छाइयां रह जाएंगी। पाप को छोड़ने का अर्थ हैह्नधर्म का संग्र
तथा धर्म की स्वीकृति का फलित हैह्नपाप-मुक्ति। कहने का तात्पर्य
है कि बुराई का परित्याग और अच्छाई का संग्रहणह्नइन दोनों बातों
एक ही परिणाम है। इसलिए मैंने कहा कि उपादेय को स्वीकार क
और हेय को छोड़ना दोनों एक ही बात हैं। पर समझने की सुविधा
लिए इन्हें अलग-अलग करके बताया जाता है।

नौ तत्त्वों में सबसे पहले हमने जीव पर चर्चा प्रारंभ की
क्योंकि जीव की जानना सबसे ज्यादा, जरूरी है। आप कहेंगे, यह
अपने स्वार्थ की बात है। चूंकि हम सब जीव हैं, इसलिए सबसे प
जीव की चर्चा करते हैं।

स्वार्थ बुरा भी, अच्छा भी

मैं नहीं समझता, स्वार्थ को आप बुरा ही क्यों मानते हैं वस्
स्वार्थ वही बुरा है, जो दूसरों के हितों को चोट पहुंचाता हो । जो स्
दूसरों के हितों को नहीं रोकता, वह कभी बुरा नहीं कहा जा सकता।
व्यक्ति ध्यान करता है, स्वाध्याय करता है। क्या यह स्वार्थ नहीं है
स्वार्थ है, पर यह स्वार्थ कभी अनुचित नहीं ठहराया जा सकता, क्यों
इस किसी के हितों को नुकसान नहीं पहुंचता। इस संदर्भ में एक ब
और जान लेने की हैह्नव्यवहार में हमें बहुत-से कार्य परार्थ लगते हैं,
वास्तव में वे परार्थ नहीं, स्वार्थ ही होते हैं। उदाहरणार्थह्न कोई व्य
किसी दूसरे व्यक्ति को विद्या/ज्ञान देता है। सामान्यतः ज्ञान-दान
परार्थ समझा जाता है। उसे परोपकार वकही संज्ञा दी जाती है। लेि
तत्त्वतः वह परार्थ नहीं, स्वार्थ ही है क्यों ? यह इसलिए कि पढ़
जानेवाला व्यक्ति ज्ञान प्रापत कर सकेगा, यह कोई निश्चित नहीं है
पढ़ानेवाला तो निश्चित की लाभन्वित होता है। उसका ज्ञान तो निस्सं
बढ़ता है। मैं आपके सामने प्रवचन करता हूं। आप इसे परार्थ/परोपक
कह सकते हैं, पर वास्तव में यह कोई परार्थ/परोपकार नहीं, अ
स्वार्थ ही है, क्योंकि प्रवचन करके मैं अपने अनंत-अनंत कर्मों का
कर रहा हूं। यह ठीक है कि लोग प्रवचन से लाभान्वित होते हैं
पथ-दर्शन प्राप्त करते हैं। पर दो क्षण के लिए यदि ऐसा भी मान लि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ए कि लोग प्रवचन से लाभान्वित नहीं होते हैं, तथापि मेरी आत्म-र्जरा में कोई कमी आनेवाली नहीं है। वस्तुतः ऐसे कार्यों को एकांत पकार मानना चिंतन की भूल हैं, क्योंकि परोपकार का अर्थ हैह्नकार्य के किसी को आभारी बनाना। हम प्रवचन या धर्मोपदेश किसी को भारी बनाने के लिए नहीं, अपितु अपने कर्तव्य-निर्वाह और आत्म-र्जरा की दृष्टि से करते हैं। ऐसी स्थिति में परोपकार का कोई प्रश्न ही ीं उठता। इसलिए मैंने कहा कि उत्कृष्ट कोटि का स्वार्थ (जहां किसी नुकसान नहीं होता, बल्कि लाभ ही संभावित है।) कभी बुरा नहीं हा जा सकता। जीव को जानना भी इस दृष्टि से स्वार्थ मान भी लिया ए तो कोई कठिनाई नहीं है।

कौन हूं

आप पूछेंगे कि क्या हम (जीव) अपने-आपको नहीं जानते हां, नहीं नते। यदि आप स्वयं से परिचित होते तो आज आपकी यह दुर्दशा ीं होती।

एक दार्शनिक की रात में दो-तीन बजे नींद टूट गई। उसे समय कोई ख्याल नहीं हुआ। मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, कहां जाऊंगा दि प्रश्नों के चिंतन-चिंतन में वह घर से बाहर निकल गया। चलते-नते वह एक बगीचे के पास पहुंचा। वह किसी श्रेष्ठी का व्यक्तिगत ीचा था। बगीचे के द्वारा पर एक संतरी पहरा दे रहा था। असमय में रिचित व्यक्ति को उधर आते देख उसने पूछाह्न'तुम कौन हो ?'

पर वह दार्शनिक तो अपनी धुन में आगे-से-आगे बढ़ता ही आ था। कहां जा रहा हूं, क्यों जा रहा हूं इत्यादि बातों का उसे कोई ाल ही नहीं था। संतरी ने दुबारा पूछा, पर उसे कोई जवाब नहीं ला। जब वह दार्शनिक उस संतरी के बिलकुल समीप आह गया और भग टकराने की-सी स्थिति आ गई तो उसने उसे पकड़कर झकझोरते वही प्रश्न दुहरायाह्न'तुम कौन हो ?'

अब दार्शनिक को ख्याल आया कि मैं किसी गलत स्थान पर आ ा हूं। उसने कहाह्न'यदि यही मुझे मालूम होता कि मैं कौन हूं तो यहां ता ही क्यों ? अपने-आपसे अपरिचित होने के कारण ही तो मेरी यह नत हुई है।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्या आप मन के गुलाम नहीं हैं

बन्धुओ! यही स्थितिआल लोगों की है। अपने-आपको न पहचानने के कारण ही विभिन्न रूपों में आपकी दुर्गति हो रही है। स के अस्तित्व से अनभिज्ञ होने के कारण ही आप कभी आग्रह के गुल बन जाते हैं, कभी क्रोध के गुलाम बन जाते हैं, कभी अहंकार के गुल बन जाते हैं, कभी……यदि स्वयं को जान लेते तो यह गुलामी फिर अ नहीं करते। यद्यपि गुलामी शब्द आपको बिलकुल पंसद नहीं है, फिर आप सब गुलाम हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं, भले माता-पिता गुलामी आप नहीं करते, गुरुजनों की गुलामी भी आपने छोड़ दी, पर के गुलाम हैं या नहीं ? तन कहता है कि होटल में जाना ठीक नहीं वहां का खाद्य मेरे अनुकूल नहीं है, फिर भी मन आपको वहां ले जाता है। ऐसी स्थिति में क्या आप मन के गुलाम नहीं हैं? पर स्थिति केवल आपकी नहीं है, अपितु सारे संसार की है। यह मन गुलामी ही तो कारण है कि आदमी नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में प जाता है, वह कषाय में अंधा बन जाता है, वासना उस पर हावी जाती है।

प्रसंग गोस्वामी तुलसीदासजी का

कल पूरे राष्ट्र में गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्म-जयंती मन गई । सचमुच वे भारतीय परंपरा के एक महान कवि थे। अपनी लेख से उन्होंने एक ऐसे विशिष्ट ग्रंथ की रचना की,जिसमें भारतीय संस्कृ कूट-कूट कर भरी पड़ी है। इस कार्य के लिए भारतीय समाज युगों-यु तक उनका आभारी रहेगा। पर उनका प्रारंभिक जीवन कैसा था, शायद बहुत-से लोग नहीं जानते। कहा जाता है कि वे अपनी युवाव में वासना के दास थे। स्थिति यहां तक थी कि पत्नी से एक दिन अलग रहना उनके लिए मुश्कल था। एक बार वे किसी आवश् कार्यवश बाहर गए। पीछे से पत्नी अपने पीहर चली गई। जब वे वापि आए तो पत्नी को घर न पाकर बिलकुल खेद-खिन्न हो गए। उन्हीं वे पत्नी से मिलने ससुराल रवाना हो गए। रास्ते में अनेक नदियां, न व घाटियां पार करते हुए वे ससुराल पहुंचे। बिना कोई पूर्व सूचना पतिदेव का यों ससुराल आना उनकी पत्नी को बहुत बुरा लगा। उ अत्यधिक शर्म व संकोच का अनुभव हुआ। अवसर देखकर उ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ालंभर-भरे शब्दों में कहाह्न'आपको मेरे पीछे-पीछे यहां आने की क्या ूरत थी ? क्या लोक-लज्जा का आपको तनिक भी ख्याल नहीं ? पीहरवाले आपको क्या समझेंगे ? माना कि आपका मेरे प्रति यधिक प्रेम है। पर जितना प्रेम आप मुझसे करते हैं, उतना प्रेम यदि । से करने लुग जाएं तो क्या आपका कल्याण न हो जाए?'

कहा जाता है कि वे एक बार घूमते-घूमते वृंदावन चले गए। वहां ग राधेश्याम की रटन लगा रहे थे। राम का उन्होंने कहीं नाम नहीं ा। यह स्थिति उनके लिए असह्य हो गई। उनका रामभक्त हृदय न उठाह्न

'तुलसी' या ब्रजभूमि में, आक, ढाक औ कैर।
राधे-राधे रटत हैं, का राम नाम से वैर?

मेरे कथन का सारांश यही है कि जिस दिन व्यक्ति अपनी ल्कियत को जान लेता है, उसे अपने अस्तित्व का बोध हो जाता है, यं को वह यथार्थ रूप में पहचान लेता है, फिर सभी प्रकार की ामियों से मुक्त होते उसे समय नहीं लगता।क जब तक स्वयं की चान नहीं हो पाती, अपने अस्तित्व का अवबोध नहीं हो पाता, तभी उस पर कभी क्रोध का नशा चढ़ता है, कभी वह वासना का दास ता है, कभी अहंकार के दलदल में फंसता है।

ंकार अज्ञान का सूचक है

अहंकार वस्तुतः व्यक्ति के अज्ञान का ही हसूचक है। हमारे संघ के मंत्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी बहुधा कहा करते थे कि हम ंत-अनंत बार बेर की गुठली बनकर लोगों के पैरों के नीचे रौंदे गए ऐसी स्थिति में हमारे लिए अभिमान करने को फिर शेष रहता ही ा है ? थोड़ी-सी सपंत्ति हो जाए, वह तत्काल अभ्मिान में अंधा हो ता है। वह सोचता है कि संसार में सबसे बड़ा आदमी मैं ही हूं।

ां है तुम्हारी जमीन

यूनान के महान दार्शनिक सुकरात के पास फ्रांस का एक बहुत ा जमींदार आ। पर वह जितना बड़ा जमींदार था, उससे भी बड़ा का अहं था। सुकरात ने पूछाह्न'तूम कौन हो ?' इस प्रश्न के साथ ही का अहंकार जाग्रत हो गया। उसने जरा अकड़कर सुकरात से ाह्न'क्या आप इतना भी नहीं जानते कि मैं फ्रांस देश का सबसे बड़ा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जमींदार हूं?' सुकरात ने प्रश्न कियाह्न'कहां है तुम्हारी जमीन ?' उ
अकड़ के साथ वह बोलाह्न'अमुक जिले की अमुक तहसील में मेरी ब
बड़ी जमीन है।' सुकरात ने तत्काल विश्व काह मानचित्र मंगवाया उ
उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछाह्न'इस संसार में कहां है तुम्हारा देशे
उसने बड़े ध्यान से मानचित्र के देखकर मुश्किल से छोटे-से फ्रांस
को पकड़ा। तब सुकरात ने प्रश्न कियाह्न'इस देश में कहा है तुम्ह
जिला?' विश्व के मानचित्र में एक जिले का क्या पता चले ? बाव
इसके अपने जिले के लिए उसने अंदाज से एक बिन्दु बना दिया।
सुकरात की प्रश्न श्रृंखला आगे से आगे चालू थीह्न'इस जिले में कहां
तुम्हारी तहसील ? कहा है उसमें तुम्हारी जमीन ?

जब जिला भी मानचित्र में नहीं दिखाया गया, तब तहसील का
पता ही कैसे चलता ? इसके बावजूद अपने अहं को पोषण देते
अपनी तहसील के लिए उसने फिर एक सूक्ष्म बिंदु बनाया। पर अप
जमीन को वह कैसे दिखाता ? उसने झुंझलाते हुए कहाह्न'क्या जमीन
कहीं मानचित्र में दिखाई जाती है?'

इस बार उसके अहंकार पर चोट करते हुए सुकरात ने कहाह्न'
संसार के मानचीत्र में तुम्हारी इतनी बड़ी जमीन का कोई स्थान ही न
है, तुम किस बात का अभिमान कर रहे हो?

अथाह ज्ञानसागर

बंधुओ! यही बात मैं आपसे कह रहा था। व्यक्ति के पास थोड़
सा धन हुआ कि उसके पैर जमीन पर टिकने मुश्किल हो जाते
थोड़ा-सा ज्ञान हुआ कि उसका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ ज
है। सामान्य लोगों से सीधे मुंह बात करने में वह अपना अपम
समझता है। पर मैं नहीं समझता, यह अभिमान किस बात का
केवलज्ञानी के ज्ञान के सामने उसका ज्ञान एक बिंदु भी नहीं होत
केवलज्ञान सचमुच ही अभिमान करने जैसे उपलब्धि है, स्थिति है।
केवलज्ञानी कभी अभिमान करते नहीं कर सकते नहीं। इसके विप
जिसके पास अभिमान करने जैसा कुछ भी नहीं, वह झूठा अभिम
करता है। युवक लोग सोचें इस बात को। क्या यह वास्तविकता न
है? सामान्य-सा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके वे अपने-आपको विद्वान
नहीं मान बैठे हैं? कहा जाता है कि अगस्त्य ऋषि ने तीन चलुओं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र सागर का पानी पी लिया था। कहीं युवक लोग भी एसा तो नहीं चते कि दो-चार पुस्तकें पढ़कर उन्होंने समग्र/अथाह ज्ञान प्राप्त कर या है? यदि ऐसा सोचते हैं तो वे सचमुच भयंकर भूल करते हैं। ज्ञान ंत है। वह दो-चार पुस्तकों के पढ़ने से कदापि प्राप्त होनेवाला नहीं उसके लिए बहुत लंबी साधना अपेक्षित है।

हां, तो मैं अब अपने मूल विषय पर लौटता हूं। सबसे पहले हम व को समझें। जैसाकि कल मैंने बताया था, जिसमें उपयोग होता है, जीव है। उपयोग, चेतना की ज्ञान-दर्शनमय प्रवृत्ति का नाम है। प्रश्न ा जा सकता है कि उपयोग के कितने प्रकार हैं।

साकारोऽनाकारश्च

उपयोग के दो प्रकार हैंह्न१. साकार २. अनाकर।

साकार और अनाकार उपयोग की विसतृत चर्चा में आज नहीं रूंगा। उसे आगे के लिए छोड़ता हूं। अभी तो आप संक्षेप में इतना-सा झ लें कि ज्ञान को साकार उपयोग और दर्शन को अनाकर उपयोग ा गया है।

साकार और अनाकारह्नये दोनों ही शब्द आप लोगों के लिए नए ीं हैं, क्योंकि व्यवहार में इनका काफी प्रयोग होता है। हम देखते हैं कि छ लोग साकार भगवान के उपासक होते हैं तो कुछ लोग अनाकार वान के। आप पूछ सकते हैं कि जैन-दर्शन इन दोनों में से किस रूप स्वीकार करता है। जैन-दर्शन अपेक्षाभेद से साकार और अनाकार ों ही रूपों में भगवान को स्वीकार करता है। अरहंत/तीर्थंकर सशरीर ो हैं। उनको स्पष्ट देखा जाता है। वे साकार भगवान हैं। सिद्धावस्था प्राप्त आत्माएं, शरीर से रहित होती है। वे निराकार भगवान हैं।

आप इन तथ्यों को गहराई से समझें। मैं एक ही बात को बार-र इसलिए कहता हूं कि जिससे शिक्षित, कम शिक्षित और अशिक्षित ी प्रकार के लोग इन तत्त्वों की बातों को गहराई से समझ सकें। मैं ना प्रयास कर रहा हूं। पर इस प्रयास की बहुत बड़ी सफलता आप ों पर निभर है। मुझे आशा है कि आप तत्त्व-ज्ञान ह्रदयंगम करके में प्रयास को अवश्य सफल बनाऐंगे।

ाशहर, १२ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३० : ज्ञान और अज्ञान : एक विमर्श

साकार और अनाकार उपयोग की चर्चा कल मैंने प्रारंभ की थ
जिस जानकारी में पर्दार्थ का स्पष्ट चित्र व्यक्ति के सामने आ जाए,
साकार उपयोग हे। इसके विपरीत जिस जानकारी में स्पष्ट चित्र सा
न आए, वह अनाकार उपयोग है। उदाहरणार्थह्नएक व्यक्ति ने दरवाजे
प्रवेश किया। प्रवेश करते ही प्रथम क्षण में उसने देखा कि कुछ है।
क्या है, कौन है, कौन प्रवचन कर रहा है, किस विषय पर प्रवचन
रहा है आदि बातों की जानकारी उस प्रथम क्षण में उसे नहीं होती।
अनाकार उपयोग है। अब अगले क्षणों में वह जानता है कि साधु बैठे
साध्वियां बैठी हैं, भाई-बहन......यह सारी जानकारी साकार उपयोग
साकार उपयोग को ज्ञान और अनाकार उपयोग को दर्शन कहते हैं।

चक्षुदर्शन : अचक्षुदर्शन

लोग सामान्यतः दर्शन का अर्थ आंखों में देखना और ज्ञान
अर्थ दिमाग से जानना समझते हैं। पर वास्तव में केवल आंखों से देख
दर्शन नहीं है। जब तक दिमाग का सहयोग नहीं मिलता, तब तक च
कोई व्यक्ति आंखें फाड़ह्नफाड़ कर कितना ही क्यों न देखे, उसे दिख
नहीं देगा, दर्शन नहीं होगा। दर्शन तभी होगा, जब आंखों को दिमाग
सहयोग प्राप्त होगा। यह दर्शन, चक्षुदर्शन कहलाता है।

आंखों की तरह ही दिमाग के सहयोग से कान, नाक, जीभ अ
स्पर्श से भी देखा जाता है। यह भी दर्शन, चक्षुदर्शन नहीं, अच्क्षुदर्श
कहलाता है। जैसेह्नआपके कानों में कोई ध्वनि पड़ी। यद्यपि आपने आं
से कुछ नहीं देखा, तथापि कानों में ध्वनि पड़ते ही आपने देखा कि कु
है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों तथा मन के द्वारा जो प्रथम क्षण का दर्श
होता है, वह अचक्षुदर्शन कहलाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न : अज्ञान

प्रथम क्षण के दर्शन के पश्चात जब व्यक्ति अवग्रह, ईहा, अवाय र धारणा में जाता है तो 'कुछ है' इस स्पष्ट चित्र को क्रमशः स्पष्ट ा लेता है। यह ज्ञान कहलाता है।

ज्ञान के संबंध में एक बात जान लेना बहुत जरूरी है। ज्ञान के थ यर्थाथ और अयथार्थ दृष्टिकोण का बहुत गहरा संबंध है। यदि ज्ञान साथ व्यक्ति का दृष्टिकोण सही नहीं है, यानी गलत है तो उसका न, ज्ञान न कहलाकर, अज्ञान कहलाएगा। अयथार्थ दृष्टिकोणवाले की ा, विद्या नहीं, अविद्या कहलाएगी। जैन-दर्शन में जिसे ज्ञान कहा गया उसे वेदांत में विद्या बतलाया गया है। आप इस बात पर गहराई से ान दें कि अज्ञान का अर्थ मात्र ज्ञान का अभाव नहीं है, अपितु मिथ्या टिकोणयुत ज्ञान भी अज्ञान ही है।

हम देखते हैं, ज्ञान तो छोटे-छोटी चींटियों को भी होता है। फिर सी अपेक्षा से तो उनहें हम सी भी अधिक ज्ञान होता है। मान जिए, यहां पर कहीं जरा-सी चिकनाहट है। आपको संभवतः उसका ा नहीं चलेगा। पर चींटियों को तुरंत पता लग जाएगा वे सैकड़ों की ख्या में यहां आकर इकट्ठा हो जाएंगी। हम लोग जिस स्थान पर जन करते हैं, उस स्थान को साधु लोग हाथ से साफ करते हैं। मैं से कहता हूं, सफाई ठीक से करना, कहीं असावधानी से कुछ रह न ए। तुम्हारी सफाई की परीक्षा चींटियां और मक्खियां करेंगी। सफाई ने के बावजूद जब-कभी कुछ रह जाता है तो तत्काल चींटियां और क्खियां वहां आकर बैठने लगती हैं। तब मैं साधुओं से कहता हूं, यहां ारा सफाई करो। यहां कुछ-न-कुछ रह गया है। कहने का सरांश यह कि चींटियों, मक्खियों आदि को भी किसी अपेक्षा से हमारे से अधिक न हो सकता है। पर यथार्थ दृष्टिकोण के अभाव में उनका ज्ञान अज्ञान कहलाता है।

प्रमिक अपेक्षा

हम प्रतिक्रमण में प्रतिदिन कहते हैंह्नमिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं संपवज्जामिह्नमैं मिथ्याात्व को छोड़ता हूं और सम्सक्त्व को स्वीकार ता हूं। यह मिथ्यात्व क्या है? मित्यात्व का अर्थ हैह्नदृष्टिकोण की यथार्थता। सम्यक्त्व का अर्थ हैह्नदृष्टिकोण की यथार्थता। आप गृहस्थ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हैं। गृहस्थ को जीवनयापन के लिए अनेक प्रकार की हिंसा करनी पड़
है। क्यों ? इस 'क्यों' का उत्तर बहुत स्पष्ट है। उसके बिना उस
काम नहीं चलता। पर काम नहीं चलता या अनिवार्य है, इसलिए हि
अहिंसा नहीं हो सकती। हिंसा को हिंसा ही समझा जाए और अहिंसा
अहिंसाह्नयह दृष्टिकोण की यथार्थता सम्यक्त्व है। यानी हिंसा को हिं
अहिंसा को अहिंसा, अधर्म को अधर्म और धर्म को धर्म मानना सम्यक
है। पर हिंसा को यदि अहिंसा माना जाता है तो दृष्टिकोण अयथार्थ
जाता है, मिथ्यात्व आ जाता है। इसलिए सबसे पहली अपेक्षा यह है
व्यक्ति का दृष्टिकोण यथार्थ बने। यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण यथार्थ
जाता है तो बुराई से मुक्त होने में उसे समय नहीं लगता। किंतु
तक दृष्टिकोण ही अयथार्थ है, तब तक वह बिना मजबूरी भी बुराई
पकड़े रहता है।

दही खूब खाओ !

वैद्य के पास एक खांसी का मरीज आया। वैद्य उसकी न
देखकर उसे कुछ औषध/उपचार बताता, उससे पहले ही वह बो
उठाह्न'वैद्यजी ! मैं कड़वी-से-कड़वी दवा लेने को तैयार हूं, पर
छोड़नेह के लिए आप मुझे मत कहना। मैं अब तक जितने वैद्यों के प
गया, वे सभी-के-सभी न जाने क्यों दवा की बात तो बाद में करते
और दही छोड़ने की बात पहले ही शुरू कर देते हैं।'

वैद्य अनुभवी था। उसने सोचाह्नमनोवैज्ञानिक ढंग से बात क
चाहिए। यदि मैं सीधा ही इसे दही छोड़ने की बात कहूंगा तो बहुत सं
है कि यह कभी स्वीकार नहीं करेगा। अतः उसने रोगी से कहाह्न'
छोड़ने की कोई अपेक्षा नहीं है। तुम दही खूब खाओ। कल तक यदि
बार खाते थे तो आज से चार बार खाना शुरू कर दो।'

मरीज वैद्य की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहाह्न'अ
ही मुझे एक अच्छे और समझदार वैद्य मिले हैं। शेष तो जितने
आज तक मिले, वे सारे-के-सारे मूर्ख थे। अच्छा, अब मुझे दा
लेनी है?'

वैद्य ने कहाह्न'दवा की कोई जरूरत नही। दही स्वयं दवा है।
गया हैह्न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कासो दध्नो भोजनेन, लाभाः सन्ति त्रयो ध्रुवम्।
न वार्धक्यं न वा चौर्यं, न श्वा भक्षयति क्वचित्।।

ह्न खांसी में दही खानेवाले को तीन लाभ होते हैंह्नवह कभी बुढ़ापे को प्राप्त नहीं होता। (उसका शरीर इतना जर्जरित हो जाता है कि बुढ़ापा आने से पूर्व ही वह काल को प्राप्त हो जाता है) उसके घर में कभी चोरी नहीं होती। (रात भर खांसते-खांसते निकालनी होती है। नींद हराम हो जाती है। घर का कोई सदस्य जागता हो, ऐसी स्थिति में चोर आएका ही कैसे ?) उसे कुत्ता नहीं काटता। (निरंतर खांसने से उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। श्वास फूलने लगता है। अतः बिना लाठी दस कदम भी चलना उसके लिए कठिन हो जाता है। और जब हाथ में लाठी हो तो कुत्ता पास आ भी कैसे सकता है? फिर काटने की तो बात बहुत पीछे छूट जाती है।)'

वैद्य की बात सुनकर रोगी आज पहली बार दही खाने के परिणामों से परिचित हुआ। दही के प्रति उसकी आसक्ति टूट गई। वह ...ाह्न'तब तो मैं दही खाना छोड़ूंगा।'पर वैद्य ने उसी लहजे में फिर ...ाह्न'तुम खुशी से दिल भर दही खा सकते हो। मैं तुम्हें दही छोड़ने के ...ए बिलकुल नहीं कहता।' लेकिन रोगी का दृष्टिकोण अब परिवर्तित हो ...का था। उसने उसी क्षण दही न खाने का मानसिक संकल्प कर लिया।

...से बड़ा पाप

मैं मानता हूं, व्यभिचार पाप है, मदिरा-पान पाप हैं, मांस खाना ... है, शोषण पाप है ब्लेक-मार्केटिंग पाप है, पर इन सबसे भी बड़ा ... हैह्नदृष्टिकोण की अयथार्थता। मदिरापान को बुराई मानते हुए यदि ...ई व्यक्ति अपनी मानसिक कमजोरी या मजबूरीवश शराब पीता है तो ... केवल स्वयं पागल बनता है, दूसरों को पागल नहीं बनाता, क्योंकि ...ष्टिकोण सम्यक होने के कारण वह दूसरों को कभी उसके पीने की ...णा या प्रात्साहन नहीं देता। इसके विपरीत जिस व्यक्ति का इस बारे ... दृष्टिकोण ही अयथार्थ है, वह स्वयं तो शराब पीकर पागल होता ही ... साथ-ही-साथ संपर्क में आनेवाले दूसरे-दूसरे लोगों को भी प्रोत्साहन ...र प्रेरित कर उनहें शराबी बनाने में सहयोगी बनता है। यानी वह ...ाई को आगे-से-आगे बढ़ाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यथार्थ दृष्टिकोण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि आज च
व्यक्ति मजबूरीवश या दुर्बलतावश बुराई करता है, किंतु जैसे ही उस
मजबूरी समाप्त हो जाएगी या दुर्बलता मिट जाएगी, वह यथाशीघ्र बु
से मुक्त बन जाएगा। पर जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण ही अयथार्थ है,
हर स्थिति में बुराई को बढ़ावा देगा। इसलिए मैंने कहा, सब पापों
मिथ्या दृष्टिकोण का पाप सबसे बड़ा है।

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

हमारे यहां प्रसिद्ध कहावत हैह्न**जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।** मैं मान
हूं, यह बहुत गरी और शतशः यथार्थ उक्ति है। एक राही अपने गांव
पड़ोस के दूसरे गांव को जा रहा था। मार्ग में सामने से आता हुआ
व्यक्ति उसे मिला। वह उसी गांव से आ रहा था, जिस गांव वह र
जा रहा था। उसने उस व्यक्ति से प्रश्न कियाह्न'भाई ! तुम जिस गांव
आए हो, वह कैसा है ? वहां के लोग कैसे हैं?'

उस व्यक्ति ने प्रश्न का सीधा उत्तर देने के साथ पर प्रतिप्र
कियाह्न'राही ! तुम जिस गांव से आ रहे हो, वह कैसा है? वहां के लो
कैसे हैं ?' उत्तर दियाह्न'वह गांव तो बिलकुल रद्दी है। वहां के लोगों
तो बात ही मत पूछो। वे इतने निम्न-स्तर के हैं कि कोई भला आद
एक दिन भी उनके साथ नहीं रह सकता।' उस व्यक्ति ने अपने ग
और गांववासियों का स्थिति बताते हुए कहाह्न'यह गांव तो उस गांव
भी ज्यादा खराब है। यहां के लोग तो इतने क्रूर हैं कि एक दिन
बहुत बड़ी बात है, एक घंटा भी किसी भले आदमी का उनके स
रहना असंभव है।'

दोनों का वार्तालाप अभी पूरा हुआ ही नहीं था कि एक अन्य र
भी पहुंच गया और संयोग से उसने भी उस व्यक्ति से वही प्रश्न कि
जो पहले राही ने किया था। उस व्यक्ति ने इस बार भी प्रश्न किया,
पहले राही ने किया था। उस व्यक्ति ने इस बार भी प्रश्न का जवाब
की वही शैली अपनाई, जो पहले रही के लिए अपनाई थी। यह ग
कैसा है और गांव के लोग कैसे हैं, इस प्रश्न के उत्तर में उसने व
प्रतिप्रश्न कर दियाह्न'तुम जिस गांव से आए हो, वह कैसा है और व
के लोग कैसे हैं?' उस दूसरे राही ने गांव के प्रति अपनी अवधार
बताते हुए कहाह्न'वह गांव तो बहुत अच्छा है। वहां के निवास अत

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ो एवं शिष्ट हैं।' छुटते ही वह व्यक्ति बोलाह्न'यह गांव तो उससे भी
धिक अच्छा है। यहां के लोगों की भद्रता और शिष्टता का तो कहना
क्या ! एक बार उनसे मिलने के बाद जीवन भर उनकी स्मृति बनी
ती है।........'

वह पहला राही भी उन दोनों के इस वार्तालाप को सुन रहा था।
व्यक्ति की परस्पर विरोधी बातों को सुनकर उससे रहा नहीं गया।
ने उस व्यक्ति को बीच में ही टोकते हुए कहाह्न'इतनी जल्दी बदल
तुम! दो मिनिट पहले तक तो इस गांव को और इसके निवासियों
तुम बिलकुल निकृष्ट बता रहे थे और अब अच्छे बताने लगे! ' वह
क्ति बोलाह्न'तुम समझे नहीं मेरी बात को। गांव के वासी अच्छे या
नहीं होते। अच्छी या बुरी तो व्यक्ति की अपनी दृष्टि होती है। जिस
क्ति की दृष्टि अच्छी है, उसे हर गांव और हर व्यक्ति अच्छा
गा। इसके विपरीत जिसकी दृष्टि दोषदर्शी है, उसे हर गांव और हर
क्ति बुरा ही प्रतीत होगा। महाभारत का एक प्रसंग है। श्रीकृष्ण के
न्निध्य में चर्चा चल पड़ी कि द्वारिका नगरी में अच्छे मनुष्य कितने हैं
र बुरे मनुष्य कितने हैं। सबने अपने-अपने ढंग से समाधान किया।
कोई निर्णयात्मक बात सामने नहीं आ सकी। आखिर श्रीकृष्ण ने
को समझाने की एक युक्ति सोची। उन्होंने दुर्योधन और धर्मपुत्र
धिष्ठिर दोनों को इस बात का पूरा-पूरा ब्यौरा लाने के लिए नगरी में
ा। दोनों द्वारिका में खूब घूमे। व्यक्ति-व्यक्ति से उन्होंने संपर्क
धा। जानकारी प्राप्त की। आखिर पूरी द्वारिका का चक्कर लगाकर वे
स श्रीकृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए। सभा जुड़ी हुई था। श्रीकृष्ण ने
र्धन से पूछाह्न*बोलो, द्वारिका में अच्छे आदमी कितने हैं और बुरे
दमी कितने?* दुर्योधन ने कहाह्न*द्वारका का चप्पा-चप्पा मैंने छान लिया।
-एक व्यक्ति को मैंने निकटता से देखा। पा एक भी भला आदमी
ो नहीं मिला। सब बुरे-ही-बुरे मिले।* 'अब धर्मपुत्र युधिष्ठिर की बारी
। उससे भी वही प्रश्न किया गया। धर्मपुत्र ने कहाह्न'*द्वाराका में मैं
ब घूमा। पर मुझे तो नगरी में सब भले-ही-भले मनुष्य मिले। एक
क्ति भी ऐसा नहीं मिला, जिसे मैं बुरा कह सकूं।* दोनों के अध्ययन
-दूसरे को बिलकुल काटनेवाले थे। अतः समस्या का समाधान नहीं
ा। किसकी बात सही मानी जाए? श्रीकृष्ण ने दोनों को क्रमशः
ने-अपने कथन को स्पष्ट करने का निदेश दिया दुर्योधन खड़ा हुआ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

और बोलाह्न*'महाराज ! मैं जितने व्यक्तियों से मिला,उनमें से प्रत किसी-न-किसी बुराई से ग्रस्त है। कोई चोरी करता है, कोई झूठ बोल है। कोई वेश्या-गमन करता है। मदिरा पीता है। कोई*······सर्वथा बुराई मुक्त कोई भी व्यक्ति मुझु नहीं मिला।' अब धर्मपुत्र खड़ा हुआ। उ कहाह्न*'मैंने व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को टटोला है। मुझे एक भी ऐ व्यक्ति नहीं मिला, जिसके जीवन में किसी-न-किसी प्रकार की अच्छा गुण न हो। कोई सत्यवादी है। कोई शीलसंपन्न है। कोई ज्ञानसंपन्न कोई······· सर्वथा गुणहीन व्यक्ति मुझे पूरी द्वारिका में एक भी नहीं मिल* अब श्रीकृष्ण ने मर्म का उद्घाटन करते हुए कहाह्न*द्वारिका नगरी वही जनता वही है। पर दृष्टि अपनी-अपनी है। जहां गुणहीन दृष्टि है, व सब अच्छे-ही-अच्छे हैं। इसके विपरीत जहां अवगुणग्राही दृष्टि है, व सब बुरे-ही बुरे हैं।'*

यह कथा सुनकर यह राही तत्त्व समझ गया। बंधुओं ! आप समझ गए होंगे तत्त्व । ज्ञान से पहले अपने दृष्टिकोण को सही बन की अनिवार्य अपेक्षा है। यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण सही है तो बुराई ग्रस्त होने के बावजूद वह उस व्यक्ति से बहुत अच्छा है, जो बुराई करता हुआ भी बुराई को अच्छा समझा है। जैसाकि मैंने अभी कहा दृष्टिकोण यथार्थ बनने के पश्चात व्यक्ति बुराई को छोड़ने की दिशा बहुत आसानी से गतिशील हो जाता है, जबकि दृष्टिकोण अयथा मिथ्या बनने के पश्चात व्यक्ति बुरेकाई को छोड़ सकने की स्थिति होने के बावजूद उससे मुक्त नहीं हो पाता।

यों तो हम गृहस्थ हैं!

मैं आत्रा पर था। एक गांव में मैंने प्रवचन किया। चूंकि धर्म-प्रव सुनने का अधिकार हर व्यक्ति को है, इसलिए मरे प्रवचन में जैन तेरापंथी ही नहीं, अपितु विभिन्न वर्गों के लोग उपस्थित थे। एक सेना अफसर ने भी प्रवचन सुना। प्रवचनोपरांत मैं अपने स्थान पर गया। अफसर भी वहां आया और मेरे सामने आकर बैठ गया। मैंने उर बातचीत करनी शुरू की। मेरे पीछे कुछ जैन बंधु भी बैठ गये थे। उस व्यक्ति से वार्तालाप करते देख उन्होंने संकेतों के द्वारा मुझे समझाने की चेष्टा की। पर मैंने उनके संकेतों की तरफ ध्यान दिए कुछ समझाने की चेष्टा की। पर मैंने उनके संकेतों की तरफ ध्यान

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ा वार्ता चालू रखी। यह देख कर उन्होंने एक अन्य प्रकार से मुझे
झाने का प्रयत्न किया। एक भाई ने आकर मेरे पट्ट को पीछे से
खटाया। पर यह प्रयत्न भी विफल रहा। इस बार प्रयत्न और तीव्र
। एक भाई ने मेरे कान के समीप आकर धीमे से कहाह्न'आचार्यजी !
प किससे बात कर रहे हैं, यह व्यक्ति बात करने के काबिल नहीं है।'
उसके कथन के आशय को पूरा समझ नहीं पाया तब वह अपने आशय
स्पष्ट करता हुआ बोलाह्न'यह आदमी बहुत बड़ा शराबी है, इसलिए
प इससे बात न करें।' मैंने उस भाई की बात सुन ली और पुनः वार्ता
भ कर दी। मैंने बात-ही-बात में अफसर से पूछ लियाह्न'तुम्हारा जीवन
ा है?' उसने बड़ी सरलता के साथ कहाह्न'मत पूछिए महाराज ! मुझे
ाब पीने की लत पड़ गई थी। बहुत शराब पीता था मैं।' तब मैंने
ाह्न'अब क्या स्थिति है?' उसने कहाह्न'अब तो काफी कम कर दी है।'
उसके मानस को पढ़ा। इस बुराई के प्रति उसके मन में गहरी ग्लानि
। मैंने अवसर को समझा और कहाह्न'अब थोड़ी शेष क्यों रखी है?'
आत्मविश्वासपूर्वक बोलाह्न'आपकी कृपा और आशीर्वाद सदा है और
ा रहेगा।' बस, यह तत्काल खड़ा हो गया और उसने जीवन भर के
ए शराब न पीने का संकल्प स्वीकार कर लिया।

उसके चले जाने के पश्चात मैंने उन जैन बंधुओं की ओर अपनी
टि घुमाते हुए प्रश्न की भाषा में कहाह्न'आप लोग क्या करते हैं?'

मेरे प्रश्न के उत्तर में सबने अपने-अपने धंधों के बारे में बताया।
ा लगा कि उनमें अधिकतर किराना, गल्ला, कपड़ा आदि के व्यापारी
मैंने उनसे पूछाह्न'क्यों भाइयों ! आप अपने अपने धंधे में नकली को
सली बताकर तो नहीं बेचते हैं।' वे लोग बोलेह्न'महाराज ! यों तो हम
स्थ है। गृहस्थ में सब कुछ चलता है।' मैंने प्रेरणा के स्वर में
ाह्न'खैर, अब तक आपने जो कुछ किया सो किया, पर आज से तो
बुराई को छोड़ दें।' अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्होंने
ाह्न'नहीं महाराज ! यह छोड़ दें तो हमारा व्यापार कैसे चले?' मैंने
रा प्रश्न कियाह्न'आप लोग तौल-माप में कमी-बेसी तो नहीं करते
' इस बार भी उनका लगभग पहलेवाला ही उत्तर थाह्न'यों तो हम
स्थ हैं, बाल-बच्चेदार हैं। हमें सब कुछ करना पड़ता है।' मैंने उन्हें
त करते हुए कहाह्न'अब तो छोड़ दें इसे।' उन्होंने अपनी असमर्थता
क्त कीह्न'इसे छोड़ दें तो हम भूखे मर जाएं।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मैंने यों एक-एक बुराई के बारे में पूछा और उनको छोड़ने के लि
प्रेरित किया। पर हर बार उनका लगभग वही उत्तर थाह्न‘हम गृहस्थ
गृहस्थ को सब-कुछ करना पड़ता है। इसके बिना हमारा काम न
चलता......’

मैंने उन्हें समझाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पर मे
सारा प्रयास विफल रहा। वे अपने आचरण और व्यवहार में तनिक
परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हुए। तब दो क्षण रुककर
कहाह्न‘एक शराबी व्यक्ति से आपके गुरु बातचीत करें, इसमें तो आप
इतनी आपत्ति है, जबकि उसने मेरी प्रेरणा से शराब सदा के लिए छ
दी। दूसरी तरफ अपने-आपको भक्त मानते हुए भी आप लोग बुराईयों
गहरे चिपके हुए हैं, उनहें छोड़ने के लिए बिलकुल भी तेयार नहीं हैंह्न
बात का आपके मन में किंचित भी विचार नहीं है। मैं पूछना चाहता
मेरा उस शराबी व्यक्ति से बात करना ज्यादा सार्थक था या आपसे
यदि मैं उससे बात नहीं करता तो उसे शराब से मुक्त बनने की प्रेर
कैसे देता और वह शराब से इतनी जल्दी छुटकारा कैसे पाता ? शरा
होने के बावजूद मैं उसको आप लोगों की अपेक्षा अधिक ठीक समझ
हूं, क्योंकि उसका दृष्टिकोण सही है। वह बुराई को बुराई समझता
किंतु आप लोग बुराई करते हुए भी उसे बुराई नहीं मान रहे हैं।’

बंधुओ! यह दृष्टिकोण का मिथ्यात्व सचमुच बड़ा खतरनाक
इस गलत दृष्टिकोण के कारण ही व्यक्ति बड़े-बड़े पाप करता है। जि
व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक बन जाता है, वह फिर ग्राहकों को धो
नहीं दे सकता, झूठा तौल-माप नहीं कर सकता, शोषण व भ्रष्टाचार
सहारे धन का उपार्जन नहीं कर सकता।.......

दृष्टिकोण की अस्पष्टता

दृष्टिकोण की अयथार्थता की तरह दृष्टिकोण की अस्पष्टता
कारण भी कभी-कभी नुकसान हो जाता है। इस बात को मैं एक-
उदाहरणों से स्पष्ट करना चाहूंगा। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों
कहाह्न‘भिक्षुओ ! तुम्हें भिक्षा में सहज रूप से चिकना-चुपड़ा या रूख
सूखा, गर्म या ठंडा-बासी, सुगंधित या दुर्गंधित जेसा भी भोजन प्र
हो, उससे अपना काम चलाओ। पर कभी किसी वस्तु की गृहस्थ
योचना मत करो।’ भिक्षुओं ने महात्मा बुद्ध की बात सजल रूप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ीकार की। एक दिन एक भिक्षु भिक्षा के लिए जा रहा था। रास्ते में
चील के मुंह से छूटकर एक मांस का टुकड़ा उसके भिक्षा-पात्र में
र पड़ा वह बहुत दुविधा में फंस गया। एक तरफ भिक्षुचर्या में मांस
ने का कोई विधान नहीं और दूसरी तरफ शास्ता बुद्ध का यह आदेश
जो भी भिक्षा-पात्र में सहज रूप में आ जाए, उसे खा लेना चाहिए।
ने काफी चिंतन किया, पर किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया। तब
महात्मा बुद्ध के पास आया और उन्हें सारी बात निवेदित की। गौतम
द्व ने सोचाह्नचील कोई रोज तो आने को रही। यह तो कोई संयोग
। अतः इसे खाने में कोई आपत्ति नहीं । अपने चिंतन के अनुसार
होंने उस भिक्षु को वह मांस का टुकड़ा खाने की आज्ञा दे दी।
ात्मा बुद्ध ने आज्ञा क्या दी, मांस-भक्षण शुरू हो गया। अब प्रतिदिन
क्षा में मांस आने लगा। महात्मा बुद्ध ने यह तो सोच लिया कि चील
न कहां आने को है, पर दृष्टिकोण की अस्पष्टता के कारण यह नहीं
च पाए कि मांस आने के दूसरे-दूसरे रास्ते बहुत हैं। इस छूट से बौद्ध
क्षु मांसाहारी बन जाएंगे।

इस संदर्भ में एक दूसरा उदाहरण और देखें। महात्मा बुद्ध से पूछा
ाह्न'प्राण-वध करना चाहिए या नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया ....'प्राण-वध
ना सर्वथा त्याज्य है, खाने के लिए भी वध नहीं करना चाहिए।' लोगों
इसका अर्थ यह लिया कि वध करके मांस नहीं खाना चाहिए। सहज
से मरे हुए पशु-पक्षियों का मांस खाने में कोई आपत्ति नहीं है।
का परिणाम हमारे सामने प्रत्यक्ष हे। आज लगभग सारा बौद्ध-समाज
ाहारी है। बौद्ध धर्मावलंबी देशों में जाकर आप देखें, वहां होटलों के
र लिखा मिलेगाह्नयहां बिन प्राण-वध का मांस मिलता है। (यद्यपि
का अधिकांश पशु-पक्षियों का वध करके ही बनाया जाता है!)

मेरे मन में गौतम बुद्ध के प्रति तनिक भी असम्मान की भावना
ीं है। वे एक महापुरुष थे, इसमें मुझे किंचित भी संदेह नहीं है। मैं
ी नहीं मानतघा कि उन्होंने मांसाहार का समर्थन किया था। पर इतना
श्यक कहता हूं कि दृष्टिकोण की अस्पष्टता के कारण वे इस बात
गहराई से नहीं सोच सके। इसीलिए यह स्थिति बनी। यदि उस
ाय गौतम बुद्ध इस बात पर गहराई से चिंतन कर लेते तो मुझे
वास है कि वे स्पष्ट रूप से मांसाहार का निषेध कर देते और
का बहुत संभावित सुपरिणाम यह होता कि आज बौद्ध-समाज

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मांसाहारी नहीं होता।

इतना तो अवश्य करें !

बंधुओ! यथार्थ दृष्टिकोण के महत्त्व को आप भलीभांति समझ होंगे। मैं मानता हूं, जो व्यक्ति सम्यक दृष्टि को प्राप्त हो जाता है, दूसरे के गुणों को देखकर कभी ईर्ष्या नहीं कर सकता। भले वह स कोई अच्छा कार्य न भी कर सके, पर सत्क्रिया करनेवालों की स प्रशंसा करेगा। मैं मानता हूं, यह भी एक बहुत ऊंची बात है। उपाध्य विनयविनयजी की पंक्तियां मेरी स्मृति में आ रही हैंह्न

- **दिष्ट्याऽयं वितरित बहुदानं, वरमयमिह लभते बहुमानम्।**
  किमित न विमृशसि परपरभागं, यद्विभजसि तत्सुकृतविभागम्।।
- **येषां मन इह विगतविकारं, ये विदधति भुवि जगदुपकारम्।**
  तेषां वयमुचिताचरितानां, नाम जपामो वारं वारम्।।
- **तात्त्विक-सात्त्विक-सुजन-वतंसाः, केचन युक्तिविवेचनहंसाः।**
  अलमकृषत किल भुवनाऽऽभोगं, स्मरणममीषां कृतशुभयोगम्।।

इन पद्यों का सारांश यही है कि व्यक्ति चाहे त्याग व तपस्या रूप में धर्माराधना नहीं कर सकता, पर कम-से-कम इतना तो अव करे कि जो लोग त्याग-तपस्या के द्वारा धर्म की आराधना करते उनको अच्छा समझे, उनका गुणोत्कीर्तन करे। गुणी का गुणगान करने भी व्यक्ति बहुत-कुछ लाभ प्राप्त कर सकता है। पर जैसाकि मैंने प ही कहा, यह तभी संभव है, जब व्यक्ति का दृष्टिकोण यथार्थ हो। यथ दृष्टिकोण के अभाव में यह कभी संभव नहीं है। इसलिए सबसे पह अपेक्षा यही है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण सही बने। सही दृष्टिकोणयु ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।

गंगाशहर

१३ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३१ : मतिज्ञान के प्रकार

साकार और अनाकार उपयोग की संक्षिप्त चर्चा मैंने पिछले प्रवचनों
की। अब हम विस्तार में उनको समझें।

विशेषग्राहित्वाज्ज्ञानं साकारः।[१]

सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनः सामान्यधर्मान् गौणीकृत्य विशेषाणां
हकं ज्ञानं आकारेणह्नविशेषण सहितत्वात् साकार उपयोग इत्युच्यते।

ज्ञान पदार्थ के विशेष धर्मों का ज्ञाता होता है, अतः उसे साकार
योग कहते हैं। प्रश्न होगा, विशेष किसे कहा जाता है ? व्यवहार में
सामान्य नहीं है, विशेष कहा जाता है। इसी प्रकार जो विशेष नहीं है,
कुछ सूत्रों को परिवर्तित किया गया है। उसी क्रम में अमुक सूत्र के
ान पर निम्नांकित सूत्र रखा गया हैह्न

पर्यायग्राहित्वाज्ज्ञानं साकारः।

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस्य द्रव्यस्य ध्रौव्यं गौणीकृत्य उत्पादव्य-
योर्ग्राहकं ज्ञानं साकार उपयोग इत्युच्यते। अयं अकारेण पर्यायेण
सहितत्वात्। सविकल्प उपयोग इत्यस्य पर्यायः।

ज्ञान द्रव्य के पर्यायों को ग्रहण करता है, अतः उसे साकार उपयोग
ा जाता है।

द्रव्य के तीन धर्म होते हैंह्नउत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। इनमें ध्रौव्य
को गौणकर उत्पाद और व्यय को ग्रहण करनेवाला ज्ञान साकार
योग कहलाता है। यह आकारह्नपर्यायसहित होने के कारण साकार है।
इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। इसका दूसरा नाम हैह्नसविकल्प उपयोग।

साकार उपयोग की पूर्व व्याख्या और इस नई व्याख्या में कोई
लिक अंतर नहीं है। मात्र विवक्षाभेद है। इस विवक्षा में विशेषग्राही

जैनसिद्धांतदीपिका के तृतीय संशोधित संस्करण (सन १९८२) में।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अर्थात भेदात्मक ज्ञान के स्थान पर पर्यायत्मक ज्ञान के रूप में साव
उपयोग को व्याख्यायित किया गया है। सामान्य कहा जाता है।
प्रस्तुत संदर्भ में विशेष और सामान्य दोनों ही शब्द इनसे भिन्न अर्थों
प्रयुक्त हुए हैं। विशेष का अर्थ हैह्नभेदात्मक। सामान्य का अ
हैह्नअभेदत्मक।

हम जानते हैं कि हर वस्तु में सामान्य और विशेष दो प्रकार
धर्म होते हैं। उदाहरणार्थह्नहाथ में पांच अंगुलियां अभेदात्मक दृष्टि से
अंगुलियां हैं। पर जहां हम उन्हें कनिष्ठ, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी अ
अंगुष्ठ-इन पांच अलग-अलग भागों में विभक्त करते हैं, वहां हम
दृष्टि भेदात्मक हो जाती है। संसार में अरबों मनुष्य हैं। यह अभेदात्
दृष्टि है। पर जब हम उन्हें भेदात्मक दृष्टि से देखते हैं तो ये पुरुष
यह अभेदात्मक दृष्टि है। पर जब हम उन्हें भेदात्मक दृष्टि से देखते
तो ये पुरुष हैं, ये महिलाएं हैं, ये लड़के हैं, ये लड़कियां हैं, ये जवान
ये वृद्ध हैं, ये भारतवर्ष के वासी हैं, ये विदेशी हैं........इस प्रकार भेद ह
ही जाएंगे। इनका कोई अंत आनेवाला नहीं है। यह भेद और अभेद स
पदार्थों में पाया जाता है।

भेद और अभेद उपयोगी हैं

आप कहेंगे कि हम तो समन्वय के सिद्धांत को माननेवाले
इसलिए हमें तो अभेद की बात करनी चाहिए, भेद की बात ही क्यों क
मैं मानता हूं, अभेदात्मक दृष्टि बहुत अच्छी है, पर इसका यह तात
कदापि नहीं कि भेदात्मक दृष्टि सर्वथा बुरी है। वस्तुतः अपने-अ
स्थान पर अपेक्षाभेद से दोनों ही दृष्टियां उपयोगी और आवश्यक हैं।
भी उतना ही आवश्यक है, जितना अभेद। अलबत्ता इतना अवश्य है
यह भेदात्मक दृष्टि केवल तत्त्व को सूक्ष्मता से समझने-समझाने के लि
होना चाहिए, लड़ने-झगड़ने के लिए नहीं।

भेदात्मक गुण का महत्त्व और उपयोग हम व्यवहार में भी स्प
देखते हैं। जहां इसका अभाव होता है, वहां कई बार बड़ी समस्या ख
हो जाती है। दूध गाय का भी होता है, भैंस का भी होता है, आक अ
थोर का भी होता है। यदि अभेदात्मक दृष्टि न हो तो बहुत संभव है
व्यक्ति गाय के दूध के स्थान पर आक का दूध ले आए, थोर का
ले आए। दो सगी बहिनों की एक साथ शादी हुई बरातें रवाना होने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

य दोनों के वर परस्पर बदल गए। ऐसा क्यों हुआ? यह इसलिए ा कि भेदात्मक दृष्टि नहीं थीं। भेदात्मक दृष्टि होती तो ऐसा कभी ीं होता कि लड़की की शादी तो किसी के साथ हुई हो और वह जाए सी दूसरे के साथ। यह कोई कल्पित कहानी नहीं, अपितु घटित ना है। इस प्रकार की अनेक बातें आए दिन हमारे आती रहती हैं। इन के पीछे मूलभूत कारण भेदात्मक दृष्टि का अभाव हही होता है। इसी ार अभेदात्मक दृष्टि भी व्यवहार में बहुत उपयोगी है। उसके अभाव भी व्यक्ति के सामने नाना प्रकारकी समस्याएं उपस्थित हो जाती हैं।

न के प्रकार

दर्शन की भाषा में इस भेदात्मक प्रतीति को ज्ञान और अभेदात्मक ोति को दर्शन कहा गया है। अब आप ज्ञान के भेदों को समझेंह्र

मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलानि।

ज्ञानके पांच प्रकार हैंह्र१. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान ५. केवलज्ञान।

तिज्ञान

इन्द्रियमनोनिबन्धनं मतिः।

मतिः, स्मृतिः, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध इति एकार्थाः।

मनन या मस्तिष्क का ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है। दूसरे शब्दों में ्रियों और मन के द्वारा होनेवाले ज्ञान मतिज्ञान है। आप पूछेंगे कि तिज्ञान किस-किस में होता है। मैं पूछता हूं, मतिज्ञान किस-किस में ीं होता? और यही प्रतिप्रश्न इस प्रश्न का उत्तर है। अर्थात संसार के स्त प्राणियों में, चाहे वे सूक्ष्म हों या बाद, त्रस हों या स्थावर, नस्क हों या अमनस्क……सभी में यह ज्ञान होता है। यह दूसरी बात कि किन्हीं-किन्हीं प्राणियों का ज्ञान प्रकट होता है और किन्हीं-किन्हीं णियों का अप्रकट। मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोधह्रये सभी तिज्ञान के ही पर्यायवाची नाम हैं।

तिज्ञान के प्रकार

अवग्रहेहावायधारणास्तद्भेदाः

मतिज्ञान के चार प्रकार हैंह्र१. अवग्रह २. ईहा ३. अवाय ४. रणा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आप पूछेंगे कि अवग्रह किसे कहते हैं

इंद्रियार्थयोगके दर्शनानन्तरं सामान्ग्रहणमवग्रहः।

इंद्रियार्थयोरुचितदेशाद्यवस्थानरूपे योगे सति दर्शन अनुल्लिखितविशेषस्य समन्मात्रस्य प्रतिपत्तिः, तदन्तरं अनिर्देश सामान्यस्य (वस्तुनः) ग्रहणमवग्रहः।

इंद्रिय और पदार्थ का जब योग होता है, तब प्रथम क्षण में दर्शन होता है। उसे हम छोड़ दें। उसके पश्चात पदार्थ का जो प्रारंभि भेदात्मक ज्ञान होता है, वह अवग्रह है।

अवग्रह के प्रकार

व्यञ्जनार्थयोः।

व्यञ्जनह्नइंद्रियार्थसंबंधरूपेण, व्यञ्जनस्यह्नशब्दादेरथ ग्रहणमह्नअव्यक्तः परिच्छेः व्यञ्जनाग्रहः।

ततो मनाग् व्यक्तं जातिद्रव्यगुणकल्पनारहितमर्थग्र अर्थावग्रहः, यथा एतत् किञ्चिद् अस्ति।

अवग्रह के दो प्रकार हैंह्न१. व्यञ्जनावग्रह २. अर्थावग्रह।

व्यञ्जनावग्रह

अव्यक्त ज्ञान अवग्रह है। आप इसे और स्पष्टता में समझें। इं और पदार्थ का संबंध होने पर दर्शन के पश्चात जो प्रारंभिक भेदात ज्ञान होता है, वह अवग्रह है। इस ज्ञान में पदार्थ (व्यंजन) और इं (व्यंजन) का जो मिलन होता है या इंद्रिय (व्यंजन) द्वारा पदार्थ (व्यंज का जो ग्रहण होता है, वह व्यंजनावग्रह है।

अर्थावग्रह

अर्थावग्रह व्यञ्जनवग्रह से कुछ अधिक स्पष्ट होता है। इंद्रिय द्व पदार्थ का ग्रहण करने के पश्चात 'यह कुछ है' ऐसी प्रतीति हो अर्थावग्रह है।

ईहा

अमुकेन भाव्यमिति प्रत्यय ईहा।

अमुकस्तदितरो वा इति संशयादूर्ध्वं अन्वयव्यतिरेकपूर्व 'अमुकेन भाव्यम्', इति प्रत्यय ईहा, यथा-शब्देन भाव्यम्।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अवग्रह के पश्चात संशयात्मक ज्ञान होता हैह्नवह पदार्थ अमुक है दूसरा? इसके अनंतर यह विकल्प उठता हैह्नयह कान का विषय है, लिए यह शब्द होना चाहिए, स्पर्श नहीं। इस प्रकार अवग्रह द्वारा ने हुए पदार्थ का निश्चय करने के लिए विमर्श करनेवाले ज्ञान का न ईहा है।

ाय

अमुक एवेत्यवायः।

यथा अयं शब्द एव।

यह पदार्थ अमुक ही है, यह निर्णयात्मक ज्ञान अवाय कहलाता है, सेह्नयह शब्द ही है, स्पर्श नहीं है। अवाय ईहा के द्वारा किए गए ज्ञान समर्थन ही नहीं करता,अपितु उसका विशेष अध्ययनपूर्वक निर्णय भी ता है।

रणा

तस्यावस्थितिर्धारणा।

वासना, संस्कार इत्यस्याः पर्यायः। प्रत्येकमिन्द्रियमनसाऽव-ग्रहादीनां संयोगात् नयनमनसोर्व्यञ्जनावग्रहाभावाच्च मतिज्ञानमष्टा-विंशतिभेदं भवति।

निर्णययात्मक ज्ञान की अवस्थिति को धारणा कहते हैं जैसेह्नयह लटेन का प्रकाश है, ऐसा आज हमने निर्णय किया। अब हम सदा के ए यह निर्णय कर लेते हैं कि ऐसा प्रकाश लालटेन का ही होता है। निर्णयात्मक अवस्थित ज्ञान धारणा है। अवाय में भी निर्णयात्मक यति होती है, परन्तु उसके द्वारा किया गया निर्णय अधिक समय तक कता नहीं। मन में विषयांतरित होते ही वह दिमाग से निकल जाता है। ल अपना संस्कार पीछे छोड़ जाता है। वह स्मृति का हेतु होता है।

वासना तथा संस्कार ये दोनों धारणा के पर्यायवाची शब्द हैं।

पांच इंद्रियां और मन के साथ अवग्रह, ईहा आदि का गुणन करने मतिज्ञान के अट्ठइस प्रकार (६ह्न५=३०। चूंकि इंद्रिय और मन का जनावग्रह नहीं होता, अतः शेष २८) होते हैं।

ाशहर

अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३२ : श्रुतज्ञान

ज्ञान हमारी चेतना है। उसका जितना अधिक उपयोग करते
उतने ही हम लाभान्वित होते हैं। कल के प्रवचन में मैंने ज्ञान के प
प्रकार और उसके अनंतर मतिज्ञान का विवेचन किया था। आज
श्रुतज्ञान पर कुछ कहना चाहूंगा।

द्रव्यश्रुतानुसारि परप्रत्यायनक्षमं श्रुतम्।

द्रव्यश्रुतम्ह्नशब्दसंकेतादिरूपम, तदनुसारेण परप्रत्यायन
ज्ञानं श्रुत्तमभिधीयते।

श्रुत के सहयोग से मन और इंद्रियां जो ज्ञान करती हैं,
श्रुतज्ञान है। जो सुना जाता है, वह श्रुत है। स्वतः सुनने के लिए
दूसरों को सुनाने-समझाने के लिए श्रुत की अनिवार्य अपेक्षा है। दू
शब्दों में श्रुतज्ञान की यह परिभाषा भी की जा सकती हैह्नद्रव्यश्रुत
अनुसार दूसरों को समझाने में समर्थ ज्ञान ।

द्रव्यह्नश्रुत

शब्द, संकेत आदि का नाम द्रव्यश्रुत है। मैं बोल रहा हूं और अ
समझ रहे हैंह्नइसमें शब्दों की अहम भूमिका है। यदि मैं न बालूं तो अ
कैसे समझेंगे ? पर बहुत-सी स्थितियों में बिना शब्द भी समझाया
सकता है और समझाा जा सकता है। जैसेह्नमां ने आंख से जरा-
संकेत किया और बचा समझ गया कि मां मुझे यहांह्नसे उठकर च
जाने के लिए कह रही है।

मति और श्रुत का अंतर

आप पूछ सकते हैं मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या अंतर
मतिज्ञान भाव स्वयं के लिए होता है, जबकि श्रुतज्ञान स्व और पर दो
के लिए होता है। वैसे जब व्यक्ति को स्वयं जानता होता है, श्रुत

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ई जरूरत नहीं, पर जहां किस दूसरे व्यक्ति को समझाना है, वहां न का सहारा लेना ही होगा। वास्तव में वहां कतिज्ञान ही श्रुतज्ञान के प में परिणत होता है। दूध में चावल और चीनी डाली कि खीर बन । श्रुतज्ञान खीर के सदृश है और मतिज्ञान दूध के समान। आपका न हो सकता है कि श्रुतज्ञान किस-किसके पास होता है। श्रुतज्ञान तिज्ञान की तरह ही समस्त प्राणियों में पाया जाता है। ऐसा कोई प्राणी ीं, जिसमें श्रुतज्ञान न हो। यह एक अलग बात है कि कुछ प्राणियों का ज्ञान अधिक विकसित होता है, कुछ प्राणियों का अल्प विकसित और छ का अति अल्प विकसित। प्रायः मनुष्यों का श्रुतज्ञान विकसित होता पर कुछ लोगों को बहुत कम विकसित भी होता है। इसीलिए वे नी बात दूसरों को समझाने में सफल नहीं हो पाते। पशु-पक्षियों का न अल्प विकसित होता है। भूख लगती है तो वे आवाज करने लगते उनकी आवाज हम साधारणतया न भी समझ पाएं, पर वे तो झाने का प्रयत्न करते ही हैं। यह प्रयत्न श्रुतज्ञान के द्वारा ही होता वस्तुतः दूसरों को समझाने के लिए बहुत विकसित श्रुतज्ञान की क्षा होती है। आपने तीन-चार दिन पूर्व यहां विद्वानों को सुना। री सभा को हिला दिया उन्होंने। यह श्रुतज्ञान का ही प्रभाव था। वे बात को समझाने में सफल रहे कि *जैनागमकोश* एवं *जैनविश्वकोश* काम हाथ में लेकर हम सचमुच एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति कर हैं।

मैं प्रतिदिन प्रवचन करता हूं और उसके माध्यम से जन-जन को व समझाने का प्रयास करता हूं। यह दूसरी बात है कि सब श्रोता ान रूप से सारी बातें नहीं पाते। पर मेरा प्रयास तो सदा यही रहता कि सब समान रूप से तत्त्व को समझ पाएं। पूज्य कालूगणी बहुधा माया करते थेह्न'मेरी भावना है कि हमारे संघ वकज्ञा ळपप्रत्येक साधु चार्य-पद के योग्य बने। यह ठीक है कि एक समय में संघ में एक ही चार्य हो सकेगा, पर योग्यता तो सब प्राप्त कर ही सकते हैं।' यद्यपि जानते हैं कि ऐसा कभी संभव नहीं होता, तथापि गुरु की भावना तो ने शिष्यों को समान रूप से विकसित देखने की होती है। यही न मैं कह रहा हूं। यद्यपि सबको समान रूप से विकसित देखने की ी है। यही बात मैं कह रहा हूं। यद्यपि सबको समान रूप से समझाने बावजूद सब समान रूप से तत्त्वज्ञ नहीं बर सकेंगे, फिर भी मेरी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भावना और प्रयास तो सदा सबको समान रूप से तत्त्ववेत्ता बनाने का
रहेगा।

पूजनीय शास्त्र नहीं, ज्ञान है

आज हमारे सामने ग्रंथ, शास्त्र पुस्तकें आदि उपलब्ध हैं।
श्रुतज्ञान ही हैं। आप कहेंगे वे ज्ञान कैसे, क्या ज्ञान जड़ है वस्तुतः ग्र
शास्त्र, पुस्तकें आदि स्वयं ज्ञान नहीं, अपितु उनमें ज्ञान भरा है। उ
सहारे ज्ञान किया जाता है। दूसरों को ज्ञान कराने में वे निमित्त बनते
इस दृष्टि से उन्हें व्यवहार में श्रुतज्ञान कह दिया जाता है। आजक
स्थान-स्थान पर ज्ञान-मंदिर बन रहे हैं। पूर भवन की दिवारों पर ध
ग्रंथों को खुदवाकर या लिखवाकर उन्हें सज्जित किया जाता है। कु
लोग धर्म ग्रंथों की पूजा भी करते हैं। ऐसा करनेवाले स्वतंत्र हैं। उ
कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता। पर इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि
और प्रतिमा पूजने की वस्तुएं नहीं हैं, पूजने की वस्तु हैह्नज्ञान। पर ज्ञ
की पूजा धूप, दीप और चंदन से नहीं हो सकती। उसकी पूजा का
एकमात्र तरीका यह है कि सच्चे दिल से उसकी आराधना की आदर्शों
जीवन में उतारना कठिन होता है और उनकी धूप,दीप आदि से पू
करना बहुत सरल। इसलिए योग ने आदर्शों को अपनाना तो छोड़ दि
और धर्मग्रन्थों कका धूप, दीप आदि से पूजन करने प्रारंभ कर दिय

सेठ का बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि बड़-बड़े शहरों में तेल
व्यवसाय था। सेठ मप्रास में था। उसे खबर मिली कि कलकत्ता में ते
का बाजार बहुम मंदा हो गया है और बंबई में काफी देज। उसने तत्क
दोनों स्थानों पर मुनिमों को अलग-अलग चिट्ठियां लिखीं। कलकत्ता
मुनीम को लिखा कि बाजार काफी मंदा है, इसलिए जितना तेल ख
सको, खरीद लो। बंबईवाले मुनीम की चिट्ठी में लिखा कि बाजार का
तेज है, इसलि जितना तेल बेच सको बेच दो।

चिट्ठी कलकत्ता पहुंची। मुनीम ने चिट्ठी पढ़ी। सेठ के निदेशानुस
उसने तत्काल तेल खरीदना शुरू कर दिया और चिट्ठी रद्दी को टोक
में डाल दी।

चिट्ठी बंबई भी पहुंची। मुनीम को मिली। सेठ के हाथ की चि
पाकर वह बहुत खुश हुआ। उसने उसे अपने मस्तक पर लगाया अ
एक ऊंचे पट्ट पर ससम्मान रखकर प्रतिदिन धूप-दीप से उसकी पू

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ंभ कर दी। पर चिट्ठी में क्या लिखा है, यह कभी पढ़ने का प्रयास
हीं किया।

कुछ समय पश्चात सेठ कलकत्ता गया। मुनीम से सेठ का स्वागत
या। औपचारिक वार्ता के बाद सेठ ने मुनीम से पूछाह्न'मैंने तुम्हें एक
दिया था, वह मिला या नहीं?' मुनीम ने कहाह्न'मिला।' सेठ ने वह
दिखाने के लिए कहा तो उसने कहाह्न'वह तो अब नहीं है, मैंने फाड़
फेंक दिया।' सेठ ने पूछाह्न'उसको पढ़ा या नहीं?' मुनीम ने
ाह्न'हां, पढ़ा।' तब सेठ ने व्यग्रता के साथ पूछाह्न'तो बताओ, क्या
या तुमने ?' मुनिम ने तत्काल बही लाकर सेठ के सामने रख दी।
ठ को यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि मुनीम ने मेरे निदेश का
-पूरा पालन किया है। उसने हजारों टीन तेल खरीद लिया। इसमें
की मुनाफा होने की संभावना है। सेठ ने मुनीम की तनख्वाह द्विगुणित
उसके इस कार्य का अंकन किया।

अब से बंबई पहुंचा । वहां का काम संभालनेवाले मुनीम से भी
ने चिट्ठी के बारे में पूछा। मुनीम ने झट चिट्ठी पट्ट से उतारकर
ट्ठी सेठ के सामने रख दी। सेठ ने पूछाह्न'चिट्ठी पढ़ी या नहीं ?'
ीम बोलाह्न'पढ़ी तो नहीं।' सेठ ने जरा बिगड़ते हुए पूछाह्न'फिर क्या
या ?' बड़ी उत्फुल्लता के साथ मुनीम ने कहाह्नक्या-क्या किया, मैं
की प्रतिदिन पूजा करता हूं। आपको चिट्ठी हमारे पास कब-कब
ती है !'

सेठ को मुनीम की मूर्खता पर बड़ा क्रोध आया। उसकी नासमझी के
रण वह एक बहुत बड़े लाभ से वंचित रह गया। यदि मनीम चिट्ठी को
कर उसमें दिए गए निदेशानुसार गोदाम में पड़े तेल के हजारों टीन बेच
ा तो सेठ मालामा हो जाता। सेठ ने तत्काल मुनीम को छुट्टी कर दी।

बंधुओ! जो लोग धर्मग्रंथों के आदर्शों को जीवन में न उतारकर
ल उनकी पूजा करते हैं, वे बंबईवाले मुनीम के साथी हैं। आज ऐसे
गों की कोई कमी नहीं है। और बहुत सही बात तो यह है कि
धिकतर लोग इसी कोटि के हैं। पर कुछ लोग कलकत्तावाले मुनीम
ो भी मिलते हैं। वे धर्मग्रंथों की पूजा तो नहीं करते, पर उनकी बातों
जीवन में उतारते हैं। सारांश यही है कि धर्मशास्त्र, धर्मग्रंथ आदि
नीय नहीं, उनमें निहित ज्ञान ही पूजनीय है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श्रुतज्ञान का माहात्म्य

श्रुतज्ञान हमारा परम उपकारी है, क्योंकि पांच ज्ञानों में यही एक ऐसा ज्ञान है, जो ज्ञान-दान का साधन बनता है। शास्त्रों में कहा गया कि गुरु द्वारा शिष्यों को जो ज्ञान मिलता है, वह श्रुतज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है। और तो क्या, केवलज्ञानी भी यदि किसी को ज्ञान-द करते हैं तो श्रुतज्ञान के द्वारा ही करते हैं दूसरों को बोध देने में उन केवलज्ञान काम नहीं आता। केवलज्ञान तो दर्पण के समान है। उ सब-कुछ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। पर जहां दूसरों को बताने प्रश्न है, वहां तो एकमात्र श्रुतज्ञान का सहारा लेना होता है। इसलि श्रुतज्ञान के महत्त्व को हम समझें और उसे अधिकाधिक विकसित क का प्रयास करें।

कच्छ में तेरापंथ के प्रथम प्रचारक

हमारे धर्मसंघ के साधु-साध्वियां तो श्रुतज्ञानी होते ही हैं, कुछ कुछ श्रावक भी बहुत विशिष्ट श्रुतज्ञानी होते हैं। श्रावक श्री गेरूलाल व्यास का नाम आपने सुना होगा। आचर्य भिक्षु के चार प्रमुख श्रावकों उनका नाम आता है। वे महान रुतज्ञानी थे। आपको ख्याल रहना चा कि कच्छ प्रदेश में सबसे पहले तेरापंथ का प्रचार-प्रसार उन्हीं के द्व किया गया था। साधु-साध्वियां तो बाद में कए हैं। वहां जाकर व्यास ने अनेक व्यक्तियों को सत्य-धर्म का तत्त्व समझाया। उनके समझाए लोगों की पीढ़ियां आज भी मौजूद हैं। इस शृंखला में और भी अने श्रावकों के नाम गिनाए जा सकते हैं।

एक नई योजना

इस बार एक नई योजना बनी है। समाज के कुछ लोग श्रुत उपासना करते हुए उपासक बनें। जिन क्षेत्रों में साधु-साध्वियों चातुर्मास नहीं हैं, उन क्षेत्रों में जागर वे लोगों को धार्मिक आराधना सहयोग और प्रेरणा दे सकेंगे। पिछले वर्ष *पारमार्थिक शिक्षण संस्थ* एक ग्रुप पर्युषण के अवसर पर रायपुर(मध्यप्रदेश गया था।)उस माध्यम से वहां अच्छी धर्म-जागरण हुई। उस प्रयोग की सफलता आधार पर इस बार एक से अधिक क्षेत्रों में वैसे ग्रुपों को भेजने योजना बनी है। कुछ ग्रुप *पारमार्थिक शिक्षण संस्था* की बहनों के ह और कुछ उपासक साधकों के। इस योजना के सफल होने का दो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भ होगा। एक तरफ जहां समाज में विशिष्ट साधनानिष्ठ, चरित्रनिष्ठ क्तियों को आगे आने का मौका मिलेगा, वहीं दूसरी तरफ साधु-ध्वियों के चातुर्मास न होने के बावजूद श्रावक-समाज पर्युषण महापर्व अच्छे ढंग से मना सकेगा।

ाशहर

. अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३३ : श्रुतज्ञान के प्रकार

श्रुतज्ञान की संक्षिप्त चर्चा कल मैंने अपनी प्रवचन में की। अ
उसी चर्चा को मैं आगे बढ़ाऊंगा।

**अक्षर-संज्ञि-सम्यक्-सादि-सपर्यवसित-गमिकाङ्गप्रविष्टा
सप्रतिपक्षाणि।**

श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैंह्न१. अक्षरश्रुत २. अनक्षरश्रुत ३. संज्ञि
श्रुत ४. असंज्ञिश्रुत ५. सम्यक्श्रुत ६. असम्यक्श्रुत ७. सादिश्
८. अनादिश्रुत ९. सपर्यवसितश्रुत १०.अपर्यवसितश्रुत ११. गमिकश्
१२. अगमिकश्रुत १३. अङ्गप्रविष्टश्रुत १४. अनङ्गप्रविष्टश्रुत।

अक्षरों द्वारा कथन-योग्य भाव की प्ररूपणा करना अक्षरश्रुत
अंगुली, आंख, मुंह आदि के संकेतों से भावों को समझाना अनक्षरश्
है। यहां साधन को साध्य माना गया है। अक्षर और अनक्षर दोनों
श्रुतज्ञान के साधन हैं। इनके माध्यम से लेखक, संकेतक और वक्ता
भावों को जाना जाता है।

समनस्क प्राणियों का श्रु संज्ञिश्रुत है। इसी प्रकार अमनस्
प्राणियों का श्रुत असंज्ञिश्रुत है। ये दोनों भेद ज्ञान के अधिकारी
अपेक्षा से किए गए हैं। इस संदर्भ में यह समझ लेना अत्यंत आवश्
है कि समनस्क कौन हैं और अमनस्क कौन। जो प्राणी मानसिक चिं
करने में सक्षम हैं, वे समनस्क कहलाते हैं। सभी देव और नैरयि
समनस्क हैं। मनुष्य (लगभग) और पशु-पक्षी भी समनस्क हैं। हाल
पशु और पक्षियों का मानसिक चिंतन मनुष्य के मानसिक चिंतन
तुलना में बहुत कम विकसित होता है, फिर भी उनमें मानसिक चिंतन
यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा। आप देखें, गाय चरती है। पर
खाएगी, वे ही चीजें, जो उसके खाने के योग्य हैं। अखाद्य को वह क
नहीं खाएगी। खाद्य-अखाद्य का यह विवेक वह मानसिक चिंतन के द्व

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

करती है। पशु-पक्षी अपने-अपने बच्चों की रक्षा करते हैं। यह तभी भव है, जब मानसिक चिंतन हो। एकेंद्रिय से चतुरिंद्रय तक के सभी गी अमनस्क हैं। यानी सारे स्थावर जीव-पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, स्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक एकेंद्रिय प्राणी तथा द्रय, त्रींद्रिय और चतुरिंद्रिय प्राणी अमनस्क हैं।

प्रश्न पूछा जा सकता, मक्खी (चतुरिंद्रिय) के जब मन है ही नहीं, वह मिठाई को छोड़ गंदगी पर आकर कैसे बैठती है। इस प्रश्न को राई से समझ लेना चाहिए। यह तो निश्चित है कि जब तक पांचों द्र्यां नहीं हैं, तब मन कभी नहीं हो सकता। वस्तुतः मक्खी आदि तुरिंद्रय प्राणी आंखों से देखकर वासना के कारण क्रियाएं करते हैं। ी प्रकार चींटी आदि त्रींद्रय प्राणी अपने घ्राण से सूंघकर कहां-से-कहां ी जाते हैं। आप कहेंगे कि मक्खी बहुत दूर की वस्तु को आंखों से ने देख लेती हैं, चींटी बहुत दूर पड़ी वस्तु को कैसे सूंघ लेती है का समाधान यह है कि जब प्राणी के एक-दो-तीन-चार इंद्रिया नहीं हीं तो शेष इंद्रिय इंद्रियां बहुत अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं। जिन द्र्यों का उसके अभाव होता है, उन इंद्रियों का बहुत-कुछ काम वह री इंद्रियों से कर लेता है। आपने प्रायः अनुभव किया होगा कि जो क्ति अचक्षु होते हैं, उनकी श्रोत्रेंद्रिय तीव्र हो जाती है, स्पर्शनेंद्रिय यन्त संवेदनशील हो जाती है। वे शब्द, स्पर्श आदि के द्वारा इतना न कर लेते हैं, हतना बहुत-से आंखों वाले भी संभवतः नहीं कर पाते। अपने जीवन में अनेक अचक्षु विद्वानों को देखा है।

अभी-अभी सरदारशहर में एक अचक्षु व्यक्ति स्नातकोत्तर (एम.ए) परीक्षा अच्छे अङ्कों से उत्तीर्ण हुआ है। वह अब पी.एच.डी. करना हता है। इसके लिए उसने हमसे विषय का सुझाव मांगा है। मुझे श्चर्य होता सहडै षकि अचक्षु व्यक्ति तो इतना उच्चस्तर का अध्ययन लेते हैं और जिन्हें आंखें प्राप्त हैं, जो मेधासंपन्न हैं, वे अपनी शक्ति पूरा-पूरा उपयोग नहीं करते ! वे बहुत जल्दी अपने-आपको अध्ययन लिए अपात्र मानकर निराश हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि पढ़ने की उम्र बीस-पचीस वर्ष तक ही है। उसक बाद पढ़ने की उम्र नहीं है। पर मैं से कहना चाहता हूं कि यह मिथ्या धारणा और निराश की बात बहुत हेतकर है। इससे वे बहुत बड़े लाभ से वंचित रह जाते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

साक्षरता अभियान

आपको शायद मालूम नहीं होगा कि आजकल राष्ट्र में साक्षरता
एक व्यापक आंदोलन चल रहा है। इस आंदोलन का उद्देश्य है कि र
में कोई भी व्यक्ति निरक्षर न रहे। मैं आप लोगों से पूछना चाहता
क्या आपने भी सामाजिक स्तर पर इस विषय पर कभी चिंतन किया
क्या आप नहीं जानते कि आज भी आपके समाज के कुछ प्रतिशत ल
निरक्षर हैं ? क्या यह निरक्षरता आपके समाज के लिए अशोभनीय न
है ? मैं सोचता हूं, यदि समाज का प्रबुद्ध व चिंतनशील वर्ग इस वि
पर गंभीरता से चिंतन करके कुछ ठोस प्रयास करे तो कोई कारण न
कि समाज से निरक्षरता जैसे अशोभनीय चीज बहुत जल्दी समाप्त न
सके। आपको संभवतः पता नहीं होगा कि ऋजुमना मातुश्री वदनांजी
लगभग सत्तर वर्ष की उम्र में अक्षर-ज्ञान किया था। हमारी निरक्षर व
महिलाएं इस बात से प्रेरणा लें कि हम भी निरक्षरता जैसे अभिशाप
मुक्त होंगी। इस कार्य में उनकी शिक्षित बहुएं, बेटियां, पोतियां ब
सहजतया सहयोग कर सकती हैं। आपको इस संदर्भ में शायद ख्य
नहीं होगा कि सरकार निरक्षरता मिटाने के लिए करोड़ों-करोड़ों रुपयें
सहयोग दे रही है। मुझे बताया गया कि केवल एक संस्थाह्न *राष्ट्*
स्वयंसेवक संघ ने इस अभियान को चलाने के लिए कई करोड़ रु
प्राप्त किए हैं। रुपये लेने और देने की बात तो मैंने प्रसंगवश कह द
यह कोई बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है। बहुत महत्वपूर्ण बात यह है
इस कलंक को धोने के लिए सरकार भी बहुत सचेष्ट है।

कल ही मेरे मेवाड़ के एक कार्यकर्ता का पत्र आया। उसने मुझे
सुझाव दिया है कि आप घोषणा करें कि हमारे समाज में कोई निर
नहीं रहेगा। पर जैसाकि आप जानते ही हैं, मैं आदेश-निदेश तो दे न
सकता, केव अपनी सीमा में रहकर प्रेरणा दे सकता हूं और वह मैं ही
रहा हूं। इसके बावजूद उस भाई का सुझाव अच्छा है, यह कहने में मु
कोई कठिनाई नहीं। समाज सोचे और कुछ महत्वपूर्ण निर्णय ल
गंगाशहर से इसकी शुभ शुरुआत हो सकती है।

बंधुओ! मैं पूछना चाहता हूं, क्या आपको यह बात आवश्यक न
लगती है कि समाज में कोई निरक्षर नहीं रहना चाहिए ? यदि वास्तव
आप यह आवश्यक और उपयोगी समझते हैं तो इतना विश्वास मैं दि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कता हूं कि यह कार्य बहुत कठिन नहीं है। पर पता नहीं क्यों हमारे ां ऐसी पद्धति-सी पड़ गई है कि लोग सुनना तो बहुत पंसद करते हैं, उसके अनुसार कुछ करने की आवश्यकता नहीं समझते। वस्तुत ने काक अर्थ यही है कि करणीय कार्य में अपने पुरुषार्थ का नियोजन या जाए। अन्यथा वही बात होगीह्न घर से चोर सारा सामान ले गए र घर का मालिक कहता रहा कि मैं सब कुछ जानता हूं !

घर में चोर घुस आए। उनकी आहट से सेठानी नींद से जग गई। ने निद्राधीन सेठ को जगाते हुए कहाह्न'जल्दी उठिए, घर में चोर आ हैं। सेठ गहरी नींद में थे। वह बोलाह्न'तू चिंता मत कर, मैं सब कुछ नता हूं।' सेठानी को आश्वस्त कर सेठ पुनः खर्राटे भरे लगा। थोड़ी पश्चात सेठानी ने सेठ को पुनः जगाते हुए सूचित कियाह्न'चोरों ने जोरियों के ताले तोड़ लिए हैं। अब तो जल्दी कीजिए।' सेठ ने नींद में ः सेठानी को आश्वासन करते हुए कहाह्न'तू चिंता मत कर, मैं सब छ जानता हूं।'

चोर तिजोरियों से नगद, जेवरात आदि निकालकर उनकी पोटली धने लगे। सेठानी ने ताजा स्थिति में अवगत करते हुए सेठ को तीसरी र फिर जगाने का प्रयास किया। पर सेठ इस बार भी वही शब्दावली चिंता मत कर, मैं सब कुछ जानता हूं' दोहराता हुआ करवट लकर सो गया।

अब चोर सारा धन-माल लेकर चलने की तैयारी में थे। सेठानी ने प्रयत्न और किया सेठ को जगाने का। परंतु उसे सफलता नहीं ली। उसे सेठ का वही रटा-रटाया उत्तर मिलाह्न'तू चिंता मत कर, मैं -कुछ जानता हूं।' चोर सारा धन लेकर चलते बने। सेठानी के धैर्य बांध टूट गया। उसने सेठ को झकझोर कर जगाते हुए तेज स्वर में ाह्न'मैं समझ नहीं पाई कि आपके इस जानने का क्या अर्थ है चोर तो रा घर खाली कर चले गए हैं।' अब सेठ की नींद टूटी। खाली जोरियों को देखकर सहसा उसके होश उड़ गए। फिर जरा स्वस्थ ा तो सेठानी से बोलाह्न'चोर सारा धन ले गए और तूने मुझे तो ाया......' सेठ का कथन पूर्ण होने से पूर्व ही झुंझलाहट के स्वर में नीह्न'मैंने तो आपको बार-बार जगाने की चेष्टा की थी, पर किसी की द भी तो टूटे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बंधुओ! सचमुच जानना तभी सार्थक है, जब उसके अनुस
करणीय कार्य के प्रति व्यक्ति सजग हो जाए। मैंने साक्षरता अ
निरक्षरता की बात प्रसंगवश कह दी है। यदि इस बात पर ध्यान दे
आप इस दिशा में कुछ सक्रिय कदम उठाते हैं और और निरक्षरता
मिटा देते हैं तो समाज का हित है, गौरव है, अन्यथा मैंने तो अप
कर्तव्य निभा दिया।

अब मैं पुनः अपने मूल विषय पर लौटता हूं। सम्यग्दृष्टि प्राणी
श्रुत या मोक्ष-साधना में सहयोगी श्रुत सम्यक्श्रुत कहलाता है। इस
ठीक विपरीत मिथ्यादृष्टि प्राणी का श्रुत या मोक्षसाधना में बाधक श्
मिथ्याश्रुत है। आदिसहित श्रुत सादिश्रुत है। आदिरहित श्रुत अनादिश्
कहलाता है।

तत्त्व रूप में समस्त श्रुत अनादि ही है। परंतु किसी तत्त्व को
अहिंसा के नाम से पुकारने लगे, किसी तत्त्व को सत्य के नाम से, कि
तत्त्व को ब्रह्मचर्य के नाम से, किसी तत्त्व को...... । अहिंसा, सत्य ब्रह्म
आदि शब्द सादि हैं पर तत्त्व अनादि हैं।

सांतह्नअंतसहित श्रुत सपर्यवसितश्रुत कहलाता है। अनंत-अंतरि
श्रुत को अपर्यवसितश्रुत कहते हैं।

बारहवां अंगह्नदृष्टिवाद गमिकश्रुत है। इसमें एक समान पाठ ह
हैं। कुछ वर्णन किया जाता है और फिर कह दिया जाता है कि श्
पूर्वोक्त पाठ की तरह समझना चाहिए। इस प्रकार एक पाठ का सं
दूसरे पाठ से जुड़ा रहता है। जिसमें एक समान पाठ न हों,
अगमिकश्रुत है।

गणधरों द्वारा रचित द्वादशांगीह्नआचारंग, सूत्रकृतांग, स्थान
समवायांग, भगवती......अंगप्रविष्ट श्रुत है।

गणधरों के अतिरिक्त अन्य आचार्यों द्वारा रचे गए ग्रंथ अनंगप्रवि
श्रुत हैं।

कई बार प्रश्न पूछा जाता है कि आगम कितने मान्य हैं। इस
समाधान यही है कि द्वादशांगी मान्य है। इसके अतिरिक्त जो ग
द्वादशांगी से मिलते हैं, वे भी मान्य हैं। जो ग्रंथ द्वादशांगी से न
मिलते, वे मान्य नहीं हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

धिज्ञान

मति और श्रुत ज्ञान के विवेचन के पश्चात अब मैं अवधिज्ञान के र में बताना चाहूंगा।

आत्ममात्रापेक्षं रूपिद्रव्यगोचरमवधिः।

अवधानं अवधिः।

अवधानपूर्वक किए जानेवाले ज्ञान को अवधिज्ञान माना जाता है। ी एकाग्रचित्त होने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अवधिज्ञान है। भी किसी अवधिज्ञानी को किसी बात का ज्ञान करना होता है, उसे काल उस विषय पर अपने चित्तको एकाग्र करना होता है। एकाग्र हुए ा वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

आप देखें, गौतम स्वामी अवधिज्ञानी थे। वे चाहते तो उन बहुत-से नों को स्वयं ही समाहित कर सकते थे, जिनका समाधान उन्होंने प्रभु ावीर से प्राप्त किया। पर उन प्रश्नों का स्वतः समाधान प्राप्त करने लिए चूंकि उन्हें बहुत अधिक एकाग्र होना पड़ता, बहुत अधिक शक्ति य करनी पड़ती, अतः उन्होंने वे प्रश्न सीधे भगवान के सामने प्रस्तुत अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर लिया।

अवधिज्ञान एक अतींद्रिय ज्ञान है। यानी इस ज्ञान में इंद्रियों तथा की अपेक्षा नहीं रहती। अतींद्रिय शब्द किसी समय बहुत अपरिचित- लगता था। पर आजकल वैसी बात नहीं है, क्योंकि आज इस शब्द वैज्ञानिक जगत में काफी चर्चा है। इस अतींद्रिय ज्ञान से संपन्न क्ति वे सारी बातें केवल आत्मा के सहारे जान सकता है, जिन्हें हम द्रयों एवं मन के सहारे जानते हैं। पर इस संबंध में इतना अवश्य है वह (अवधिज्ञानी) समस्त पदार्थ-जगत को नहीं जान सकता। मात्र ी पदार्थों को ही जान सकता है। अरूपी पदार्थों को जानना उसकी न-सीमा से पर है।

इस प्रकार अवधिज्ञान की परिभाषा हम यह कर सकते हैंह्नइंद्रिय र मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के सहारे जो रूपी द्रव्यों ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है।

अवधिज्ञान के विभिन्न स्तर पर विभिन्न प्रकार हैं। मान लीजिए, सी को हथेली में अवधिज्ञान हुआ। इस स्थिति में वह हथेली से ही

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

देख सकेगा। इसी प्रकार यदि किसी को पांव में अवधिज्ञान हुआ है
वह उसीसे देख सकेगा। यह कभी संभव नहीं कि जिसे हथेली
अवधिज्ञान हुआ है, वह पांव से देख सके। एक स्थिति यह भी है कि
व्यक्ति जितनी अधिक शक्ति खर्च करता है, एकाग्र होता है, उस
उतना ही अधिक अवधिज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न पूछा जा सकता है, क्या सभी प्राणियों को अवधिज्ञान
सकता है हां, हो सकता है, पर सबको समान रूप से नहीं होता।

भवप्रत्ययो देवनारकाणाम्।

देवों और नारकों का अवधिज्ञान भवहेतुक होता है। अर्थात देव
और नरकगति में पैदा होनेवाले प्राणियों को यह ज्ञान जन्म से ही प्र
होता है।

क्षयोपशमनिमित्तश्च शोषाणाम्।

मनुष्य और विर्यंचों के लिए यह ज्ञान क्षयोपशमसापेक्ष है।

इस संदर्भ में एक बात समझ लेने की है। मनुष्य एवं तिर्यंचों
अवधिज्ञान क्षयोपशमजन्य है, इसका अर्थ यह नहीं कि देवों और नार
का यह ज्ञान क्षयोपशमजन्य नहीं है। अवधिज्ञान तो सभी का क्षयोपश
जन्य ही होता है। अलबत्ता इतना अंतर अवश्य है कि देवों और नार
का अवधिज्ञान पुरुषार्थसापेक्ष नहीं है। भवस्थिति के कारण उनहें यह ज्ञ
सहज रूप में प्राप्त होता है, जबकि मनुष्यों एवं तिर्यंचों को यह ज्ञ
पुरुषार्थ/प्रयत्न के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

अवधिज्ञान के संबंध में एक बात और बताकर में आज का प्रव
समाप्त करना चाहूंगा। आज भी अवधिज्ञान हो सकता है। उसकी व
नास्ति नहीं है। पर उसके लिए तीव्र पुरुषार्थ अपेक्षित है। इसके स
ही यह भी संभव है कि किसी को अवधिज्ञान प्राप्त हो जाए और उ
मालूम ही न पड़े।

गंगाशहर

१६अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३४ : अवधिज्ञान के प्रकार

अवधिज्ञान की चर्चा कल मैंने प्रारंभ की थी। हमारी आत्मा में ांत ज्ञान है। पर ज्ञानावरणीय कर्म ने उस ज्ञान को अच्छादित कर ा है। जब ज्ञानावरणीय कर्म दूर हट जाता है तो वह ज्ञान उसी प्रकार ट होता है, जिस प्रकार बादलों के दूर होने पर सूर्य।

ाधिज्ञान के प्रकार

अनुगामि-अननुगामि-वर्धमान-हीयमान-प्रतिपाति-अप्रतिपाति ादसौ षेढा।

अवधिज्ञान के छह प्रकार हैंह्न१. अनुगामी २. अननुगामी वर्धमान ४. हीयमान ५. प्रतिपाति ६. अप्रतिपाति।

अनुगामीह्नअवधिज्ञानी के साथ-साथ चलनेवाला अवधिज्ञान ुगामी अवधिज्ञान है। जिस प्रकार व्यक्ति की आत्मा सदा उसके साथ रहती है, उसी प्रकार अनुगामी अवधिज्ञान भी अवधिज्ञानप्राप्त व्यक्ति साथ-साथ चलता है।

अनुनगामीह्नअवधिज्ञानी के साथ-साथ ने चलनेवाला अवधिज्ञान ुनगामी अवधिज्ञान है। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को इस क्षेत्र में ाधिज्ञान प्राप्त हुआ। पर ज्यों ही यह क्षेत्र छोड़कर वह दूसरे क्षेत्र में ा जाता है, उसका अवधिज्ञान समाप्त हो जाता है। पुनः जब वह ी क्षेत्र में आएगा तो उसे अवधिज्ञान प्राप्त होगा।

वर्धमानह्नजो अवधिज्ञान प्राप्त क्रमशः बढ़ता रहता है, वह वर्धमान ाधिज्ञान कहलाता है। पैदा होते समय किसी का अवधिज्ञान बहुत ्म रूप में हो सकता है, पर बढ़ते-बढ़ते वह इतना बढ़ सकता है कि ार के सभी रूपी द्रव्यों को जान सकता है।

हीयमानह्नप्राप्त होने के समय किसी का अवधिज्ञान बहुत बड़े रूप

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में हो यकता है। पर यदि वह क्रमशः हीन होता जाता है तो उसे हीयम अवधिज्ञान कहा जाता है।

प्रतिपातिह्नउत्पन्न होकर चला जानेवाला अवधिज्ञान प्रतिप अवधिज्ञान कहलाता है। इस संदर्भ में आ पूछ सकते हैं कि एक प्राप्त हुआ अवधिज्ञान कैसा चला जाता है? इसे एक-दो उदाहरणों समझें। एक व्यक्ति को मोहरों से भरा एक कलश मिला। वह अत प्रसन्न हुआ कि सहज रूप में ही लाखों का धन मिल गया। उसने मोहरों को बाहर निकाला। वे मिट्टी से गंदी हो रही थीं। उ सोचाह्नपास में ही नाले में पानी बह रहा है। इन्हें वहां धो लूं। चिंतन के साथ वह मोहरों को धोने के लिए वहां आया। नाले में प बहुत थोड़ा सा था। उसका प्रवाह भी अत्यंत मंद था।। उसने मोहरों धोने के लिए उन्हें पानी में डाला। उन्हें डालते ही पीछे से पानी को प्रवाह आया और सारी मोहरें उसमें बह गईं। वह ज्यों-का-त्यों मलता रह गया। इसी प्रकार कल्पना कीजिए, किसी व्यक्ति अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। उस ज्ञान के द्वारा वह समस्त लोक के पुद्ग को जगमगाते हुए देखता है। सहसा इस दृश्य को देखकर वह हक्क बक्का-सा रह जाता है। यानी उस ज्ञान को पचा नहीं पाता। इस परिणाम यह होता है कि उसका अवधिज्ञान चला जाता है।

अप्रतिपातिह्नएक बार प्राप्त होने के पश्चात कभी वापस जानेवाला अवधिज्ञान अप्रतिपाति अवधिज्ञान कहलाता है।

मनःपर्यायज्ञान

अवधिज्ञान की चर्चा के पश्चात अब मैं मनःपर्यायज्ञान का विवे करूंगा।

मनोद्रव्यपर्यायप्रकाशि मनःपर्यायः।

मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओं को जो ज्ञान होता उसे मनःपर्यायज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर व्यक्ति दूसरों के मनोगत भावों को जान लेने की क्षमता अर्जित कर लेता यह भी अतींद्रिय/इंद्रियातीत ज्ञान है। इस संदर्भ में इतना स्पष्ट लेना आवश्यक है कि मनःपर्यायज्ञानी वस्तुतः मनोवग्रणा को ही जान है, मनोगत भावों को नहीं। मनोवर्गणा के विभिन्न पर्यायों के आधार अनुमान के द्वारा वह व्यक्ति के भावों को पकड़ता है। सीधे मनोभावों

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ड़ने की शक्ति इस ज्ञान में नहीं होती।

प्रश्न हो सकता है कि मनोवर्गणा के पर्यायों को तो अवधिज्ञान से जाना जाता है, फिर मनःपर्यायज्ञान की विशेषता क्या है। इसका ाधान इतना-सा ही है कि अवधिज्ञान से मनोवर्गणा के अतिरिक्त स्त लोक के पुद्गलों को जाना जाता है, जबकि मनःपर्यायज्ञानी सिर्फ ोवर्गना को ही जानता है। वह मनोवर्गणा का विशेषज्ञ होता है। जकल आपको शरीर के विभिन्न अंगों के विशेष डॉक्टर मिलते हैं। र तो क्या, दाहिनी आंख और बायीं आंख के भी अलग-अलग शेषज्ञ होने लगे हैं। अब आप ध्यान दें, आंख के बारे में शरीर के ी अवयवों की चिकित्सा करनेवाला डॉक्टर भी जानता है और वह की चिकित्सा करता है तथा एक नेत्र-विशेषज्ञ भी जानता है और वह की चिकित्सा करता है। पर दोनों के जानने और चिकित्सा करने में की-अन्तर रहता है। आंख के बारे में जितना सूक्ष्म ज्ञान नेत्र-विशेषज्ञ जानता है और वह उसकी चिकित्सा करता है। पर दोनों के जानने र चिकित्सा करने में काफी अंतर रहता है। आंख के बारे में जितना न्म ज्ञान नेत्र-विशेषज्ञ को होता है, उतना सूक्ष्म ज्ञान सामान्य डॉक्टर नहीं हो सकता। इसलिए आंख की जैसी सफल चिकित्सा नेत्र-शेषज्ञ कर पाता है, वैसी सफल चिकित्सा सामान्य डाक्टर नहीं कर ा। अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान को भी हमें इसी परिप्रेक्ष्य में ना चाहिए।

आ पूछेंगे, ज्ञान के इन दोनों प्रकारों में बड़ा कौन-सा है। इस प्रश्न समाधान सापेक्ष है। अवधिज्ञान समस्त लोग के रूपी द्रव्यों को जान ा है, जबकि मनःपर्यायज्ञान केवल मनोवर्गणा को जान पाता है। इस क्षा से अवधिज्ञान को बड़ा माना जाता है। पर मनःपर्यायज्ञान ोवर्गणा को जितनी सूक्ष्मता से जान पाता है, उतनी सूक्ष्मता से धिान नहीं जान पाता। इस अपेक्षा से मनःपर्यायज्ञान बड़ा है।

किसी व्यक्ति का अवधिज्ञान अत्यधिक विकसित है और किसी क्ति का मनःपर्यायज्ञान अत्यल्प विकसित हें ऐसे में अवधिज्ञान बड़ा ा। इसके विपरीत किसी व्यक्ति का मनःपर्यायज्ञान अत्यधिक कसित है और दूसरे व्यक्त का अवधिज्ञान अत्यल्प विकसित है। इस ति में मनःपर्यायज्ञान बड़ा होगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तरतमता कितनी

पूछा जा सकता है कि क्या ज्ञान-ज्ञान में भी अंतर होता है। एक व्यक्ति के ज्ञान में तथा दूसरे व्यक्ति के ज्ञान में बहुत ब तरतमता रह सकती है। शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि व्यक्ति-व्यि के ज्ञान में उत्कृष्ट रूप में अनंतगुनाउ फर्क पड़ सकता है। यानी व्यक्ति का ज्ञान दूसरे व्यक्ति के ज्ञान से अनंत गुण भाग हीन अ अनंत गुण भाग अधिक हो सकता है। आप ज्ञान की बात करते हैं, मैं तो कहता हूं कि साधु-साधु में अनंतगुना फर्क हो सकता है। साधु पूर्णिमा के चंद्रमा जैसा होता है और दूसा द्वितीय जैसा। एक स अत्यंत पापभीरु होता है, एक-एक कदम जागरूकता से रखता है, दूसरा साधु प्रमादी भी हो सकता है, वह बार-बार स्खलन भी सकता है। किंतु इसके बावजूद वे दोनों साधु ही हैं। आप कहेंगे, इस अर्ि तो यह हुआ कि प्रमाद किया जा सकता है। नहीं, प्रमाद करने का किंचित भी अनुमोदन नहीं कर रहा हूं। पर छद्‌मस्थता के कारण वह सकता है और होता हैह्नइस तथ्य को भी नकार नहीं सकता।

प्रसंग अतिमुक्तक मुनि का

शैक्ष अतिमुक्तक मुनि की बात आपने सुनी होगी। देह-चिंता निवृत्त होने के लिए जंगल गए। वहां नाला बह रहा था। साधुचर्या कल्प्य-अकल्प्य की उन्हें विस्मृति हो गई। अपनी पात्रिका को वे क पानी में तैराने लगे। कुछ देर बाद स्थविर मुनि आए। अतिमुक्तिक मु को कच्चे पानी में पत्रिका तैराते देखकर उन्होंने मन-ही- सोचाह्नभगवान ने कैसे अबोध बालक को दीक्षित कर लिया! इसे अ तक साधुत्व का जरा भी भान नहीं है!! वे उपालंभ की भाषा बोलेह्न'यह क्या कर रहे हो, तुम्हें कल्प्य-अकल्प्य का जरा भी ख्य नहीं है।......' अतिमुक्तक मुनि तत्काल संभले। उन्हें अपनी भूल अहसास हुआ। स्थविर मुनि उन्हें अपने साथ लेकर भगवान महावीर श्रीचरणों में उपस्थित हुए और व्यंग्य की भाषा में बोलेह्न'भंते! आप यह छोटा शिष्य अतिमुक्तककुमार कितने भवों में मुक्त होगा?' भगव तो सर्वज्ञ थे, अतः सारी घटना से परिचित थे और स्थविर मुनियों व्यंग्यात्मक भावों से भी। भगवान ने कहाह्न'स्थविरो! तुम लोग छोटे मु की इस प्रकार आशातना मत करो, प्रत्युत इसकी सेवा-शुश्रूषा करो।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ो भव में मुक्ति जानेवाला है।'

भगवान की बात सुनकर स्थविर मुनियों को अपने अशिष्ट व्यवहार लिए घोर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने अतिमुक्तक मुनि से तत्काल ायाचना की। अपनी आत्मा को शुद्ध बनाने का प्रयास किया है।

ीर न बनें!

बंधुओ! आप लोग भी हमारे छोटे-छोटे साधु और साध्वियों की लना देखकर यह सोच सकते हैं कि आचार्य ने इनहें कैसे दीक्षित कर या! मैं मानता हूं, साध्वियां और साधु स्खलना कर सकते हैं। छोटी ती कर सकते हैं और बड़ी गलती भी कर सकते हैं। किंतु इस ति के बावजूद मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आप इनकी त्रुटियों को कर अधीर न बनें। आपको ख्याल रहना चाहिए कि साधना की रिपक्वता की स्थिति में त्रुटियां होना अस्वाभाविक नहीं है। पर इसका र्थ यह नहीं है कि मैं प्रमाद को प्रोत्साहन दे रहा हूं। प्रमाद को मेरा ई प्रोत्साहन नहीं है। मेरा प्रोत्साहन तो सदा अप्रमाद को ही है। मैं ाद करनेवाले साधु-साध्वियों को समय-समय पर सजग भी करता ता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि आज जो स्खलन कर रहे हैं, वे कल क भी हो सकते हैं। ऐसे अनेक साधु और साध्वियां मेरे ख्याल में हैं, नका प्रारंभिक साधना-काल संतोषप्रद नहीं था, पर धीरे-धीरे वे बहुत तेजस्वी और आत्मस्थ बन गए।

ाशहर
० अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३५ : मनःपर्यायज्ञान के प्रकार

मनःपर्यायज्ञान की बात कल मैंने प्रारंभ की थी। आप आप उर
भेदों को समझें।

ऋजु-विपुलमती।

साधारणमनोद्रव्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः। तद्विशेषग्राहि
मतिः विपुलमतिः।

मनःपर्यायज्ञान के दो प्रकार हैंह१. ऋजुमति २. विपुलमति।

सामान्य रूप से मानसिक पुद्गलों को ग्रहण करनेवाली मति
ऋजुमति कहा जाता है। उनके विशेष पर्यायों को जाननेवाली म
विपुलमति कहलाती है।

एक व्यक्ति ने मन में चिंतन किया कि मैं अमुक-अमुक व्या
करूंगा। मुझे इतना लाभ होगा।......अब ऋजुमति केवल इतना जान प
है कि अमुक व्यक्ति सोच रहा है कि उसे व्यापार में लाभ होगा।
वह किस चीज का व्यापार करेगा, किस व्यापारी के साथ करेगा, व
करेगा, उसे कितना लाभ होने की आशा है, आदि-आदि बातों को
नहीं जान सकता। ये सब बातें जानना विपुलमति के सीमा क्षेत्र में
विपुलमति इन सब विशेष पर्यायों को ग्रहण कर सकता है।

दूसरा उदाहरण और देखेंहएक व्यक्ति ने घड़े का चिंतन किय
ऋजुमति जानेगा कि अमुम व्यक्ति ने घड़े के बारे में चिंतन किया है।
घड़ा कितना बड़ा है, उसका रंग कौन-सा है आदि बातें विपुलमति
जान पाता है, ऋजुमति नहीं है।

निर्मल मेधा

हम मनःपर्यायज्ञान की बात एक बार छोड़ें। मतिज्ञान और श्रुतज्ञ
को ही लें। किसी-किसी व्यक्ति का मति व श्रुत ज्ञान इस स्तर त

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कसित होता है कि वे बहुत जल्दी दूसरे के मनोभावों का काफी हद क सही-सही अनुमान लगा लेते हैं। इसके विपरीत बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जिनका ज्ञान दूसरों के भावों को समझने में सफल नहीं हो ता।

ड़े के पैर कितने होते हैं

हमारे धर्मसंघ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु का जीवन हम पढ़ते उनकी मेधा बहुत निर्मल थी। दूसरों के मनोगत भावों को पढ़ने में वे त ही दक्ष थे। एक बार एक भाई उनके पास आया और प्रश्न की षा में बोलाह्न'स्वामीजी ! घोड़े के पैर कितने होते हैं ?' स्वामीजी ने नकर्ता के मन में छुपी दुर्भावना को तत्काल भांप लिया। वे कुछ क्षण लिए चिंतन की मुद्रा में मौन रहे और फिर गिनती करते हुए बोलेह्न'दो गे के और दो पीछे के, कुल चार।' स्वामीजी द्वारा उत्तर दिए जाने के असामान्य ढंग को देखकर वह भाई बोलाह्न'महाराज! यह तो मान्य-सा प्रश्न है। एक छोटा बच्चा भी इसका उत्तर दे सकता है। फिर के लिए इतना सोचने और पैर गिनने की क्क्या जरूरत थी?' मीजी ने कहाह्न'यह ठीक है कि तुम्हारा प्रश्न सामान्य-सा है। छोटा- बच्चा भी इसको उत्तरित कर सकता है। इसलिए इस प्रश्न के उत्तर में मैं चिंतन न भी करता तो कोई कठिनाई नहीं थी। इन इस प्रश्न उत्तर मैंने सोचकर और पैर गिनकर इसलिए दया कि यदि तुम इसके थ ही दूसरा प्रश्न यह कर लो कि कनखजूरे के पैर कितने होते हैं, तो सोचना और गिनना पड़ेगा। इस स्थिति में इस प्रश्न का उत्तर तो ट दे दूं और दूसरे प्रश्न का उत्तर भी सोचकर और पैर गिनकर दूं, दूसरे प्रश्न का उत्तर में अटक जाऊं, यह उचित नहीं लगेगा। किंतु मैं पहले प्रश्न प्रश्न का उत्तर भी सोचकर और पैर गिनकर देने में ई अनुचित बात नहीं होगी। उस प्रश्न का उत्तर सोचने और पैर नने का भी मेरे सामने अवकाश रह जाएगा।' वह भाई स्वामीजी की न सुनकर चकित रह गया। शर्मिंदा होता हुआ-सा धीरे से लाह्न'वस्तुतः कनखजूरे के पैर पूछकर आपको पराजित और अपमानित ने के अभिप्राय से ही मैंने घोड़े के पैर पूछे थे। पर आपने तो मेर मन भावना पहले ही भांप ली।'

वस्तुतः आचार्य भिक्षु मात्र दूसरों के मनोगत भावों को जानने की

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कला में ही नहीं, अपितु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का समग्र स्थि
को समझने का कला में बहुत ही माहिर थे। मैं मानता हूं, जीवन
सफलता का यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जो व्यक्ति इस कला
नहीं जानता, वह कभी सफलता का वरण कर सकता। प्रवचनकार
प्रवचन प्रारंभ करने से पूर्व परिषद पर गहराई से ध्यान दे देना चाहि
कि सुननवाले किस-किस मत को माननेवाले हैं, परिषद विद्वानों की है
सामान्य लोगों की जो प्रवचनकार ऐसी बातों की ओर ध्यान दिए बि
प्रवचन करता है, वह चाहे कितना भी बड़ा विद्वान और शास्त्रज्ञ क्यों
हो, अपनी छाप नहीं छोड़ सकता, सफल प्रवचनकार नहीं बन सकत

मन से जुड़ी है बुराई और अच्छाई

कुछ लोगों का चिंतन है कि प्रवचनकार को प्रवचन करते स
आंखें बंद रखनी चाहिए, क्योंकि आंखें खुली रहने से विकार आ सक
है। चिंतन के लिए हर व्यक्ति स्वतंत्र है। किसी को रोका नहीं
सकता। पर मैं इस चिंतन से सहमत नहीं हूं। वस्तुतः विकार का का
आखें नहीं, मन है। यदि ओखें ही विकार का कारण हों तो वे स
प्रति विकार की दृष्टि से देख सकती हैं। पर आप ध्यान दें, उन्हीं आं
से लोग अपनी माता को देखते हैं, साध्वियों को देखते हैं और उ
आंखों से अपनी पत्नी को देखते हैं, वेश्या को देखते हैं। अब समझ
यह है कि यदि आंखें ही बुरी हैं तो माता और साध्वियों को तथा प
और वेश्या को देखने की एक ही दृष्टि होती । पर यह कैसे संभव
कि माता और साध्वियों के प्रति कभी कोई विकार की भावना आ जाए
लेकिन उन्हीं आंखों से पत्नी या वेश्या को देखा जाता है तो विकार
आ सकता है। जिन दांतों से बिल्ली अपने बच्चे को पकड़ती है, उ
दांतों से वह चूहे को भी पकड़ती है। किंतु जब वह अपहने बच्चे
पकड़ती है, तब उसे दांत लग तो क्यों जाए और जब वह चूहे
पकड़ती है, तब चूहा उसके दांतों से बच तो क्यों जाए !

वस्तुतः आंख, कान आदि इंद्रियां अपने-आपमें न बुरी हैं और
अच्छी। उनका काम तो अपने-अपने विषय को ग्रहण करना है। बु
और अच्छाई तो मन में छुपी रहती है। यदि मन में राग-द्वेष है, विव
है तो आंखों की दृष्टि विकृत बन जाती है। काम विकृत सुनने लगते
जीभ लोलुप हो जाती है। ....इसके विपरीत यदि मन में विकार या रा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नहीं है तो आंखें सम्यक देखती हैं, कान सम्यक सुनते हैं।......कुछ ग कह देते हैं कि यह जीभ बहुत बुरी है, क्योंकि बहुत-से पाप इसके रा ही होत हैं। यह खाकर भी नुकसान करती है और बोलकर भी। यह क है कि खाने और बोलने के असंयम से आदमी बहुत बड़ा नुकसान ाता है। पर वस्तुतः इसमें जीभ का कोई भी दोष नहीं है। दोष मन के कार का ही है। यदि मन में विकार/आसक्ति/लालुपता न हो तो जीभ ई गलत कार्य नहीं करेगी। वह अप्रिय/कर्कश/अश्लील नहीं बोलेगी। च्छी-से-अच्छी वस्तु सामने आने पर भी उसे आसक्तिपूर्वक नहीं एगी।

श्री गीली कैसे हो

किसी व्यक्ति ने एक संत को मिश्री का एक टुकड़ा दिया और हा‘इसे मुंह में रख लीजिए।’ उसे मुंह में रख लिया। दो मिनट के द उस व्यक्ति उसे वापस निकालने के लिए कहा। उन्होंने तत्काल श्री का वह टुकड़ा मुंह से निकालकर उसके हाथ में थमा दिया। वह क्ति यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि मिश्री का टुकड़ा थूक गीला नहीं हुआ है! उसी भावधारा में उसने पूछा‘यह क्या ! मुंह में ी हुई मिश्री गीली क्यों नहीं हुई?’ संत बोले‘मुंह में रखने से मिश्री ली कैसे हो? वह तो खाने से गीली होती। तुमने मिश्री को मात्र मुझे में रखने के लिए कहा था, खाने के लिए नहीं। जब खाने की मेरी वना ही नहीं थी, तब इसके लार कैसे लगती?’

बन्धुओ! यह बात शायद आपकी समझ में न आए, पर वस्तुतः संभव नहीं है। जब मन विकाररहित होता है तो जीभ की क्या ताकत कि वह किसी वस्तु के प्रति आसक्ति करे ?

प परम ज्ञान हैं

आप देखें, इसी जीभ से एक आदमी मीठा बोलता है और दूसरा कश। यदि जीभ ही बुरी हो तो यह कैसे संभव हो सकता है? बुढ़िया इकलौता बेटा वर्षों से घर नहीं लौटा। वह बड़ी चिंतित थी। एक दिन वह पानी भरने के लिए कई तो उसने तालाब की पाल पर दो ोतिषियों को बैठे देखा। वह उनके समीप गई और विनम्रतापूर्वक नी‘पंडितजी महाराज ! मेरा इकलौता पुत्र वर्षों पहले परदेश गया था। तक वापस घर नहीं आया। कृपया बताएं कि वह मुझे कब मिलेगा?’

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस प्रश्न के साथ ही उसके माथे पर रखा पानी से भरा घड़ा नीचे ि
कर चूर-चूर हो गया। ऐसा हुआ कि नहीं हुआ, उन दोनों ज्योतिषि
में से एक ज्योतिषी बोल उठाह्न'तेरा बेटा मर गया।'

सुनते ही बुढ़िया के शरीर में आग-आग लग गई। उस ज्योति
को दुत्कारती हुई बोलीह्न'मूर्ख ! हट जा मेरी आंखों के सामने से।
नहीं सुनना चाहती तेरे मुंह का एक भी शब्द। नहीं देखना चाहती
क्षण के लिए भी तेरा मुंह।'

दूसरे ज्योतिषी ने भी अपना फलित किया। वह बुढ़िया
आश्वस्त करता हुआ मधुर शब्दों में बोलाह्न'मां ! तू अधीर मत ब
बेशक तेरा बेटा अभी-अभी तुझे घर पर आया मिलेगा।'ह्न'पंडितज
आप परमज्ञानी हैं। आपकी वाणी में अमृत है। मेरा बेटा मुझे अव
घपर मिलेगा।' वह उन्हीं पैरों अपने घर पहुंची। सचमुच उसका बेटा
के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

बंधुओ! यह कहानी लंबी है। मैं अभी इसे लंबाना नहीं चाहता
कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जीभ कोई बुरी नहीं है। बुरा है मन
छुपा अज्ञान, वासना और राग-द्वेष।

इंद्रयां सावद्य हैं या निरवद्य

कुछ लोग तत्त्व-दृष्टि से इंद्रियों को सावद्य मानते हैं। परंतु आच
भिक्षु का अभिमत इससे सर्वथा भिन्न है। उनके पास जब यह चर्चा
तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इंद्रियां सावद्य नहीं, निरवद्य
इंद्रियां क्षयोपशम भाव हैं, उदय भाव नहीं है।(यह कथन मात्र भाव इंद्रि
की अपेक्षा से है।) क्षयोपशम भाव अर्थात आत्मा की उज्ज्वलता से
जो कुछ प्राप्त होता है, वह कभी भी सावद्य नहीं हो सकता। उदय भ
यानी कर्मोदय से मिलनेवाली चीज सावद्य होती है। उन्होंने इस वि
पर *इंद्रियवादी री चौपी* नाम से एक पूरे ग्रंथ की रचना कर दी। इस
में उन्होंने सटीक तर्कों के द्वारा अपनी बात को सत्यापित किया है। अ
यदि इस ग्रंथ को पढ़ें तो यह महसूस करेंगे कि स्वामीजी का तात्वि
ज्ञान कितना तलस्पर्शी और यथार्थता से परिपूर्ण था।

हां, तो मैं इस बात को पुनः कहता हूं कि इंद्रियां स्वयं बुरी न
हैं, बुरीहै मन की वासना, राग-द्वेष। इसलिए यदि बुराई से मुक्त होना
तो इंद्रियां को निष्क्रिय करने से कोई उद्देश्य फलित नहीं होगा। उद्दे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लित होने का एकमात्र उपाय है कि व्यक्ति अपने अंतन का शोधन । अंतर-शोधन की प्रक्रिया का नाम हैहृधर्म। धर्म में वह शक्ति है, व्यक्ति के अंतर को धोकर उसे बिलकुल निर्मल बना सकता है। द धर्म में यह शक्ति न हो तो उसकी कोई उपयोगिता या उपादेयता नहीं है। जैसा कि आप सब अनुभव करते हैं, धर्म इस दृष्टि से पूर्ण नम है। अतीत में उसने आत्मशोधन का कार्य किया है, वर्तमान में रहा है और अनागतकाल में सदा करता रहेगा।

र्म का शाश्वत मूल्य

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक धर्म को समाप्त ने के अनेकानेक प्रयत्न हुए। पर धर्म कभी समाप्त नहीं हुआ। हां, र्म को समाप्त करनेवाले अवश्य धार्मिक बन गए या स्वयं समाप्त हो । मैं मानता हूं, यह एक वास्तविक है। इसे कभी भी झुठलाया नहीं सकता। आप निश्चित मानें, जब तक धर्म अपने मूलभूत उद्देश्य की र्म करता रहेगा, तब तक अनंत काल में भी उसके अस्तित्व को कोई तरा नहीं है। हां, एक स्थिति में खतरा अवश्य है और वह समाप्त भी सकता है। वह स्थिति हैहृजब व्यक्ति स्वयं अपने धर्म को छोड़ने ा। जब स्वयं धार्मिक अपने आत्म-गुणों को छोड़कर वैभाविक गुणों में ला जाता है, दुराचरण करने लगता है, तब उसका धर्म अपने-आप ाप्त हो जाता है। पर संसार के किसी भी अन्य व्यक्ति की यह मर्थ्य नहीं कि वह किसी के धर्म को समाप्त कर सके। दूसरा व्यक्ति धिक-से-अधिक कुछ करे तो किसी को पीट सकता है। उसके हाथ-पैर ड़ सकता है। उसे गोली से उड़ा सकता है।......पर उसके आत्म-गुणों छीन सके, यह उसकी मजाल से परे की बात है। इसलिए मैंने कहा धर्म शाश्वत है, धर्म की उपयोगिता शाश्वत है। संसार की कोई भी ती उसके अस्तित्व को कभी मिटा नहीं सकती।

धिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान का अंतर

मैंने प्रासंगिक तौर पर कुछ दूसरी-दूसरी बातें कह दीं। अब मैं पुनः ःपर्यायज्ञान की चर्चा पर आता हूं। मनःपर्यायज्ञान के दोनों प्रकारों को ना इसके अनंतर आपको यह जानना है कि अवधिज्ञान और ःपर्यायज्ञान में क्या अंतर है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयभेदारवधेर्भिन्नः।

विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषयह्नइन चार भेदों के द्वारा अवधिज्ञ
और मनःपर्यायज्ञान के अंतर को समझाना चाहिए।

विशुद्धिकृत भेदह्नअवधिज्ञान जिन मनोद्रव्यों को जानता है, उ
मनोद्रव्यों को मनःपर्यायज्ञानी विशुद्धता से जानता है।

क्षेत्रकृत भेदह्नअवधिज्ञानी अंगुली के असंख्यातवें भाग से लो
समस्त लोक को जानता है। मनःपर्यायज्ञान केवल 'मनुष्य-क्षेत्र' त
सीमित है।

स्वामिकृत भेदह्नअवधिज्ञान नारक, तिर्यंच, देव और मनुष्य स
को होता है, जबकि मनःपर्यायज्ञान केवल मनुष्स को होता है। मनुष्य
भी पूर्ण संयमी मनुष्य यानी साधु को ही होता है।

आप कहेंगे कि यह क्या पक्षपत। नहीं, यह पक्षपात की बात न
है। यह पात्रता और अपात्रता के कारण है। मनः पर्यायज्ञान की स्थिति
कुछ ऐसी है कि वह पूर्ण संयम के बिना प्राप्त नहीं होता। इसलिए
प्राणी संयमी नहीं होते, उनके लिए यह ज्ञान अलभ्य है।

चूंकि साधु पूर्ण संयमी होता है, इसलिए वह मनःपर्यायज्ञान
प्राप्त करने का पात्र है। यों तो संयम गृहस्थ के जीवन में भी हो सक
है, पर उसका संयम अपूर्ण होता है, पूर्ण नहीं। हमारे यहां कहा गया
कि एक गृहस्थ हरदम एकांतर तप करता है, पौषध करता है, सामायि
करता है तथा एक साधु प्रतिदिन आहार करता है, फिर भी दोनों
तुलनात्मक दृष्टि से साधु बड़ा है। आप पूछेंगे, क्यों इसका समाध
यही है कि गृहस्थ चाहे कितनी भी तपस्या, साधना क्यों न करता
उसके पापकर्म आने का रास्ताह्नआश्रव-द्वार (अशुभ योग आश्रव) स
खुला रहता है, जबकि उपवास न करते हुए भी साधु के लिए वह रास
बंद रहता है।

गृहस्थ सामायिक करता है। सामायिक में सावद्य प्रवृत्ति करने
त्याग होता है। आप कहेंगे, तब तो वह एक प्रकार से साधुह्नपूर्ण संय
बन गया। नहीं, ऐसा नहीं होता। साधु और उसमें काफी अंतर
सामायिक करने के उपरांत यानी सावद्य योग का त्याग करने के बाव
उसके अप्रत्यक्ष रूप से पापकारी प्रवृत्ति चालू रहती है। उदाहरणार्थह्नव
व्यक्ति सामायिक करने के लिए धर्मस्थान पर आता है। घर से चलने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वह रसोइए को आदेश देकर आता है कि मेरे लिए अमुक-अमुक र्थ बनाकर तैयार रखना। अब उसने आकर सामायिक कर ली। पर जन के निमित्त होनेवाली सावद्य क्रिया उसके अप्रत्यक्ष रूप से चालू ती है। दूसरा उदाहरण देखेंह्नकिसी ने आज पौषध किया। पौषध में पूरे की सामायिक होती है। एक दिन के लिए व्यक्ति साधुवत बन जाता मैं पूछना चाहता हूं, यदि उस व्यक्ति के एक लाख रुपये ब्याज में हुए हैं तो क्या वह उस दिन का ब्याज छोड़ देता है ? नहीं छोड़ता। ने का सारांश यही है कि गृहस्थ के आश्रव-द्वार (अशुभ योग आश्रव) ा खुला रहता है। इसलिए वह कभी पूर्ण संयमी नहीं हो सकता। पूर्ण मी साधु ही होती है।

आप कहेंगे, बत तो मनःपर्यवज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें भी धु बनना होगा। हां, निश्चित ही बनना होगा। जब तक आप साधु ां बनेंगे, तब तक मनःपर्यायज्ञान आपके लिए अप्राप्य है।

मैं कई बार लोगों के मुंह से इस आशय की शब्दावली सुनता हूं हमारे धर्म में तो गृहस्थ को भी मुक्ति है, पर जैन धर्म में उसके ए साधु बनना जरूरी है। मैं मानता हूं, यह एक प्रकार की भ्रांति है। भ्रांति को मिटाना चाहिए। यह ठीक है कि मुक्ति प्राप्त करने के ए साधु बनना अनिवार्य है। पर साधु बनने का अर्थ केवल साधुवेष रण करना नहीं है। यह तो मात्र साधु का ऊपरी चिह्न है। हालांकि का भी कई दृष्टियों से महत्त्व है, तथापि निश्चय दृष्टि से तो साधुत्व संबंध अंतर के भावों से है। जिस दिन अंतर में साधुवृत्ति आ जाती उस दिन निश्चय नय की दृष्टि से साधुत्व आ जाता है, भले व्यक्ति ऊपरी वेष गृहस्थ का भी क्यों न हो। इसके विपरीत यदि किसी ने धु का वेष स्वीकार भी कर लिया, पर अंतर के भावों में साधुवृत्ति ां आई, यानी पूर्ण संयम नहीं आया तो वह द्रव्य साधु ही है, भाव धु नहीं। मुक्ति का संबंध भाव साधुत्व से है, न कि द्रव्य साधुत्व से। लिए इस बात को ठीक ढंग से समझ लेना चाहिए कि जैनधर्म में क्ति प्राप्त करने के लिए साधु बनना किस संदर्भ में अनिवार्य बताया ा है।

विषयकृत भेदह्नअवधिज्ञान का विषय समस्त रूपी द्रव्य और उनके र्ण पर्याय हैं। मनःपर्यायज्ञान का विषय हैह्नउनका अनंतवां भागह्न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

समनस्क जीवों की मनोवग्रणा।

मनःपर्यायज्ञान के संदर्भ में एक बात जानना और आवश्यक
मनःपर्यायज्ञानी दूसरों के मनोभावों को जानता है, पर जाने हुए मनोभ
को वह सबके सामने अभिव्यक्त करे, यह कोई आवश्यक नहीं है। क्यो
यह इसलिए कि कई बार जानी हुई किसी बात को प्रकट करना अत
खतरनाक होता है। उससे बहुत बड़े अहित की संभावना रहती
इसीलिए भगवान महावीर ने साधु के लिए निदेश दियाह्न

बहुं सुणेई कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छई।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहई।।

ह्न साधु कानों से बहुत-सी बातें सुनता है, आंखों से बहुत-
बातें देखता हैं, पर सुनी और देखी हुई सभी बातों का प्र
करना उसके लिए उचित नहीं।

तात्पर्य यह कि वह मात्र उन्हीं बातों को प्रकट करे, जिनके प्र
होने से किसी प्रकार के अहित होने की संभावना न हो। सचमुच
बहुत ही गहरी बात है। सत्य बोलने में भी साधक को बहुत विवेक
अपेक्षा हैह्नइसका यह निदेशक-सूत्र है। हर साधक को इसे गहराई
समझाना चाहिए।

गंगाशहर

१८ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३६ : केवलज्ञान

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यायज्ञान के इन चार प्रकारों का चन मैंने पिछले प्रवचनों में किया। विवेचन के इसी क्रम में आज हमैं लज्ञान का विवेचन करूंगा।

निखिलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारि केवलम्।

जिस ज्ञान के माध्यम में समस्त द्रव्यों और पर्यायों का साक्षात ध होता है, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। यह भी अतींद्रयइंद्रियातीत न है। अर्थात इस ज्ञान में इंद्रियों और मन की कोई अपेक्षा या योगिता नहीं रहती। हालांकि इंद्रियातीत ज्ञान तो अवधि और ःपर्याय भी हैं, पर इनका ज्ञान-क्षेत्र सीमित है। अवधि समस्त लोक जानता है, पर मात्र रूपी द्रव्यों की अपेक्षा से। अरूपी द्रव्यों को वह ां जान सकता। रूपी द्रव्यों के भी समस्त पर्यायों को वह नहीं जानता। प्रकार मनःपर्यायज्ञान मनोवर्गणा को और उनके असमस्त पर्यायों को नता है। साक्षात मनोभावों को जानना भी उसकी सीमा से परे है। लज्ञान में ये सारी सीमाएं समाप्त हो जाती हैं। यह सीमातीत ज्ञान इस ज्ञान को प्राप्त व्यक्ति रूपी-अरूपी समस्त द्रव्यों एवं उनके स्त पर्यायों का आत्मा के स्तर पर साक्षात बोध करता है।

यहां एक बात और स्पष्ट कर लेनी चाहिए। यद्यपि श्रुतकेवली भी लज्ञानी की तरह ही संपूर्ण लोक के समस्त द्रव्यों एवं उनके सभी यों को जानते हैं, फिर भी दोनों में अंतर है। अंतर क्या है ? अंतर जानने की पद्धति का। श्रुतकेवली सब द्रव्यों एवं पर्यायों को शास्त्रीय न के आधार पर जानतें हैं और क्रमशः जानते हैं, जबकि केवलज्ञानी द्रव्यों एवं पर्यायों को साक्षात जानते हैं और एक साथ जानते हैं।

लज्ञान कब प्रकट होता है

आप पूछ सकते हैं कि केवलज्ञान किस-किसमें होता है। मैं पूछता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हूं, वह किस-किसमें नहीं होता? तत्त्वतः हर आत्मा में केवलज्ञान है। में भी है, आप सब में भी है और प्रत्येक और बादर-से-बादर अ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म में भी है। पर मुश्किल यह है कि अभी तक वह अप्र अवस्था में है। आप पूछेंगे कि वह प्रकट कब होता है। वह प्रकट होता वीतरागता की अवस्था में। जब आत्मा राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त जाती है, उस विशेषवस्था में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। दूसरे श में जब व्यक्ति पूर्ण समता में अवस्थित हो जाता है तो केवलज्ञान प्राप्ति होती है । पूर्ण समता के अभाव में केवलज्ञान कदापि प्राप्त न हो सकता। केवलज्ञान की बात तो दूर, पूर्ण सममात के बिना आदमी अत्मिक सुख और शांति भी प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए सबसे ब अपेक्षा यह है कि हम पूर्ण समता/वीतरागता को प्राप्त करें।

आप पूछेंगे कि क्या केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात आ व्यापार कर सकता है, राज्य का संचालन कर सकता है? युद्ध का मो संभाल सकता है, परिवार का संरक्षण कर सकता है, इन सारे प्रश्नों उत्तर नकारात्मक हैं, क्योंकि व्यापार आदि में राग-द्वेष अवश्यंभावी स्थूल राग-द्वेष से चाहे कोई बच भी जाए, पर सूक्ष्म राग-द्वेष तो रह ही है।

केवलज्ञानी में यथाख्यात चारित्र होता है। वे नितांत आत्मरण क रहते हैं। उनकी हर प्रवृत्ति आत्म-साधना की दृष्टि से ही होती है। प्र की इस शृंखला में कोई पूछ सकता है कि केवलज्ञानी भोजन करते या नहीं, हास्य-रुदन करते हैं या नहीं, बीमार होते हैं या नहीं, चिकि करवाते हैं या नहीं, उत्सुकता दिखाते हैं या नहीं।.......

इनमें से कुछ प्रश्नों के उत्तर 'हां' में हैं और कुछ प्रश्नों के उ 'नहीं' में हैं। केवलज्ञानी भोजन करते हैं, बालते हैं, बीमार होते चिकित्सा करवाते हैं, पर वे उत्सुकता नहीं दिखाते, हंसते नहीं, नहीं। इसका कारण यह है कि किसी बात को जानने की उत्सुक दिखाना ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृति है। केवलज्ञानी के ज्ञानवरणीय का सर्वथा क्षय हो जाता है, इसलिए उत्सुकता नाम की कोई ब अविशष्ट नहीं रहती। उत्सुकता उसी को रहती है, जिसका ज्ञान पूर्ण से अनावृत नहीं होता, केवलज्ञान के स्तर तक नहीं पहुंचता। इसी प्रक हास्य, रुदन आदि मोहनीय कर्म की प्रकृतियां है। केवलज्ञानी मोह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र्म का सर्वथा क्षय कर देते हैं, इसलिए वे न कभी हंसते और न कभी ा हैं।

केवलज्ञानी भय से भी सर्वथा मुक्त होते हैं। किसी प्रकार का भय हें नहीं सताता। सामान्य मनुष्यों में तो भय की स्थिति बड़ी विचित्र ती है। लोग कहते हैं, भूत खाते हैं। पर मुझे तो लगता है कि लोगों भूत नहीं, उनका स्वयं का भय ही खाता है। कल ही मुझे एक टित घटना सुनाई गई।

किसी व्यक्ति के मन में एक विचार-तरंग उठी कि मुझे श्मशान में कर कील गाड़नी है। अपने विचार की क्रियान्विति के लिए वह श्मशान ओर चल पड़ा। किंतु वह थोड़ी ही दूर गया होगा कि भय ने उसे लिया। इसके बावजूद वह साहस बटोरकर श्मशान में पहुंचा। उसने टपट कड्ढे खोदा और उसमें कल गाड़ीं इस समय तक वह इतना भती हो चुका था कि अब उसके लिए एक क्षण भी वहां खड़ा रहना ठेन हो गया। ज्यों ही उसने वहां से भागने के लिए कदम उठाया कि ा महसूस हुआ कि किसी ने मुझे पकड़ लिया हे। भयाक्रांत बना वह काल बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा। दो-तीन घंटों तक जब वह घर नहीं टा तो परिवारवालों तथा साथियों को बड़ी चिंता हुई है। वे लोग को खोजते-खोजते श्मशान-भूमि में पहुंचे। अब तक वह बेहोश ही ा था। प्रयत्न किए जाने पर वह होश में आया। उससे पूछा गयाह्न'तुम ां क्यों पड़े हो ?' उसने कहाह्न'मुझे किसी ने पकड़ लिया है।' लोगों कहाह्न'किसी ने नहीं पकड़ा है, तुम्हारी कील ने ही तुम्हें पकड़ा है।' ने आंखें उठाकर पीछे देखा तो सचमुच वहां कोई पकड़नेवाला नहीं केवल उसकी धोती कील में अटकी थी। की गाड़ते समय वह उसमें ़क गई थी।

बंधुओ! ऐसी एक-दो नहीं, अपितु सैकड़ों-सैकड़ों घटनाएं प्रकाश में ती हैं। यह भय भी मोहनीय कर्म के उदय के कारण ही होता है। चूंकि लज्ञानी मोहनीय कर्म को सर्वथा क्षीण कर देते हैं, इसलिए उनको सी प्रकार का भय नहीं सताता। इसी प्रकार रति-अरति, स्त्रीवेद, षवेद, नपुंसकवेद आदि मोहनीय कर्म की प्रकृतियां केवलज्ञानी में प्राप्त ां होतीं।

हमारा वह दिन धन्य होगा, जिस दिन हम केवलज्ञान को प्राप्त कर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लेंगे। पर यह केवल कामना करने से नहीं होगा, अपितु इसके लिए त
पुरुषार्थ की अपेक्षा है। इस दृष्टि से हम सतत जागरूक हैं और उ
दिशा में गतिशील भी हैं। सही दिशा में किया गया पुरुषार्थ एक वि
अवश्य फलित होगा।

अज्ञान

ज्ञान का विवेचन करने के बाद अब मैं अज्ञान के बारे
बताऊंगा। अज्ञान शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हैह्नज्ञान का अभाव अ
मिथ्यात्वसहवर्ती ज्ञान। यहां जिस अज्ञान की चर्चा में कर रहा हूं,
मिथ्यात्वसहवर्ती ज्ञान है।

मति-श्रुत-विभङ्गा मिथ्यात्वसाहचर्यादज्ञानम्।

विभङ्ग अवधिस्थानीयः।

मिथ्यात्विनां ज्ञानावरणक्षयोपशमजन्योऽपि बोधो मिथ्यात्व सहचारित्वात् अज्ञानमुच्यते तथा चागसःह्न

अविसेसिया मईह्नमइनाणं च मइअन्नाणं च।

विसेसिया समदिट्ठिस्स मई मइनाणं।

मिच्छादिट्ठिम्स मई मइअन्नाणं।

यत्पुनर्ज्ञानाभावरूपं औदायिकमज्ञानं तस्य नात्रोल्लेखः।

मनःपर्यायिकेवलयोस्तु सम्यग्दृष्टिष्वेव भावात् आज्ञानानि त्री एव।

जैसाकि मैं पहले बता चुका हूं, जैनदर्शन में सम्यग्दृष्टि के ज्ञान
ही ज्ञान माना गया है। वही ज्ञान यदि मिथ्यादृष्टि के पास हो तो
अज्ञान कहलाता है। वह आन ज्ञानावरणीय कर्म का उदय नहीं, अपि
क्षयोपशम ही है, पर अपात्र के योग से वह कुत्सित हो जाता
इसीलिए हमारे यहां पात्र-अपात्र के विवेक को बहुत महत्त्व दिया गया
हम व्यवहार में भी देखते हैं कि अच्छी-से-अच्छी वस्तु भी गलत ह
में जाने से अहितकर हो जाती है, खतरनाक साबित होती है। लो
तलवार से अपनी रक्षा करते हैं पर वही तलवार जब बंदर के हाथ
चली जाती है तो उसका परिणाम बड़ा भयंकर आ सकता है।

पंडितोऽपि वरं शत्रुः.......

राजा ने बंदर को अपना अंगरक्षक नियुक्त किया। एक दिन रा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रहा था और बंदर नंगी तलवार लिए पास में बैठा था। उसने देखा, मक्खी राजा के गले पर बैठी है। उसने उसे उड़ाने का एक से धिक बार प्रयास किया। पर वह उड़ी नहीं। बंदर को गुस्सा आ गया। ने गले पर बैठी मक्खी पर तलवार से वार करने के लिए हाथ ऊंवा ाया। संयोग से उसी समय एक चोर राजा के कक्ष में घुसा। उसने दृश्य देखा तो वह चोरी की बात तो भू गया और झट पीछे से कर उसने बंद का हाथ पकड़ा। इतने में राजा के आंखें खुली गईं। ल में चोर आया जान उसने तत्क्षण उसे पकड़ने का आदेश दिया। र ने कहाह्न'यह ठीक है कि मैं चोर हूं और चोरी की नीयत से ही ां आया था, पर यहां मैंने एक कौड़ी की भी चोरी नहीं की है, प्रत्युत पको जीवनदान दिया है।' राजा ने साश्चर्य पूछाह्न 'मुझे जीवनदान ने ?' चोर ने बतायाह्न'यहां जो आपके गले पर मस्सा है, उसको खी मानकर आपके इस अंगरक्षक ने आपके गले पर तलवार चलाने तैयारी की थी। पर संयोग से मैंने देख लिया और इसका हाथ पकड़ या। परिणामतः आप बच गए। यदि मैं इस कार्य में एक क्षण की भी कर देता तो न तो आप आज होते और न ही मुझे बंदी ही बनाया ता है।'

राजा ने वस्तुस्थिति का अंकन किया और सहसा उसके मुंह से कल पड़ाह्न**पंडितोऽपि वरं शत्रुः, न मूर्खो हितकारकः।** चोर को स्कृत कर छोड़ दिया गया।

बंधुओ! यही स्थिति ज्ञान की है। ज्ञान भी कुसंगति से, मिथ्यादृष्टि पास जाने से अज्ञान बन जाता है। इसलिए अपेक्षित है कि व्यक्ति से पहले अपनी दृष्टि को सम्यक बनाए। सम्यग्दृष्टि होने के बाद ही ज्ञान-प्राप्ति का सच्चा अधिकारी बनता है।

अज्ञान के तीन प्रकार हैंह्न

मति अज्ञानह्नमिथ्यात्वी का मति ज्ञान, मति अज्ञान कहलाता है।

श्रुत अज्ञानह्नमित्यात्वी का श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान कहलाता है।

विभंग अज्ञानह्नमिथ्यात्वी का अवधि ज्ञान, विभंग अज्ञान लाता है।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि मनःपर्याय अज्ञान और केवल अज्ञान

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्यों नहीं होते। इसका समाधान यह जानना चाहिए कि मनःपर्यायज्ञ
और केवलज्ञान मात्र सम्यग्दृष्टि व्यक्ति को प्राप्त होते है, मिथ्यादृष्टि
नहीं, जबकि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान मिथ्यादृष्टि
सम्यग्दृष्टि दोनों को समान रूप से प्राप्त होते हैं। इस कारण मनःपय
अज्ञान और केवल अज्ञान नहीं होते।

गंगाशहर

१९ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३७ : दर्शन और उसके प्रकार

ज्ञान और अज्ञान की चर्चा के पश्चात अब हम दर्शन पर विचार गे। दर्शन शब्द मत और देखना (अवबोध) दोनों अर्थों में व्यवहृत ता है। प्रस्तुत संदर्भ में हम जिस दर्शन शब्द की बात कर रहे हैं, वह ने के अर्थ में है।

सामान्यग्राहित्वाद् दर्शनमनाकारः।[1]

जैसाकि मैं पहले ही बता चुका हूं, दर्शन वस्तु के सामान्य धर्म को ण करता है। वह सामान्य रूप से वस्तु का ज्ञान करता है। उसके त्तारहृभेद-प्रभेद में नहीं जाता। इंद्रिय से पदार्थ का संयोग होने के बाद प्रथम क्षण का अस्पष्ट अवबोध होता है, वह दर्शन है। इसमें वस्तु स्पष्ट आकार समाने नहीं आता। इसलिए इसे अनाकार उपयोग कहा ता है। उसके पश्चात वह वस्तु क्या है, कैसी है, कब की है, किसकी आदि-आदि बातों का समाधान होने से उसका स्पष्ट चित्र सामने

जैनसिद्धांतदीपिका के संशोधित तृतीय संस्करण (सन १९९२) में अमुक सूत्र के स्थान पर निम्नांकित सूत्र रखा गया हैह्न

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस्य द्रव्यस्य उत्पादव्ययत्मकं पर्यायं गौणीकृत्य ध्रौव्यस्य।

ग्राहंक दर्शनं अनाकार उपयोग। इत्युच्यते। निर्विकल्प उपयोग इत्यस्य पर्यायः।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य के उत्पाद-व्ययरूप पर्याय को गौण कर केवल ध्रौव्य धर्म की ग्रहण करनेवाला दर्शन *अनाकार उपयोग* कहलाता है। इसका दूसरा नाम हैह्ननिर्विकल्प उपयोग।

दर्शन यानी *अनाकार उपयोग* की पूर्व व्याख्या और इस नई व्याख्या में कोई मौलिक अंतर नहीं है। मात्र विवक्षाभेद है। इस विवक्षा में अनाकार उपयोग को सामान्यग्राही ज्ञान के स्थान पर ध्रौव्यात्मक ज्ञान के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आता है। यह सब जानना *साकार उपयोग* है। *साकार उपयोग* को ज्ञ
कहा गया है।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानि।

चक्षुषः समान्ययबोधः चक्षुर्दर्शनम्।

शेषन्द्रियमनसोरचक्षुर्दर्शनम।

अवधिकेवलयोश्च अवधिकेवलदर्शने।

मनःपर्यायस्य मनसःपर्यायविषयत्वेन सामान्यबोधाभाव
दर्शनम्।

दर्शन के चार भेद हैंह्न१. चक्षुदर्शन २. अचक्षुदर्शन ३. अवधिद
४. केवलदर्शन।

चक्षुदर्शनह्नचक्षु के द्वारा जो सामान्यरूप से देखा जाता है,
चक्षुदर्शन है।

अचक्षुदर्शनह्नचक्षु को छोड़कर शेष इंद्रियों एवं मन के द्वारा कि
गए सामान्य बोध का अचक्षुदर्शन कहा जाता है।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि आंखों के द्वारा देखने की बात
बुद्धिगम्य है, पर दूसरी इंद्रियों एवं मन के द्वारा देखने की बात का क
तात्पर्य। आंखों से देखने की बात तो बिल्कुल स्पष्ट है। पर थोड़ी-
गहराई से ध्यान देने से पाएंगे कि हम केवल आंखों से नहीं, अ
दूसरी-दूसरी इंद्रियों एवं मन से भी देखते हैं। दाहरणार्थह्नघोर अंधकार
एक व्यक्ति के हाथ में नींबू आया। हाथ में आते ही वह जान लेता
कि यह नींबू है। यह नींबू होने का ज्ञान उसने आंखों से नहीं, ब
स्पर्शनेंद्रिय से किया। इसी प्रकार चखकर, सूंघकर (रसनेंद्रिय व घ्राणें
से) भी उसका ज्ञान किया जा सकता है।

अभी बाहर स्कूटर की खट-खट की आवाज हो रही थी। क्या
हमने आंखों से देखकर जाना? नहीं, बिलकुल नहीं। हमने यह द
कानों से आवाज सुनकर किया।

मैंने मन से प्रवचन सुना

दिल्ली में एलिजाबेथ नाम एक विदेशी महिला मेरे प्रवचन में आ
हिन्दी भाषा वह नहीं समझती थी। पर मैंने देखा कि मेरा प्रवचन सुन
वह भाव-विभोर हो रही है। प्रवचन-समाप्ति के पश्चात मैंने उ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाह्न'क्या तुमने प्रवचन सुना ?' स्वीकृतिसूचक सर हिलाते हुए उसने ाह्न'हां' तब मैंने पूछाह्न'तुम मेरी भाषा तो बिलकुल नहीं समझती, र प्रवचन कैसे सुना ?' वह बोलीह्नमैंने कानों से नहीं, अपितु मन से चन सुना। आप अपने हाथों से, आंखों से, चेहरे से जो भाव प्रदर्शित रहे थे, वे मैं सब समझ रही थी।'

नहीं भटकूंगा, तुम्हीं भटकोगे

आपने आपने देखा कि कुछ-कुछ अचक्षु व्यक्ति जैसा जानते हैं र देखते हैं, वैसा बहुत-से आंखवाले भी न जान सकते हैं और न ही ब सकते हैं। छापर (चूरू) में शेरा नाम का एक अचक्षु भाई था। घर पर ऊंट रखता और उस पर लोगों को सारी करवाकर अपनी जीविका चलाता। अचक्षु होने के बावजूद उसका अचक्षुदर्शन हतना ल था कि वह लोगों को बिलकुल ठीक स्थान पर पहुंचाता। कभी-ी परीक्षा लेने के लिए दूसरे-दूसरे लोग उसके साथ हो जाते। वे को गलत मार्ग पर ले जाने का प्रयास करते। पर वह तत्काल अपना ट सही रास्ते पर मोड़ लेता। लोग कहतेह्न'शेरा ! तू उधर मत जा, ीं भटक जाएगा।' वह कहताह्न'मैं नहीं भटकूंगा, तुम्हीं भटकोगे। मैं नकुल सही रास्ते पर जा रहा हूं।' आखिर उन्हें हार माननी पड़ती है।

सुजानगढ़वासी गणेशमलजी कठोतिया को आमें से अनेक व्यक्तियों देखा होगा। बहुत बचचन से ही वे अचक्षु हो गए थे। पर उनका चक्षुदर्शन अत्यंत प्रबल था। विशाल परिवार का सारा लेखा-जोखा वे ते थे। एक बार जिस मकान से होकर गुजर जाते, उसका पूरा-पूरा त्र उनके ध्यान में आ जाता।

इस प्रकार के दो नहीं, अपितु सैकड़ों उदाहरण हमें देखने को मिल कते हैं, जिनमें बिना आंखों के भी व्यक्ति बहुत-कुछ देखता है, नता है। यह अचक्षुदर्शन है।

अवधिज्ञानह्नअवधि के सामान्य बोध को अवधिदर्शन कहा जाता है।

केवलदर्शनह्नकेवल का सामान्य बोध केवलदर्शन कहलाता है।

ःपर्याय दर्शन क्यों नहीं

यहां एक बात और जान लेने की है। ज्ञान के पांच प्रकार हैं, पर नि के चार ही प्रकार हैं। इसका कारण यह है कि मनःपर्यायज्ञान,

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, मन के पर्यायों को, उसकी विभि अवस्थाओं को जानता है। पर समान्य रूप से मन का ग्रहण नहीं करत चूंकि दर्शन सामान्यग्राही है, विशेषग्राही नहीं है, अर्थात विभि अवस्थाओं का ज्ञान करना उसका काम नहीं है, इसलिए मनःपर्याय ज्ञ ही है, मनःपर्याय दर्शन नहीं।

इंद्रिय

दर्शन का विवेचन करने के के बाद अब मैं इंद्रिय के बारे बताऊंगा। आप कह सकते हैं कि इंद्रियों से तो हम बिल्कुल परिचित हरदम हम उनका उपयोग करते हैं, फिर उनके बारे में बताने का व अर्थ हो सकता है। यह ठीक है कि आप इंद्रियों से परिचित हैं, उन उपयोग भी करते हैं, पर मैं मानता हूं कि आपका इस बारे में ज्ञान इत स्थूल है कि परिचित होकर भी आप उनसे अपरिचित हैं।

प्रतिनियतार्थग्रहणमिन्द्रियम्।

प्रतिनियताः शब्दादिविषया गृह्यन्ते येन तत् प्रतिनियता ग्रहणमिन्द्रियं भवति।

इंद्रिय शब्द इंद्र से बना है। इंद्र का अर्थ हैह्नस्वामी। यानी आत् इंद्र का चिह्न इंद्रिय कहलाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि आ का जो चिह्न है या जिसके द्वारा आत्मा को पहचाना जाता है, वह इं है। दूसरे शब्दों में अपने नियत विषय (शब्द, रूप आदि) का ज्ञ करनेवाली आत्म-चेतना की इंद्रिय कहते हैं।

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणी।

इंद्रियां पांच हैंह्न१. स्पर्शन २. रसन ३. घ्राण ४. चक्षु ५. श्रो

पांच इंद्रियां एवं मनह्नइन छहों में आत्मा को कार्य विभक्त है। स का काम स्पर्श इंद्रिय करती है। रस-ग्रहण का कार्य रसन इं सम्पादित करती है। गंध ग्रहण करने का कार्य घ्राणेंद्रिय रूप ग्रहण क का कार्य चक्षुरिंद्रिय और शब्द ग्रहण करने का कार्य श्रोत्रेंद्रिय करती चिंतन करने का काम मन द्वारा होता है। ये सभी अपने-अपने कार्य में ही व्याप्त हैं। अपनी-अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दूसरे-दूसरे सीमा में नहीं आते। यानी स्पर्शन कभी चक्षु का काम नहीं करती अ चक्षु कभी स्पर्शन का काम नहीं करती।......यह कार्य-क्षेत्र का बंटव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ना सुंद और व्यवस्थिति है कि किसी को किसी के प्रति शिकायत नहीं शिकायत वहीं होती है, जहां बंटवारे में पक्षपात की बू आती है।

सेठ के चार बेटे थे। शरीर छोड़ने से पूर्व उसने गुप्त प्रणाली से रों पुत्रों में अपनी सारी चल-अचल सम्पत्ति का सुव्यवस्थित बंटवारा दिया। बेटों से कह दिया कि मकान के चारों कोनों में चार घड़े गड़े हैं। मेरी मृत्यु के पश्चात उन्हें निकाल लेना और अपने-अपने नाम घड़ा ले लेना।

सेठ का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात चारों भाई परस्पर मिले और के निदेशानुसार चारों ने मकान की चारों दिशाओं में गाड़े गए चारों ों को बाहर निकाला। सबसे बड़ा भाई के नाम जो घड़ा निकला, में कागज के कुछ टुकड़े थे। अनुक्रम से दूसरे भाई के हिस्से में जो ा था, उसमें मिट्टी के ढेले निकले। तीसरे भाई के घड़े में हड्डियों के ड़े पाए गए। सबसे छोटा भाई का घड़ा भी खोला गया। तीनों भाइयों अपने पिता के इस व्यवहार पर बड़ा रोष हुआ कि उन्होंने सारे मती रत्न-जवाहरात सबसे छोटे भाई को दे दिए हैं। तीनों ने सोचा, ापे में उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, इसलिए उन्होंने इतना पक्षपातपूर्ण वारा किया है। उन्होंने छोटे भाई से स्पष्ट कह दिया कि पिताजी ने हे यह धन तुम्हें दे दिया है, पर हमें उनका यह पक्षपातपूर्ण बंटवारा ी मान्य नहीं है। हम इस धन को बराबर बंटवारा करेंगे। छोटे भाई तर्क था कि पिताजी ने अपनी इच्छा से जो कुछ कर दिया, वह तिम निर्णय हैं उनके निर्णय को बदलने का हमें कोई अधिकार नहीं है। प्रकार संघर्ष खड़ा हो गया और इस स्तर पर खड़ा हो गया कि ों तरफ से न्यायालय में जाने की पूरी तैयारी भी कर ली गई।

उसी शहर में दिवंगत सेठ का एक घनिष्ठ मित्र भी रहता था। ने अपने मित्र के पुत्रों में धन के बंटवारे को लेकर होनेवाले संघर्ष बात सुनी। उसके मन में विचार आया, मेरे मित्र बहुत ही समझदार । वह कभी ऐसा बंटवारा नहीं कर सकता, जिससे उसके मरने के चात संघर्ष की स्थिति पैदा हो। हो-न-हो अवश्य कुछ रहस्य है और चारों भाई इस रहस्य को समझ नहीं पाए हैं। इस कारण संघर्ष की वत आई है। मुझे सारी स्थिति को जानना चाहिए। इस चिंतन के साथ अपने दिवंगत मित्र के घर और और उसने चारों भाइयों से स्थिति

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

की जानकारी ली। सारी बात सुनते ही उसका अंदाज बिलकुल स साबित हुआ। उसने चारों भाइयों को अपने पास बिठाकर कहाह्न' बिना मतलब ही आपस में लड़ रहे हो और पिता पर पक्षपात का आ लगा रहे हो। तुम्हारे बाप ने तुम चारों में बिलकुल बराबर बंटवारा कि है। मैं अभी सारा रहस्य समझाकर तुम्हारा संघर्ष तुम्हारी स सहमतिपूर्वक समाप्त कर दूंगा।' उसने सबसे बड़े भाई से कहाह्न'तुम् घड़े में कागज मिले हैं। इसका अर्थ है कि ब्याज के धंधे में जित लेना बाकी है, वह सब तुम्हारा हे। बताओ, तुम्हारी दुकान में अ कितना लेना है?'

सबसे बड़ा भाई वर्षों से लेन-देन का काम संभालता था। उ सारा लेन-देन का काम संभालता था। उसे सारा लेन-देन ख्याल में ही। अतः उसने हिसाब लगाकर कहाह्न'लगभग पांच लाख का।'

वह भाई जमीन-जायदाद का काम देखता था। उसने सारी जमी जायदाद पिता के उस मित्र को बताई। वृद्ध ने पूछाह्न'इसकी अनुम कीमत कितनी है?' उस भाई ने उसकी अनुमानित कीमत लगा कहाह्न'लगभग पांच लाख रुपये।'

दो भाइयों को तो अब अपने पिता की निष्पक्षता का विश्वास ज लगा। पर तीसरा भाई, अब तक भी बिलकुल आश्वस्त नहीं था। उस घड़े में हड्डियों के टुकड़े निकाले थे। वृद्ध ने उससे पूछाह्न'तुम्हारे पिता पशु-धन कितना है?'

वह भाई पशुओं की देखभाल करता था। उसने तत्काल अ ऊंटों, बैलों गायों आदि की अनुमति कीमत लगाकर कहाह्न'लगभग प लाख रुपये का।

वृद्ध ने अब चौथे घड़े के रत्न-जवाहरात बाहर निकाले और सब सहमति से उनकी कीमत का अंकन किया। वे भी लगभग पांच ल रुपयों के निकले। अब वृद्ध ने पूछाह्न'बोलो, तुम्हारे पिता ने धन बंटवारा निष्पक्ष किया था या पक्षपातपूर्ण ?'

बड़े तीनों भाइयों के पास अब बोलने को कुछ भी नहीं था। ती उस वृद्ध की रहस्योद्घाटिनी प्रतिभा के प्रति नत थे। मूर्खता अज्ञानवश अपने पिता के प्रति मन व वाणी पर आए दुर्भाव व दुर्वचनों प्रति उनके मन में बड़ी ग्लानि हुई। चारों भाइयों न सारा सं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

स्परिक पूर्ण सहमति से अपने पिता के उस वृद्ध मित्र के समक्ष सहर्ष
ाप्त कर दिया।

बंधुओ! वे चारों भाई मूर्खतावश अने बंटवारे के लिए ऐसा संघर्ष
सकते हैं, पर इंद्रियां इतनी मूर्ख नहीं हैं। आत्मा द्वारा किए गए
र्यों के बंटवारे के प्रति वे पूर्ण आश्वस्त हैं। इसलिए वे अपने-अपने
र्य-क्षेत्र में व्याप्त रहती हैं।

ाशहर
अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३८ : इंद्रिय के प्रकार

इंद्रिय की चर्चा कल मैंने प्रारंभ की थी। उस चर्चा के अंत
स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र-इन पांच इंद्रियों का संक्षिप्त विवे
आपने सुना। आज उसी चर्चा को मैं और आगे बढ़ाऊंगा।

जैसा कि कल बताया गया, इंद्रिय आत्मा को पहचानने का चि
है। अर्थात विभिन्न इंद्रियों द्वारा आत्मा को जाना जाता है। पर इस सं
में इतना और स्पष्ट कर लेना चाहिए कि पांचों इंद्रियां अधूरी हैं। य
पांचों में से कोई भी एक सभी विषयों का ज्ञान नहीं कर सकती। स्पर्श
केवल स्पर्शन का कार्य कर सकती है, घ्राण, चक्षु, रसन एवं श्रोत्र
नहीं। चक्षु रूप को जान सकती है, पर शब्द, गंध, रस, और स्पर्श
ग्रहण करना उसके सामर्थ्य के बार की बात है। इसी प्रकार सभी इंद्रि
अपने-अपने विषयों का ज्ञान कर सकती हैं। समस्त विषयों का पूरा
करने में तो केवल आत्मा समर्थ है।

संसार के सभी प्राणी इंद्रियसम्पन्न होते हैं। कोई भी प्राणी इस
अपवाद नहीं हो सकता। पर प्राणी-प्राणी में इंद्रियों की प्राप्ति में क
तरतमता होती है। इस दृष्टि से संसार के सारे प्राणी पांच भागों
विभक्त किए जा सकते हैंह्न१. एकेंद्रिय २. द्वींद्रिय ३. त्रींद्रिय
चतुरिंद्रिय ५. पंचेंद्रिय

एकेंद्रियह्नएक इंद्रियवाले प्राणी।

द्वींद्रियह्नइंद्रियवाले प्राणी।

त्रींद्रियह्नतीन इंद्रयवाले प्राणी।

चतुरिंद्रियह्नचार इंद्रियवाले प्राणी।

पंचेंद्रिय ह्नपांच इंद्रयवाले प्राणी।

जिस प्राणी में एक, दो, तीन, चार और पांच जितनी इंद्रियां प्र

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ी है, उस क्रम से वह एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय एवं पंचेंद्रिय
हलाता है। पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु और वनस्पति के सभी प्राणी
द्रिय है। लट, शंख, आदि द्वींद्रिय प्राणी हैं। त्रींद्रिय की कोटि में चींटी,
ोड़ा, जूं आदि प्राणी आते हैं। मक्खी, मच्छर, बिच्छू टिड्डी आदि
ाी चतुरिंद्रिय हैं। नारक, देवता, मनुष्य तथा हाथी, घोड़ा, ऊंट आदि
ु पंचेंद्रिय हैं।

प्रश्न हो सकता है कि एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय और चतुरिंद्रिय
णियों में इंद्रियों की प्राप्ति का क्रम क्या है। इनमें से कोई भी एक, दो
न और चार इंद्रियां प्राप्त हो सकती हैं या इसका कोई निश्चित क्रम है।

यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इंद्रियों को प्राप्ति का एक बिलकुल निश्चित
ा है। इसमें त्रिकाल में भी कभी कोई अंतर नहीं होता। एकेंद्रिय प्राणी
एक स्पर्शन इंद्रिय ही होती है। द्वीद्रिंय, त्रीद्रिंय व चतुरिंद्रिय में क्रमशः
न, घ्राण और चक्षु इंद्रियां और बढ़ जाती हैं। यानी द्वीद्रिंय में स्पर्शन
र रसन, त्रीद्रिंय में स्पर्शन, रसन व घ्राण तथा चतुरिद्रिंय में स्पर्शन,
न, घ्राण व चक्षु इंद्रियां होती हैं। पंचेंद्रिय में पांचों ही इंद्रियां प्राप्त
ी हैं।

स्थूल रूप में इंद्रियों को आपने जाना। अब इन्हें सूक्ष्मता से भी
चानें।

द्रव्यभावभेदानि।

प्रत्येक इंदिरा के दो-दो प्रकार हैंह्न१. द्रव्य इंद्रय २. भाव इंद्रिय।

य इंद्रिय

इंद्रिय का पौद्गलिक आकार और अपने विषय को ग्रहण करने की
द्गलिक शक्ति को द्रव्य इंद्रिय कहते हैं। दूसरे शब्दों में अवास्तविक
काल्पनिक इंद्रिय को द्रव्य इंद्रिय कहा जाता है।

निर्वृत्त्पकरणे द्रव्येन्द्रियम्।

कर्णशष्कुल्यादिरूपा बाह्या, कदम्बकुसुमादिरूपा चाभ्यन्तरीय पौद्गलिक आकाररचनाह्ननिर्वृत्तीद्रिंयम्।

तत्र या श्रावणद्युपकारिणी शक्तिःह्नतदुपकरणेद्रिंयम्।

द्रव्य इंद्रिय के दो प्रकारह्न१. निवृत्ति इंद्रिय २. उपकरण इंद्रिय।

निर्वृत्ति इंद्रियह्नइंद्रिय के बाह्य एवं अभ्यांतर पौद्गलिक शारीरिक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

संस्थानहृआकार को निर्वृत्ति इंद्रिय कहते हैं। जैसेहृश्रोत्रेंद्रिय का बा
आकार कर्णशष्कुली सरीख तथा आंतरिक आकार कदम्ब के फूल जै
होता है। यह निर्वृत्ति इंद्रिय है। इसी प्रकार प्रत्येक इंद्रिय का बाह्य
आंतरिक शारीरिक संस्थान होता है।

उपकरण इंद्रियहृनिर्वृत्ति में स्थिति अपने विषय का ज्ञान करने
सहायक या उपकारक पौद्गलिक शक्ति उपकरण इंद्रिय कहलाती है।

हमें यह बात ख्याल में रखना चाहिए कि निर्वृत्ति इंद्रिय तब त
अपना काम नहीं कर सकती, जब तक उसमें अपने विषय को ग्र
करने की शक्ति नहीं होती। इस बात को आप एक स्थूल उदाहरण
समझें। कैंची वकज्ञा आकार बिलकुल ठीक है। कैंची के दोनों भागों
बिलकुल ढंग से जोड़ा गया है। इसके बावजूद यदि उसमें काटने
शक्ति नहीं है तो वह काटने की क्रिया नहीं कर सकती। यही ब
निर्वृत्ति इंद्रिय और उपकरण इंद्रिय के संबंध में है।

भाव इंद्रिय

इंद्रिय द्वारा अपने विषय को ग्रहण करने की आत्मिक शक्ति अ
उसके उपयोग को भाव इंद्रिय कहा जाता है।

लब्ध्युपयोगौ भवेन्द्रियम्।

ज्ञानावनणादिकर्मक्षयोपशमजन्यः सामर्थ्यविशेषःहृलब्धीद्रिंयम्

अर्थग्रहणरूप आत्मव्यापारःहृउपयोगेंद्रियम्।

सत्यां लब्धौ निर्वृत्त्युपकरणोपयोगौ।

सत्यां च निर्वृत्तौ उपकरणोपयोगौ।

सत्युपरकरणै उपयोगः।

भाव इंद्रिय के दो प्रकार हैंहृ१. लब्धि इंद्रिय २. उपयोग इंद्रिय

लब्धि इंद्रियहृइंद्रिय द्वारा अपने विषय को ग्रहण करने में
आत्मिक शक्ति काम आती है, उसे लब्धि इंद्रिय कहा जाता है।

हम देखते हैं कि मृत्यु के पश्चात यद्यपि व्यक्ति के सुनने, देख
सूंघने आदि के शारीरिक यंत्र (द्रव्य इंद्रिय) बिलकुल स्वस्थ रूप में ह
हैं, फिर भी वह न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है...... इसका का
यही तो है कि द्रव्य इंद्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आत्मिक-शक्ति अनिवार्य रूप से सहयोगी थी, वह मृत्यु के साथ
ाप्त हो गई। इससे हमें द्रव्य इंद्रियों के कार्य करने में प्रयुक्त
ेवाली आत्मिक शक्ति का सहज अनुमान हो सकता है।

उपयोग इंद्रियह्नइंद्रिय द्वारा अपने विषय के ग्रहण में जो आत्मिक
क्ति का व्यापारह्नउपयोग होता है, वह उपयोग इंद्रिय है।

बहुत बार आपने अनुभव किया होगा कि व्यक्ति की श्रोत्रेंद्रिय का
ह्य आकार एवं आभ्यांतर यंत्र बिलकुल ठीक है, उसमें शब्द को ग्रहण
ने की शक्ति है, सुनने की आत्म-शक्ति भी उसे प्राप्त है, फिर भी
एक शब्द नहीं सुनता। उसके भी। सामने कोई चाहे कितने भी जोर-
र से क्यों न बोले, उसे बिलकुल पता नहीं चलता। इसका कारण
ी है कि उन क्षणों में वह अपनी आत्म-शक्ति का उपयोग नहीं कर
है। हमारे धर्मसंघ के घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी को आप में
बहुत-से लोगों ने देखा होगा। कभी-कभी वे अपने काम में इतने
लीन होते कि दूसरे साधु उन्हें पुकारते, उनके शरीर का स्पर्श कर
का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते, फिर भी उन्हें
लकुल पता नहीं चलता। जब वे अपना काम पूरा कर लेते, तब उनका
ान वहां से टूटता और उन्हें पता लगता कि मुझे कोई पुकार रहा है
मुझे अमुक काम करने के लिए सूचित किया जा रहा है। संत
तेह्न'महाराज ! आपको हमने कितनी आवाज दी। शारीरिक स्पर्श
के भी सूचित किया, फिर भी आपने हमारी बात का ध्यान नहीं
ा।' वे कहतेह्नसंतो ! तुम ठीक ही कहते हो, पर बात यह है कि मैं
समय अमुक कार्य करने में इतना एकाग्र था कि मुझे तुम्हारा कुछ
ख्याल नहीं पड़ा।' यह क्यों होता था? यह इसीलिए तो कि मुझे
हारा कुछ भी ख्याल नहीं पड़ा।' यह क्यों होता था ? यह इसीलिए
कि जानने, सुनने देखने आदि की शक्ति होने के बावजूद वे उस
ाय उसकी उपयोग नहीं करते थे। जब पूर्व कार्य से निवृत्त होते, तब
शक्ति का उपयोग करते और उन्हें तत्क्षण ज्ञात हो जाता कि मुझे
ई पुकार रहा है या अमुक बात कह रहा है। ऐसे एक-दो नहीं, अपितु
कड़ों उदाहरण हमारे देखने, पढ़ने और सुनने में आते हैं।

-पढ़ कुरान बोरे भए

कहा जाता है कि बादशाह अकबर के महल की सीढ़ियों में एक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

फकीर रहता था। वह वहीं खाता, वहीं सोता, वहीं नमा पढ़ता......। ए
दिन रात्रि के समय बादशाह की शाहजादी तूती सीढ़ियों से नीचे उत
वह अपने प्रेमी से मिलने के ख्याल में इतनी खोई हुई कि उसे फव
का कोई ध्यान ही नहीं हुआ। जब वह कार्य से निवृत्ति होकर वापस आ
तो फकीर ने कहा

तूती चुगै तो ऊंच चुग, नीच चुगन मत जाह।
तू तूती पतशाह की, लाजे अकबर शाह।।

तूती ने साश्चर्य पूछा'तुम्हें मेरे जाने का क्या पता लगा?' फव
ने कहा'तेरा पैर मेरी पीठ पर लगने से । मैं उस समय नमाज पढ़ र
था। मेरी पीठ को सीढ़ी समझ तू उस पर पैर देकर नीचे उतरी थी।'
सुनते ही शाहजादी का मन एकदम आंदोलित हो उठायह ठीक है कि
उस समय अपने प्रेमी के ध्यान में पूरी तरह से खोई हुई थी, इसलि
मुझे पता ही नहीं लगा कि यह सीढ़ी है या फकीर की पीठ पर इस
मेरा ख्याल है। यदि यह वास्तव में ही नमाज पढ़ता होता तो इसे
पैर लगने का ख्याल ही नहीं होता। अब वह चुप नहीं रह सकी

नर राची सूझ्यो नहीं, तू कित लख्यो सुजान?
पढ़ कुरान बोरे भए, नहीं राच्यो रहमान।।

बंधुओ! इस बात का सारांश आप समझ गए होंगे। जब व
व्यक्ति किसी काम में बिलकुल तन्मय हो जाता है, तब अपने विषय
ग्रहण करने की शक्ति होने के बावजूद इंद्रिय अपना कार्य संपादित न
कर पाती, क्योंकि उस समय उसकी आत्म-शक्ति का उपयोग न
होता। कालांतर में जब उसका उपयोग शुरू होता है, तब इंद्रिय अ
विषय का ग्रहण करने लगती है।

द्रव्य इंद्रियों की उपयोगिता

इंद्रिय के चारों प्रकारों का विवेचन आपने सुना। इस संदर्भ में ए
प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब द्रव्य इंद्रियां अवास्तविक हैं, त फि
उनकी उपयोगिता को क्यों स्वीकार किया जाता है। यह ठीक है कि भ
इंद्रियां ही वास्तविक हैं, द्रव्य इंद्रियां वास्तविक नहीं, फिर भी हम उन
उपयोगिता कम नहीं आंक सकते। मैं इसे और स्पष्ट करूं। चश्मा यद
आंख नहीं है, फिर भी उसके अभाव में अनेक व्यक्ति अंध-तुल्य
जाते हैं। इस तरह आत्मा मूल है, वास्तविक है। शरीर अवास्तविक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ाविक है। पर इसके बावजूद हमें आत्मा के साथ शरीर अवास्तविक वैभाविक है। पर इसके बावजूद हमें आत्मा के साथ शरीर की योगिता को स्वीकार करना ही होगा। शरीर के बिना संसार में आत्मा कगी कहां ? त्याग, तपस्या, संयम आदि सब शरीर के द्वारा के ही ादित हो सकते हैं। शरीर के अभाव में आत्मा कोई धार्मिक क्रिया/ धना करने में समर्थ नहीं है। इसलिए शरीर अवास्तविक होते हुए भी त्मा की तरह हमारे लिए उपयोगी है। अलबत्ता इतना अवश्य है कि नों की उपयोगिता के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा के क्षेत्र में आत्मा योगी है और शरीर के क्षेत्र में शरीर। आत्मा का काम शरीर नहीं कर कता और शरीर का काम आत्मा नहीं कर सकती। पर दोनों की योगिता हैह्नयह एक निर्विवाद तथ्य है। इसी प्रकार द्रव्य इंद्रियों और व इंद्रियों की बात समझनी चाहिए। द्रव्य इंद्रियां अपने क्षेत्र में योगी हैं और भाव इंद्रियां अपने क्षेत्र में। पर दोनों की उपयोगिता नंदिग्ध है। इसलिए आप इस बात को भलीभांति समझें कि इंद्रिय के रों प्रकार (दो द्रव्य इंद्रिय के और दो भाव इंदिय) की विषय के ग्रहण ने में अनिवार्य अपेक्षा है। इनमें से किसी एक की भी कमी हो तो षय का ग्रहण नहीं हो सकता। उदाहरणार्थह्नकिसी को कोई फल छीनना इसके लिए चाकू आवश्यक है। यदि चाकू नहीं हो तो फल नहीं ला जा सकता । मान लीजिए, चाकू है, उसमें धार भी है, पर काटने शक्ति नहीं है। इस स्थिति में फल कैसे छीला जा सकेगा ? चाकू और उसमें काटने की शक्ति भी है, यदि फल छीलनेवाला के हाथ को कवा मार गया हो तो भी वह फल नहीं छील सकेगा। चाकू है, उसमें टने की शक्ति भी है, हाथ भी स्वस्थ है, उसमें फल छीलने की ता भी है, पर उस व्यक्ति का मन फल छीलने का नहीं है, इस थति में भी फल का छीला जाना संभव नहीं है। यानी चारों बातों का ा मिले, तब ही फल छीलने की क्रिया पूरी हो सकेगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण से आप इंद्रिया के चारों प्रकारों की अनिवार्यता भलीभांति झ सकते हैं। इसमें चाकू की आकार-संरचना के सामन बाह्य निर्वृत्ति द्रय है। उसकी धार के समान अभ्यंतर निर्वृत्ति इंद्रिय है। धार के टने की शक्ति के समान उपकरण इंद्रिय है। हाथ की शक्ति के समान ब्धि इंद्रिय और मन की भावना के समान उपयोग इंद्रिय को जानना हिए।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यद्यपि उपयोगिता की दृष्टि से इंद्रिय के चारों ही प्रकार महत्त्व हैं, फिर भी प्राथमिकता को दृष्टि से लब्धि इंद्रिय प्रमुख है। ल इंद्रिय के अभाव में शेष तीनों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इस में दूसरा स्थान निर्वृत्ति इंद्रिय का है। निर्वृत्ति इंद्रिय के बिना पक इंद्रिय और उपयोग इंद्रिय दोनों कार्य नहीं कर सकतीं। तीसरा स्थ उपकरण इंद्रिय का समझना चाहिए। उपकरण इंद्रिय के पश्चात उप इंद्रिय का स्थान है।

गंगाशहर

२२ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३९ : इंद्रियों के विषय

इंद्रियों की विस्तृत चर्चा पिछले दो प्रवचनों में मैंने की। आपने यह ना कि द्रव्य इंद्रियां जड़ हैं और भाव इंद्रियां चेतन। दूसरे शब्दों में यों के पौद्गालिक श्रसंस्थान और अपने-अपने विषय को ग्रहण करने पौद्गलिक शध्म जड़ है। जबकि इसलिए हम इंद्रियों को एकांततः न कह सकते हैं न चेतना ही। इसी प्रकार इंद्रियां एकांततः न मूर्त्त हैं र न अमूर्त्त ही। एक दृष्टि से मूर्त्त हैं तो दूसरी दृष्टि से अमूर्त्त भी।

यों के विषय

इंद्रियों का जो ज्ञेय है, उसे विषय कहते हैं। अर्थात जिन क्षेत्रों में यां कार्य करती हैं, वे विषय हैं।

स्पर्श-रस-गंध-रूप-शब्दास्तद्विषयाः।

पांच इंद्रियों के पांच विषय हैं। *पचीस बोल* के अंतर्गत बारहवें ल में पांच इंद्रियों के तेईस विषय बताए गए हैं। प्रश्न पूछा जा सकता कि इंद्रयों के विषयों की संख्या में यह अंतर क्यों। वास्तव में यह ई अंतर नहीं है। केवल अपेक्षाभेद है। जहां हम पांच इंद्रियों के पांच षय बताते हैं, वहां हमारी दृष्टि संक्षेप की है। हम प्रत्येक इंद्रिय का -एक विषय ग्रहण करते हैं। स्पर्शन इंद्रिय का विष हैह्नस्पर्शे रसन य का विष हैह्नरस। घ्राण इंद्रिय का विषय हैह्नशब्द। पर जहां हम च इंद्रियों के तेईस विषय कहते हैं, वहां हमारी दृष्टि विस्तार की है। येक इंद्रिय के विषय को हम अनेक भागों में विभक्त कर देते हैं।

स्पर्श के आठ भेद हैंह्नशीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, मृदु, कर्कश, गुरु र लघु।

रस के पांच भेद हैंह्नतिक्त, कटु, कषाय, आम्ल और मधुर।

गंध के दो भेद हैंह्नसुगंध और दुर्गंध।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रूप के पांच भेद हैंह्नकृष्ण, नील, रक्त, श्वेत और पीत।

शब्द के तीन भेद हैंह्नजीव, अजीव और मिश्र।

इन सभी भेदों को संयुक्त रूप में पांच इंद्रियों के तेईस विषय क
जाता है।

बुरा कौन है

प्रश्न पूछा जा सकता है कि इंद्रिया अहितकारी हैं या उनके वि
वास्तव में न इंद्रियां कोई नुकसान करती हैं और न विषय ही। वे
अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं। नुकसन करती हैह्नविषयों के प्रति
को आसक्ति। उदाहरणार्थह्नआपके घर में कोई विशेष खाद्य पदार्थ तै
हुआ। भिक्षा में हमें भी वह पदार्थ प्राप्त हो गया। अब आपने भी
पदार्थ खाया और हमने भी। पर खाने-पीने में बहुत बड़ा अंतर हो सक
है। आपने वह खाद्य खूब स्वाद ले-लेकर, सराह-सराहकर खाया
हमने सहज रूप से खाया। हालांकि सहज रूप से खाने का यह
नहीं कि उसके स्वाद को न जाना जाए। भोजन स्वादिष्ट या अस्वादि
जैसा भी है, उसे उसी रूप में जानना कोई बुराई नहीं है, अपितु यह
होना ही चाहिए। यदि वस्तु को अच्छी या बुरी यथावत रूप में जान
ही बुरा हो या पाप हो तो क्या सबसे अधिक पाप केवलज्ञानी को
होगा ? वे तो संसार के अच्छे-बुरे, कुरूप-सुरूप, सुगंधित-दुर्गंधित
पदार्थों को सर्व प्रकार से जानते हैं। पर यह बिलकुल निर्विवाद है
उन्हें कोई पाप नहीं लगता। इसलिए आप इस सिद्धांत को समझें
वस्तु अच्छी या बुरी जैसी है, उसे उसी रूप में जानना कोई पाप
है, अपितु न जानना अज्ञान है।

हां, तो आपने भी वह पदार्थ खाया और हमने भी। पर आपने
पदार्थ के द्वारा पापकर्म का बंधन कर लिया और हमने नहीं किया।
पूछना चाहता हूं, आपको यह नुकसान किसने पहुंचाया? क्या
नुकसान रसना ने पहुंचाया? नहीं, बिलकुल नहीं। यदि रसना ही नुकस
पहुंचाती तो हमें भी नुकसान पहुंचना चाहिए था। फिर क्या भोजन
स्वादिष्टता ने यह नुकसान पहुंचाया ? नहीं, यह भी नहीं हो सकत
क्योंकि पदार्थ तो हमने और अपने एक ही खाया यदि उसने आप
नुकसान पहुंचाया तो हमें क्यों नहीं पहुंचाया ? स्वादिष्टता की अनुभ
भी नुकसान का कारण नहीं है, यह मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खिर नुकसान किसने किया ? यह नुकसान किया स्वादिष्ट पदार्थ के न आपकी आसक्ति ने। यदि किसी साधु के मन में भी प्रमादवश र्थ की स्वादिष्टता के कारण आसक्ति आ जाए तो वह उसे भी सान पहुंचाए बिना नहीं छोड़ सकती। इसलिए हम इस तथ्य को यंगम करें कि न इंद्रियां बुरी हैं, न इंद्रियों के विषय बुरे हैं और न द्रियों के विषयों का ज्ञान ही बुरा है। बुरी हैह्नमन की वासना या सक्ति।

ी बुरी है

आप देखें, नारी को बुरा बताया जाता है। उसके लिए वैतरणी, क की कुंडी, राक्षसी जैसे न जाने कैसे-कैसे हीन शब्दों का प्रयोग ा रहा है। आगमों में कहा गया हैह्न

नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गडवच्छासुऽणेगचित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लंति जहा नदासेहिं।।

ह्न वक्ष में ग्रंथि (स्तन) वाली, अनेक चित्तवाली तथा राक्षसी की भांति भयावह स्त्रियों में साधक आसक्त न हो, जो पुरुष को प्रलोभन में डालकर उसे दास की भांति हैं नचाती हैं।

मैं पूछना चाहता हूं, क्या सचमुच नारी बुरी है ? क्या वास्तव में वह वैतरणी, नरक की कुंडी या राक्षसी ? यदि 'हां' तो फिर पुरुष क की कुंडी क्यों नहीं, राक्षसी क्यों नहीं ? राक्षस क्यों नहीं ? नारी नरक का द्वार या राक्षसी मानेंगे तो पुरुष को भी नरक का द्वार और स मानना होगा। कुछ लोग यह भी कह देते हैं कि स्त्री की तरफ ी देखना नहीं चाहिए, उससे बात नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसकी टे में जहर होता है। वह पुरुष को भ्रष्ट कर देती है, उसे अपने पाश में बांध लेती है, दस बना लेती है, बंदर की तरह नाच नचाती मैं नहीं समझता, इसमें नारी का क्या दोष है। यह तो स्वयं पुरुष दुर्बलता है कि वह नारी के मोहपाश में बंध जाता है, उसका दास जाता है, बंदर की तरह नाच करने लगता है। यदि नारी में ही पुरुष दास बनाने की या बंदर की तरह नाच नचाने की शक्ति होती तो सुदर्शन सेठ को क्यों नहीं दास बना सकी? क्यों नहीं मुनि स्थूलिभद्र बंदर की तरह नाच नचा सकी? क्यों नहीं उन्हें अपने मोहपाश में ध सकी?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मुनि स्थूलिभद्र बाल्यकाल से संसार से विरक्त-से थे। आमो
प्रमोद, हास्य, भोग-विलास आदि में उनकी कोई रुचि नहीं थी। मात
पिता ने उनको सांसारिक भागों में आसक्त करने का उपाय सोच
उन्होंने स्थूलिभद्र को काम-क्रीड़ा सीखने के लिए कोशा नामक वेश्या
पास भेज दिया। कोशा के सहवास से वे सांसारिक भोग-विलासों त
कामवासना में इतने डूब गए कि वापस घर जाना भूल गए। माता-पि
ने बुलाया फिर भी घर नहीं लौटे। आखिर पिता की मृत्यु का समाच
पाकर उन्होंने घर का दरवाजा देखा। पर अब वे घर के उपयुक्त न
रहे, क्योंकि इस घटना के निमित्त से उनके मन में वैराग्य के सुषु
संस्कार पुनः जाग्रत हो गए। परिणामतः वे मुनि बन गए। मुनि बनने
पश्चात उन्होंने अपने गुरु भद्रबाहु स्वामी से अनुमति प्राप्त करके उ
कोशा वेश्या की चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत किया। कोशा ने अ
हाव-भाव आदि से स्थूलिभद्र को संयमपथ से च्युत कर पुनः कामवास
में फंसाने के लिए विभिन्न प्रयास किए। पर स्थूलिभद्र के अडोल मान
के सामने उसके सारे प्रयास व्यर्थ रहे। इसके विपरीत स्थूलिभद्र ने उ
उस नरकमय जीवन से छुटकारा दिलवाकर श्राविका और ब्रह्मचारि
बना दिया।

अब आप चिंतन करें कि यह यदि नारी ही पुरुष को दास बन
है या नाच नचाती है तो स्थूलिभद्र पर उसकी शक्ति काम क्यों नहीं
सकी। वस्तुतः तत्त्व यह है कि न स्त्री बुरी है और न पुरुष बुरा है।
स्त्री राक्षसी है और न पुरुष राक्षस है। न स्त्री किसी को दस बनाती
नाच नचाती है और न पुरुष किसी को दासी बनाता है, नाच नचाता
ये सब खेल मन के हैं। मन के विकार के हैं। वही राक्षसी है। व
राक्षसी है। उसके कारण ही व्यक्ति, भले वह स्त्री हो या पुरुष, न
प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों का शिकार बनता है।

मानव-मन की यह बहुत बड़ी कमजोरी है कि वह अपना दोष दूर
के सिर मढ़ना चाहता है। उसमें इतना साहस कहां कि सहजतया अप
दोष स्वीकार कर ले? प्राचीन युग में एक ऐसा प्रवाह था कि लग
सभी साहित्य-स्रष्टाओं ने, चाहे वे लेखक हों या कवि, स्त्री को को
है। उसे भला-बुरा कहा है। मन की कमजोरी को उस पर आरोपित कि
हे। पर अब युग बदल गया है। युग का चिंतन बदला है। लोगों
दृष्टिकोण बदला है। अब यह विचार बड़ी तेजी के साथ प्रसरणशी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ता जा रहा है कि मन की वासना का दोष स्त्रियों पर आरोपित करना ा जाति का अपमान है। स्त्रियों हमारी माताएं हैं। उनको इस प्रकार रस्कृत और अपमानित करना सभ्य समाज के लिए शोभनीय नहीं है।

हां, तो प्रसंगवश मैंने यह बात कह दी। अब मैं वही बात दोहराता कि न इंद्रियां बुरी हैं, न इंद्रियों के विषय बुरे हैं और न ही उनके द्वारा ने-अपने विषयों को ग्रहण करना बुरा है। बुरी हैह्रमन की वासना/ ा-द्वेष। इसलिए अपेक्षा इस बात की है कि इंद्रियां और इंद्रियों के यों को कोसना छोड़कर मन की वासना को जीतने का प्रयास किया ए। मन की वासना को जीतने का एकमात्र तरीका यही है कि व्यक्ति ह्मुर्खी से अंतर्मुखी बने। धर्म व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाने की एकमात्र क्र या है।

ाशहर

अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४० : मन : एक मीमांसा

आज का का हमारा चर्चनीय विषय हैह्नयह बड़े आश्चर्य की बात
कि हम सबके पास मन है, मन का हम सदा उपयोग करते हैं, फिर
बहुत-सारे लोग यह भलीभांति नहीं समझ पाते कि मन क्या है।
दृष्टि से यह ठीक भी है, क्योंकि जो वस्तु जितनी समीप होती
उससे प्रायः व्यक्ति उतना ही अधिक अपरिचित रहता है। संसार
है, संसार में कहां कया हो रहा है, अमुम राष्ट्र का राष्ट्रपति कौन
सूर्य, चंद्रमा और मंगल के बारे में क्या-क्या शोध ो रही है आदि-अ
बातों के संदर्भ में आदमी काफी जानकारी रखता है, जबकि मैं कौन
मैं कहां से आया हूं, मैं कहां जाऊंगा, मेरा चरम लक्ष्य क्या है आ
आदि बातों के सदंर्भ वह लगभग अनजान रहता है।

सर्वार्थग्राहि त्रैकालिकं मनः।

सर्वे, तु इन्द्रियवत् प्रतिनियत अर्था गृह्यन्ते येन
सर्वार्थग्राही, त्रिकालविषयत्वात् त्रैकालिकं मनः। तद् अनिन्द्रियम
उच्यते।

मनस्तवेन परिणतानि पुद्गलद्रव्याणि द्रव्यमनः, लब्ध्युपयोग
भावमनः।

जिसके द्वारा सब विषयों (स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द)
ग्रहण किया जाता है और जो त्रैकालिक संज्ञान है, उसे मन कहते हैं

मन और इंद्रियों में अंतर

यद्यपि मन भी पांचों इंद्रियों की तरह ही स्पर्श, रस आदि वि
को ग्रहण करता है, फिर भी दोनों में थोड़ा अंतर है। सभी इंद्रियां के
अपने-अपने एक-एक विषय को ग्रहण करती हैं। श्रोत्र इंद्रिय शब्द को
ग्रहण कर सकती है, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श को नहीं। इसी प्र

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

य इंद्रियां भी केवल अपने-अपने एक-एक विषय को ग्रहण कर सकती
दूसरे-दूसरे विषयों को नहीं। पर मन स्पर्श, रस आदि सभी विषयों
ग्रहण करता है। मन की स्थिति मिल के मैनेजर की तरह है और
यों की स्थिति विभागीय अधिकारियों की तरह। विभागीय अधिकारी
ने-अपने विभाग का ध्यान रखते हैं, अपने-अपने विभाग के जिम्मेदार
हैं पर मैनेजर को सभी विभागों का काम देखना होता है। वह सभी
ागों की जिम्मेदारी निभाता है। मन सभी इंद्रियों के विषयों का ग्रहण
ता है, सबकी जिम्मेदारी निभाता है।

इंद्रियों और मन में दूसरा अंतर हैह्नकाल का। सभी इंद्रियां केवल
र्मानिक होती हैं। यानी वे केवल वर्तमान में ही विषय का ग्रहण करती
पर मन त्रैकालिक है। भूत, वर्तमान और भविष्यह्नतीनों काल में
यों को ग्रहण करने में समर्थ है। आपके कान वर्तमान में शब्दों को
ण कर रहे हैं। पर कल मैंने क्या कहा था, उन शब्दों को ग्रहण करना
न का काम नहीं है। यह काम मन के द्वारा होता है। इसी प्रकार कल
क्या कहूंगा, उन शब्दों को ग्रहण करना भी कान का काम नहीं है।
चिंतन भी मन ही करता है कि कल प्रवचन में अमुक-अमुक बातें
ने को मिलेंगी। मन अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना को
मान के साथ जोड़ता है। सचमुच मन बहुत शक्तिशाली है। हालांकि
क्तिशाली इंद्रियां भी हैं, तथापि मन की शक्ति की तुलना में उनकी
क्ति बहुत सीमित है। जिन प्राणियों के मन नहीं होता, उनकी इंद्रियां
ों-त्यों अपना काम चलाती हैं। पर समनस्क प्राणियों की इंद्रियां मन
साथ जुड़कर कार्य करती हैं।

संयोजन का सारा कार्य भी मन का है। आंखों ने दो रूप देखे। वे
ना विषय ग्रहण कर निरपेक्ष हो गईं। अर्थात इन दोनों में कौन सुंदर
और कौन सुंदर नहीं है, इस बात का निर्णय यह नहीं कर सकती।
काम मन का है।

सड़क के किनारे एक स्थान पर सुगंध और दुर्गंध दोनों एक साथ
रही थीं। लोग उधर से गुजरे और यह स्थिति देखकर सबने बड़ा
श्चर्य किया। पर किसी ने गहराई से कारण की खोजन नहीं की।
खिर एक व्यक्ति ने तथ्य की जांच-पड़ताल की तो मालूम हुआह्न

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कलाल चल्यो जात शीश घड़ा लिए दारुन को,
गांधी चल्यो जात है फुलेल लिए वासना।
ठेकर ठबक्क लगी फूट गए दोनों घट,
आए नर चातक ज्यों करत मुख भाषणा।
भले की भलाई रही बुरे की बुराई जान,
कीजिए भलाई ज्यों लों पिंड मांही सासना।
शुद्ध मन आसन ज्यों दुलह पाक सासन ज्यों,
वासन विलाय जात रह जात वासना।।

एक कलाल शराब का घड़ा अपने मस्तक पर रखकर कहीं च
जा रहा था। सामने की दिशा से एक गांधी इत्र का बरतन लिए जा
था। दोनों अपनी-अपनी धुन में थे। सहसा दोनों की दृष्टि चूर्क
परिणामस्वरूप वे परस्पर टकरा गए। टक्कर इतनी तेज हुई कि दोनों
बरतन नीचे गिर पड़े और फूट गए। शराब और इत्र दोनों नालियों में
गए। सफाई कर्मचारी आए और उन्होंने कांच और मिट्टी के टुकड़ों
उठाकर सड़क साफ कर दी, पर उन दोनों चीजों की वासना को वे कै
उठाते ? घंटों समय बीत गया, फिर भी शराब और इत्र दोनों का
पाथिकों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी।

इस बात से आपको समझना यह है कि सुगंध और दुर्गंध
ग्रहण इंद्रियों ने किया। पर उसके पश्चात यह चिंतन कि दुर्गंध क्यों
रही है, यह दुर्गंध किसी है आदि-आदि बातों पर चिंतन घ्राण इंद्रिय
नहीं किया। यह चिंतन का सारा कार्य मन के द्वारा संपादित हुआ। य
मन होता तो इन सारी बातों पर चिंतन किया जाना सर्वथा असंभव थ

भलाई भुलाई नहीं जाती

यहां एक दूसरी बात और समझने की है कि दुर्जन बुराई क
नहीं छोड़ता तो सज्जन भी अपनी सज्जनता क्यों छाड़े यद्यपि उस
अच्छाई उसके स्वयं के हित के लिए होती है, पर परोक्ष रूप में उस
समाज भी लाभान्वित होता है। यही कारण है कि संसार से उसके च
जाने के पश्चात भी लोग उसकी स्मृति करते रहते हैं। राम को
हजारों वर्ष व्यतीत हो गए पर आज भी राम जन-जन के मुख पर है

हम दूर क्यों जाएं, आपके गंगाशहर के ही भैंरूदानजी चोपड़ा
संसार में नहीं हैं। पर उनकी अच्छाइयों को चित्र आज भी लोगों

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खों में नाच रहा है।

छोगमलजी चोपड़ा भी यहीं के थे। उनके जीवन में कुछ विरल ोषताएं थीं। अध्ययन के तो वे मानो व्यसनी थे। वर्षों तक *जैन ताम्बर तेरापंथी महासभा* के मंत्री रहे। उस समय वे महासभा के तकालय के लिए जो पुस्तकें खरीदते, उनहें सबसे पहले स्वयं पढ़ते। यद ही ऐसी कोई पुस्तक बची हो, जिसे उन्होंने पढ़े बिना पुस्तकालय रखा हो। तेरापंथ धर्म-शासन व समाज की उन्होंने जो सेवा की है, कई दृष्टियों से अविस्मरणीय है। उन्होंने अपना सारा जीवन इस र्य के लिए खपा दिया। उनकी अन्यायन्य विशेषताओं को संभवतः रे-दूसरे लोग ग्रहण भी कर लें, पर पत्र-लेखन की जो कला उनके न थी, उसे कोई ग्रहण कर पाए, यह कम संभव लगता है। अपने वन में उन्होंने कम-से-कम चालीस-पचास हजार पत्र लिख होंगे। पत्रों माध्यम से वे लोगों को विभिन्न रूपों में सुझाव देते थे। उनके सुझाव मूल्यवान और दूरदर्शितापूर्ण होते थे। शासन के विभिन्न समाचारों तो वे एक चलते-फिरते केंद्र ही थे।

हीरालालजी आंचलिया को भी समाज कभी नहीं भुला सकता। नी धुन के वे बड़े पक्के थे। वे सबसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने र्मिक एवं तात्त्विक पुस्तकों को प्रकाशित करा-करा के जन-जन के ों में पहुंचाया। इसके साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि उन तकों का मूल्य केवल स्वाध्याय ही था। हजारों-हजारों की संख्या में तरित की गईं पुस्तकों के लिए उन्होंने कभी किसी से एक पैसा नहीं या।

इस क्रम में अनेक नाम मेरी स्मृति में आ रहे हैं। पर अभी मैं उन का जिक्र नहीं कर सकता। तत्त्व यह है कि भलाई कभी भुलाई नहीं ती। भले आदमी को संसार सदा याद करता रहता है। इसी प्रकार बुरे दमियों को भी उनकी बुराई के के लिए लोग याद करते हैं। पर के नामों की चर्चा मैं आपसे नहीं करूंगा। हमारा काम अच्छाई का ोजन करना है, बुराई को हम क्यों देखें?

इंद्रिय क्यों नहीं

यद्यपि मन इंद्रियों की तरह स्पर्श, रस आदि विषयों का संग्रहण ता है, फिर भी उसे अनींद्रिय कहा गया है। इसका कारण स्पष्ट है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इंद्रिय की भांति न तो वह ान का बाहरी साधन है और ही उसका क
नियत आकार है। पर चूंकि वह इंद्रियों द्वारा ग्रहण किए गए विषयों
जानता है, इसलिए उसे नो-इंद्रिय-ईषत इंद्रिय या इंद्रिय-तुल्य भी क
गया है।

द्रव्य मन : भाव मन

प्रश्न पूछा जा सकता है कि मन जड़ या चेतन। मन एक दृष्टि
जड़ है और दुसरी दृष्टि से चेतन। हमें यहां यह जान लेना चाहिए
मन के दो प्रकार हैंह्नद्रव्य मन और भाव मन। द्रव्य का अर्थ, जैसाकि
एक-दो दिन पहले भी बताया था, अवास्तविक या काल्पनिक है।
अवास्तविक या काल्पनिक का यह अर्थ नहीं कि उसका अस्तित्व ही न
है। उसका अस्तित्व है और उसका अपना उपयोग भी है, तथ
वास्तविकता से सर्वथा परे है। उदाहरणार्थह्नकिसान लोग खेत में बिजू
खड़ा करते हैं। वे लकड़ी गाड़कर उस पर कमीज जैसा कपड़ा लगा
हैं और ऊपर उलटी काली हंडी रख देते हैं। दूर से वह कोई खड़ा हु
आदमी दिखलाई देता है। मैं पूछता हूं, क्या वह वास्तव में आदमी
नहीं, वास्तव में वह आदमी नहीं है। मात्र आदमी का आकार है। यद्य
वह थोड़ा-बहुत आदमी का-सा कार्य भी करता है, पशु-पक्षी उ
आदमी समझकर खेत में आने से डरते हैं। फिर भी हम उ
अवास्तविक ही मानेंगे, वास्तविक नहीं।

यद्यपि द्रव्य मन भी वास्तविक नहीं है, फिर भी उसका अस्ति
है। मनोवर्गणा द्रव्य मन है। वह मानसिक चिंतन में अनिवार्य रूप
काम आती है। यदि उसका योग न हो तो भाव मन चिंतन नहीं
सकता। पेट्रोल न हो तो कार नहीं चल सकती। यद्यपि पेट्रोल कार न
है, फिर भी उसके बिना कार बेकार हैं यही बात मनोवर्गणाह्नद्रव्य मन
है। यद्यपि वह वास्तविक मन नहीं, फिर भी उसके अभाव में भाव
चिंतन करने में अक्षम है। द्रव्य मन जड़/निर्जीव है।

भाव का अर्थ वास्तविक है। भाव मन अर्थात वास्तविक म
मनोवर्गणा को ग्रहण कर जिसके द्वारा व्यक्ति चिंतन-मनन करता है,
भाव मन है। दूसरे शब्दों में विचारात्मक मन का नाम भाव मन है। भ
मन चेतन है।

हमारी आत्मा पूर्ण ज्ञानमय है, चैतन्यमय है। किंतु उस

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नावरणीय आदि कर्मों का आवरण है। इस आवरण के कारण आत्मा चेतना ढक जाती है। जितने-जितने रूप में यह आवरण दूर हटता है, ने-उतने रूप में वह चेतना अनावृत होती है। प्राणी-प्राणी में इस दृष्टि चेतना के विभन्न स्तर होते हैं।

जिन प्राणियों की चेतना स्पर्शन व इंद्रिय के स्तर तक विकसित ी है, वे एकेंद्रिय कहलाते हैं। जिनकी चेतना स्पर्शन व रसन इंद्रिय के र तक विकसित होती है, वे द्वींद्रिय कहे जाते हैं। इसी प्रकार र्शन, रसन, घ्राण इंद्रिय तक की विकसित चेतना की स्तरवाले प्राणी द्रिय तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण एवं चक्षु इंद्रिय तक की विकसित ना के स्तर को प्राप्त प्राणी चतुरिंद्रिय कहे जाते हैं। जिनकी चेतना के कास का स्तर पांचों इंद्रियों (मनरहित) तक पहुंच जाता है, वे असंज्ञी द्रिय और जिनकी चेतना पांच इंद्रियों के साथ-साथ मन के स्तर तक च जाती है, वे संज्ञी पंचेंद्रिय कहलाते हैं। इस बात को मैं एक हरण से समझाऊं। एक जलते बल्ब पर ढक्कन लगा दिया जाता है। ढक्कन में एक छिद्र है। उस छिद्र से होकर प्रकाश बाहर आता है। नेवाला कहता है, एक बल्ब जल रहा है। अब उस ढक्कन को रकर उस पर दूसरा ढक्कन रख दिया जाता है। उसमें दो छिद्र हैं । स्थिति में देखनेवाले को लगता है कि दो बल्ब जल रहे हैं। इसी ार ढक्कन में तीन, चार, पांच······जितने छिद्र होते हैं, उतने ही छिद्रों होकर प्रकाश बाहर आता है और देखनेवाले को उतने ही बल्ब जलते मालूम होते हैं। पर ज्यों ही ढक्कन हटाया जाता है, वे सारे बल्ब खाई देने बंद हो जाते हैं और मात्र एक बल्ब शेष रह जाता है।

आप दूसरा उदाहरण और देखें। चांदी की एक शिला मिट्टी से ढकी है। कालांतर में उसके ऊपर की मिट्टी का एक तरफ का हिस्सा दूर जाता है। देखनेवाले को ऐसा लगता है कि चांदी का एक टुकड़ा यहां फिर दूसरी जगह से मिट्टी हटती हे और वहां भी चांदी का एक दूसरा ड़ा खिाई देता है। इस प्रकार जहां-जहां से मिट्टी हटती है, वहां-वहां दी का एक-एक टुकड़ा नजर आता है। पर वास्तव में सारी मिट्टी के वे वह शिला एक ही है। ज्यों ही सारी मिट्टी हटेगी, वे चांदी के भिन्न टुकड़े दिखने बंद हो जाएंगे और अखंड शिला सामने आ एगी। वे विभिन्न टुकड़े तो मिट्टी के थोड़े-थोड़े रूप में अनेक स्थानों से ने से दिखाई देते थे। यही स्थिति हमारी आत्मा की है। जैसा कि मैंने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बताया, हमारी आत्मा पूर्ण चैतन्यमय है। उसकी चेतना या ज्ञान खं
खंड में विभक्त नहीं है। पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि क
(आवरण) के विभिन्न स्तरों पर क्ष्योपशम होने के कारण वह चेत
इंद्रियों एवं मन के रूप में प्रकट होती हुई दिखाई पड़ती है, खंड-खंड
विभक्त हुई दिखाई देती है। जिस क्षण ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय अ
कर्मों का संपूर्ण आवरण हट जाता है, उस क्षण वह चेतना अखंड रूप
प्रकट होती है। यानी आत्मा ज्ञानमय बन जाती है। चेतना या ज्ञान
इस स्तर को जैन-दर्शन के केवलज्ञान कहा गया है। जिस दिन चेतना
ज्ञान इस स्तर तक पहुंच जाता है, उस दिन मतिज्ञान, श्रुतज्ञ
अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञानह्नइन चारों का फिर कोई स्वतंत्र अस्ति
नहीं रहता। ये सब केवलज्ञान में समाहित हो जाते हैं

मन की अवस्थिति

यहां यह जान लेना भी प्रासंगिक होगा कि मन एकदेशीय है
शरीरव्यापी मन त्वचा की तरह हमारे पूरे शरीर में व्याप्त है। इंद्रिय
तरह वह एकदेशीय नहीं है। इसलिए वह शरीर में सर्वत्र काम करता
शरीर के किसी भाग से वह चिंतन-मनन का कार्य कर सकता
हालांकि मस्तिष्क उसका मुख्य केंद्र माना जाता है।

मन कहां है, इस प्रश्न का एक महत्त्वपूर्ण एवं योग-सम्मत समाध
यह भी है कि जहां श्वास है, वहां मन है। श्वास के साथ-साथ
चलता है। श्वास रुका कि मन रुका। इसलिए योग के एक आचार्य
कहा हैह्न**यत्र यत्र पवनः तत्र तत्र मनः।** अर्थात जहां-जहां पवन (श्वा
है, वहां-वहां मन है। श्वास को रोकना कठिन है, इसलिए मन को सव
रोकना भी कठिन है। फिर रोकने की अपेक्षा भी क्या है ? अपेक्षा
उसे नियंत्रित करने की। यदि हमारा मन हमारे नियंत्रण में है तो
चलता हुआ भी हमारा अहित नहीं कर सकता। अहित तभी होता
जब वह हमारे नियंत्रण से बाहर होता है।

मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया

मन को नियंत्रित करने की सरलतम प्रकिया हैह्नव्यक्ति अपने श्व
को नियंत्रित करे। आपने शायद अनुभव किया होगा कि जब-जब अ
क्रोध, अहंकार, वासना आदि से भर जाते हैं, तब-तब आपका श्व
बहुत चंचल हो जाता है। इसके ठीक विपरीत जब आपका मन इन उद्वे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विकारों से मुक्त होता है, अर्थात आप शांत होते हैं, तब आपका स भी बहुत शांत होता है। इसलिए इस तथ्य को समझकर कि श्वास गति के साथ मन का निकटतम संबंध है, आप अपने श्वास की गति नियंत्रित करना सीखें। श्वास की गति पर नियंत्रण का अर्थ है। एक श्वास आपकी बिना जानकारी के न अंदर जाए और न बाहर आए। स दिन आपने यह कला सीख ली। मानना चाहिए कि उस दिन आपने को नियंत्रित करने की कला सीख ली। यह मात्र कोई उपदेश नहीं अपितु एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान है। आज लगभग सारा ार मन के अनियंत्रण की बीमारी से पीड़ित है। इस बीमारी की धि में न जाने कितनी-कितनी दूसरी-दूसरी बीमारियां, बुराइयां पल हैं और उनसे मानव-समाज संत्रस्त बन रहा है। अतः यदि आप ने मन को अनुशासित करना चाहते हैं, उसके स्वामी बनना चाहते हैं आपको हर हालत में अपने श्वास को अनुशासित करना होगा, अपने स का स्वामी बनना होगा।

ाशहर

अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४१ : भाव : आत्मा का स्वरूप

कल के प्रवचन में आपने जाना कि मन आत्मा का ही एक हिस है, चेतना का ही एक स्तर है। आज हम इस बात का विचार करेंगे आत्मा का स्वरूप क्या है।

औपशामिक-क्षायिक-क्षयोपशमिका भावाः स्वरूपं जीवस्य।

मोहकर्मणो वेद्याभाव उपशमः अन्तर्मुहूर्त्तावधिकः। निष्पन्नो भाव औपशमिकः।

ज्ञानावरणाद्यष्टानामपि कर्मणां सर्वथा प्रणाशः क्षयः। निर्वृत्तो भावः क्षायिकः।

चतुर्णां घात्यकर्मणां विपाकवेद्याभावः क्षयोपशमः। तेन नि भावः क्षायोपशमिकः।

उदयप्राप्तक्षयस्योभयत्र समानत्वेऽपि उपशमे प्रदेशतो नास्ति उदयः, इत्यनयोर्भेदः।

जीव का स्वरूप हैह्न कर्मों के उपशम, क्षय और क्षयोपशम निष्पन्न होनेवाली जीव का विभिन्न अवस्थाओं को भाव कहते हैं। दू शब्दों में कर्मों के संयोग एवं वियोग से होनेवाली जीव की विभि अवस्थाएं भाव हैं।

भाव तीन हैंह्न१. औपशमिक भाव २. क्षायिक भाव ३. क्षायो शमिक भाव।

औपशमिक भाव

मोहनीय कर्म के दब जाने को उपशम कहते हैं। उपशम होनेवाली आत्मा की अवस्था औपशमिक भाव है। इसे मैं एक उदाह से स्पष्ट करूंगा। बरसात के दिनों में आप तालाब से पानी लाए। मिट्टीमिश्रित है। उस पानी में आपने फिटकरी डाली। दस-पंद्रह मिनट

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रा पानी बिलकुल स्वच्छ हो गया। यह औपशमिक अवस्था है। इस स्था में पानी बिलकुल स्वच्छ हो गया, फिर भी मिट्टी नीचे जमी रह । थोड़ी देर में जरा-सा पानी हिला कि मिट्टी वापस ऊपर आ गई र पानी गंदला बन गया। ठीक यही बात हमारी आत्मा की है। आत्मा मल को इस प्रकार दबाया गया कि वह हमारी चेतना को विकृत न सके, यह औपशमिक अवस्था है। पर चूंकि कर्मफल समाप्त नहीं ा हुआ है, केवल दबाया गया है, अतः थोड़ा-सा प्रकंपन हुआ कि त्मा का दबाया हुआ मल पुनः ऊपर उठ जाता है। परिणामतः आत्मा : मल-युक्त हो जाती है। सैद्धांतिक दृष्टि से औपशमिक भाव की ाति अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं है। यानी एक मुर्हूर्त के अंदर-अंदर त्मा पुनः कर्ममल से विकृत हो जाती है।

आप कहेंगे, जब पुनः आत्मा कर्ममल से विकृत हो जाती है, तब उपशम से क्या लाभ मैं पूछता हूं, इससे नुमसान भी क्या है ? तनी देर आत्मा उपशम अवस्था में रहती है, उतनी देर का लाभ तो यक्ष ही है। माना कि रोग को इंजेक्शन देकर बदाया गया हैं वह जड़- ा से समाप्त नहीं हुआ है, अवसर पाकर पुनः उभरेगा। भले उभरे। जितनी देर वह शांत रहता है, उतनी देर तो रोगी आराम पाता ही इस तथ्य को हम नकार नहीं सकते।

यिक भाव

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के सर्वथा नष्ट हो जाने को क्षय कहा ता है। कर्मों के क्षय से होनेवाली आत्मा की अवस्था क्षायिक भाव लाती है। इसे आप और अधिक स्पष्टता से समझें। फिटकरी से ट्टी नीचे जम जाने के पश्चात आपने धीरे-धीरे पानी छान लिया। नने के बाद आपने पुनः उस पानी मे फिटकरी डाली, शोधक मसाले ो और उसे अग्नि पर उबाला। अब वह पानी बिलकुल मल-रहित बन ा। यह क्षायिक अवस्था है। हमारी आत्मा भी कर्मों को नष्ट करते- ते जब पूर्ण रूप से उन्हें नष्ट कर देती है, अर्थात उनके वापस रने की सारी संभावनाओं से मुक्त हो जाती है, तब आत्मा क्षायिक व को प्राप्त होती है।

योपशमिक भाव

चार घात्यकर्मोंह्ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय विपाक वेद्याभाव को क्षयोपशम कहा जाता है। उससे होनेवाली आत्मा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

की अवस्था क्षायोपशमिक भाव कहलाती है।

मान लें, आपने पानी में थोड़ी फिटकरी डाली। परिणामतः कु मिट्टी नीचे जम गई और और कुछ नहीं जमी। अर्थात न तो प बिलकुल साफ ही हुआ और न ही बिलकुल गंदा रहा। यह मध स्थिति है। कर्मों का उदय, कर्मों का क्षय और थोड़ा उपशमह्ये ती बातें क्षायोपशमिक भाव में साथ-साथ चलती हैं। वर्तमान में हमारा भ लगभग क्षयोपशमिक ही है। हमारा सम्यक्त्व, व्रत, आर्जव, मार्दव, क्ष आदि सब क्षायिक नहीं, लगभग क्षायापशमिक ही हैं। आप पूछेंगे, भाव से क्या लाभ है आत्म-उज्जवलता तो क्षायिक भाव की है, आंशकि उज्जवलता भी बहुत काम की है। इस आंशिक उज्जवलता प्राप्ति करते-करते आत्मा एक दिन पूर्ण उज्जवलता की स्थिति में पहुंच सकती है। अर्थात क्षायोपशमिक भाव से आगे बढ़ते-बढ़ते एक वि आत्मा भाव को भी प्राप्त हो सकती है।

इस संदर्भ में एक बात और स्पष्ट करूं कि आत्म-उज्ज्वलता दृष्टि से क्षायिक भाव और औपशमिक भाव में कोई अंतर नहीं है। अं केवल इतना ही है कि क्षायिक भाव की उज्ज्वलता स्थायी होती जबकि औपशमिक भाव की उज्जवलता क्षणिक या वार्तमानिक होती

प्रश्न पूछा जा सकता है कि तीनों भाव किन-किन गुणस्थानों पाए जाते हैं। औपशमिक भाव की प्राप्ति चौथे गुणस्थान से ग्यार गुणस्थान तक है। क्षायिक भाव चौथे गुणस्थान, से चौदहवें गुणस्थ तक प्राप्त होता है। क्षायोपशमिक भाव पहले गुणस्थान से बार गुणस्थान तक है।

गंगाशहर

२५ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४२ : भाव और कर्म

जीव के स्वरूपह्नभव की संक्षिप्त चर्चा कल मैंने की। भाव तीन होते
ऱऔपशमिक, क्षयिक और क्षायोपशमिक। इन तीनों भावों का कर्मों से
रा संबंध है। कर्मों के कारण ही आत्मा विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त
ी है। आज में इस बात पर चिंतन करना है कि तीनों भावों से कौन-
न से कर्म संबद्ध हैं।

कर्म आठ हैंह्नज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय,
युष्य नाम, गोत्र और अंतराय इनमें से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय,
हनीय और अंतरायह्नये चार कर्म आत्मा के मूल गुणों (ज्ञान, दर्शन,
यक्त्व, चारित्र और वीर्य) की घात करनेवाले हैं। चूंकि ये चारों कर्म
ना को आवृत करनेवाले हैं, इसलिए इन्हें घाती या घात्य कर्म कहा
ा है अथवा सघन प्रयत्न के द्वारा ही इन कर्मों का घाात हो सकता है,
ः इन्हें घनघात्य कर्म भी कहा जाता है। इन चारों कर्मों के आंशिक
, उपशम और उदय से क्षायोपशमिक भाव प्राप्त होता है।

चारों घात्य कर्मों में भी मोहनीय कर्म प्रमुख है। आठों कर्मों में यही
 कर्म ऐसा है, जो आत्मा को विकृत बनाता है। औपशमिक भाव
हनीय कर्म के उपशम से प्राप्त होता है। यहां आपको इतना और जान
ा चाहिए कि आठ कर्मों से उपशम केवल मोहनीय कर्म का हो
कता है। यद्यपि चारों घात्य कर्म आत्मा के मूल गुणों को रोकनेवाले
 फिर भी मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष तीन कर्मह्नज्ञानावरणीय,
नावरणीय और अंतरायं उपशमित नहीं होते। क्यों ? यह इसलिए कि
शम का अर्थ ही हैह्नदब जाता। दब जाने या ढक जाने से जो
स्था प्राप्त होती है, वह कभी स्थायी नहीं हो सकती। इस स्थिति में
द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय का उपशम हो तो इसका
णाम यह होगा कि केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनंत आत्मा-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ऊर्जाह्नये तीनों तत्त्व एक क्षण के लिए प्राप्त होंगे और पुनः समाप्त जाएंगे। पर ऐसी त्रिकाल में भी कभी होता नहीं। केवलज्ञान, केवलद और अनंत आत्म-ऊर्जाह्नये तीनों तत्त्व एक बार प्राप्त होने के पश्च कभी वापस नहीं जाते। इसलिए मैंने कहा कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण एवं अंतरायह्नइन तीनों कर्मों का उपशम नहीं होता। उपशम मात्र मोहनीय कर्म का होता है। केवल कषाय दब सकता है, ज्ञान, दर्शन अ वीर्यह्नये तीनों या तो आवृत होते हैं या अनावृत। उपशमनह्नदब जाने तीसरी अवस्था इनकी नहीं होती।

वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्रह्नये चारों भवोपग्राही कर्म हैं। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। पर ये हमारी आत्मा के गुणों का घात करनेवाले नहीं होते। इनका संबंध आत्मा के साथ चौद गुणस्थान तक बना रहता है। यानी वीतरा, सहयोग केवली और अये केवली भी इन कर्मों से बंधे हुए होते हैं। संसार-मुक्ति के साथ आत्मा से इनका संबंध विछिन्न होता है। इसलिए इन कर्मों का भी क उपशम नहीं होता।

क्षायिक भाव आठों ही कर्मों के क्षय से प्राप्त होता है।

गंगाशहर

२६ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४३ : औदयिक भाव

जीव के स्वरूप का विवेचन पिछले दो दिनों से चल रहा है। मैं
नता हूं कि आत्मा के स्वरूप को पहचानना सर्वाधिक आवश्क और
त्त्वपूर्ण है, क्योंकि पहचाने बिना उसे पाना बहुत संभव है कि वह तो
त होगा नहीं और उसके स्थान पर कोई दूसरा ही तत्त्व मिल जाएगा।
ना दूध था और मिल जाएगा कहीं मूत्र।

एक वणिक एक ऐसे देश में व्यापारार्थ गया, जहां गाय नहीं थी।
दूध पीने का आदी था, अतः अपने साथ एक गाय भी ले गया जब
उस देश के राजा से व्यापार करने की अनुमति लेने गया तो साथ
भेंटस्वरूप दूध से भरा एक लोटा भी ले गया। चूंकि राजा ने दूध
ी देखा नहीं था, अतः उसने साश्चर्य पूछाह्न'यह सफेद-सफेद क्या
' व्यापारी ने कहाह्न'यह हमारे देश का अमृत है। इसे पीने से शरीर
स्थ और बलिष्ठ बनता है।'

राजा ने दूध पिया और पीते ही उसका मन तृप्त हो गया। उसके
में इस विचित्र पेय पदार्थ के प्रति अत्यधिक आकर्षण पैदा हो गया।
ने व्यापारी से इस अमृत की प्राप्ति के बारे में जिज्ञासा की। व्यापारी
कहाह्न'महाराज ! यह अमृत एक वृक्ष का फल है; और बड़ी बात यह
कि इसका एक ही वृक्ष कई तरह के फल देता है।'

व्यापारी राजा को खुश रखने के लिए दूध से निष्पन्न पदार्थह्नदही,
ड़ी, मलाई, कलाकंद, संदेश आदि राजमहल में पहुंचाने लगा। राजा
चीजों को खा-खाकर अत्यंत खुश होता। उनकी सराहना करते-करते
ं अघाता।

राजा ने प्रसन्न होकर वणिक को व्यापार के लिए अपेक्षित सभी
ार की सुविधाएं प्रदान कर दीं। प्राप्त सुविधाओं का समुचित उपयोग
ते हुए वणिक ने चारों ओर व्यापार फैलाया। भाग्य ने उसका साथ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दिया। परिणामतः कुछ ही दिनों में वह मालामाल हो गया। अब उ अपने देश की याद सताने लगी। उसने अपना सारा व्यापार समेटा अ अपने देश लौटने की तैयारी कर ली। रवाना होने से एक दिन कृतज्ञता करने एवं स्वदेश लौटने की सूचना देने वह राजा के सम उपस्थित हुआ। राजा ने उसे मार्ग में आवश्यक सुरक्षा-प्रबंध आश्वासन दिया और प्रतिदिन नए-नए खाद्य पदार्थ भिजवाने के लि धन्यवाद। वणिक जब रवाना होने लगा तो राजा ने पूछाह्न'तुम्हारा वृक्ष कहां है?' वणिक ने करबद्ध उत्तर दियाह्न'यहीं मेरे घर पर।' राजा कहाह्न'क्या तुम जाते समय उसे मेरे बगीचे में लगा जाओगे ?' वणि बोलाह्न'यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी। फिर इसमें क कठिनाई भी नहीं है। वह वृक्ष बड़े गजब का है ! हमारी तरह की चलत फिरता है। उसे जब जहां चाहें, तब वहां लगा सकते हैं।'

वणिक ने गाय को राजा के बगीचे में खड़ा कर दिया। राजा अपने कर्मचारियों को अदेश दिया कि इस वृक्ष की पूरी-पूरी सुरक्षा चौकसी रखी जाए। जब भी यह कोई फल दे, उसे तत्काल मेरे सम हजिर किया जाए। कम्रचरियों ने आा शिरोधर्य की और बड़ी सजगत फल की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर हुई कि गाय ने मूत्र किय तत्काल कर्मचरियों ने उसे राजा के समक्ष पेश किया। रजा ने ऐसा फ तो कभी देखा नहीं था। तत्काल उसे चख। हालांकि बहुत-से लोग ग मूत्र को पवित्र मनते हैं, तथापि उससे मुंह तो खराब हो ही जाता राजा का मुंह भी बिलकुल खराब हो गया। हालांकि उसे वणिक नीयत पर थोड़ा संदेह हुआ, फिर भी सोचा कि इतनी जल्दी अविश्व करन उचित नहीं, थोड़ी प्रतीक्षा और करनी चाहिए। कुछ ही देर पश्च गाय ने गोबर किया। कर्मचारी पूर्ण सावधान थे। उन्होंने भी नीचे न गिरने दिया। स्वर्ण-पात्र में झेल कर राजा के समक्ष हाजिर किया। रा ने उसे चखा और चखते ही उसे उस वणिक पर इतना गुस्सा आया उसने आदेश दिया, तत्काल विणक को पकड़ा जाए।

वणिक अभी दो-ढाई मील का फासला ही तय कर पाया थ तत्काल राजपुरुषों ने उसे पकड़कर राजा के समक्ष हाजिर किया। रा ने आग-बबूला हो हुए कहाह्न'भलाई क यह परिणाण! मैंने तु व्यापारार्थ इतनी सुविधाएं दीं, उसके बावजूद तुम्हारा मेरे साथ सलूक! ऐसा धोखा!'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वणिक राजा की नाराजगी का कारण जानता था। उसने बड़े शान्त र विनम्र स्वर में कहाह्न'महाराज ! मैंने कोई धोखा नहीं दिया है। च्छा, आप मुझे बताएं, वृक्ष ने फल दिए या नहीं ?' राज ने झुंझलाहट र में कहाह्न'फल तो दिए, पर दोनों ही बेकार और दुर्गंधयुक्त। एक ना-पीला और दूसरा हरा-हरा।' वणिक ने राजा को आश्वस्त करते कहाह्न'महाराज ! मैं सब समझ गया। पर इसमें मेरा और वृक्ष का ई दोष नहीं है। अभी मैं आपके सामने उसी वृक्ष का मीठा फल हाजिर ता हूं।'

वणिक तत्कल बगीचे में गया। उसने गाय को दूहा। दूध को गर्म या। उसमें मिश्री तथा केसर मिलाई। एक स्वर्ण-कटोरे में डालकर उसे ा के समक्ष हाजिर किया। राजा ने दूध क एक घूंट लिया और वह काल बोल उठाह्न'यह तो वही फल है, जो प्रथम दिन लाए थे।'

राजा ने अपने व्यवहार के लिए वणिक से खेद व्यक्त किया। ाक ने कहाह्न'महाराज ! इसमें अपका तनिक भी दोष नहीं है। यह सब पके कर्मचारियों के अज्ञान और नासमझी का परिणाम है। उन्हें न तो ों की पहचान है और न ही उन्हें प्राप्त करने की विधि मालूम है।'

वणिक ने कुछ दिन रुककर गाय को दुहने एवं दूध से बननेवाले भिन्न पदार्थों को तैयार करने की प्रक्रिया राजा के रसोइयों को खलाई। सारे फलों की जानकारी प्राप्त हो जाने के पश्चात राजा ने त-सारा धन देकर उस वणिक को ससम्मान विदा किया।

इस कहानी के माध्यम से मैं यह बताना चाहता हूं कि सबसे पहले आत्मा के स्वरूप को पहचानें। बिना पहचाने हम यथेष्ट फल को त नहीं कर सकते। भगवान महावीर ने कहा**ह्नपढमं नाणं तओ ाह्न**पहले ज्ञान, फिर आचरण। ज्ञान के बिना आचरण हो तो सकता है, यह कोई जरूरी नहीं कि वह सम्यक ही हो। वह असम्यक भी हो कता है। और उसकी ही संभावना ज्यादा है। पर ज्ञानी का आचरण ा सम्यक ही होता है। वह असम्यक आचरण नहीं कर सकता।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकह्नइन तीन भावों की चर्चा पिछले प्रवचनों में की। तीनों आत्माए के स्वरूप हैं। आत्मा के वाय ये तीनों अवस्थाएं अन्यत्र अप्राप्य हैं।

प्रश्न पूछा जा सकता है, कि औपशमिक, क्षायिक और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्षायोपशमिक भाव के अतिरिक्त भी क्या आत्मा के और स्वरूप होते

औदयिकपारिणामिकावपि।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव के अतिरि
औदयिक एवं पारिणामिक भाव भी आत्मा के स्वरूप हैं।

औदयिक भव

उदीरणाकरणेन स्वभावरूपेण वा अष्टानामपि कर्मणामनुभवाव
उदयः तेन निर्वृत्तो भाव औदयिकः।

पूर्व सचित कर्मों का उदीरणाकरण के द्वारा या काल-परिपाक
सहजरूप से फल भोगने के रूप में जो अनुभव किया जाता है,
उदय कहते हैं। उदय से होनेवाली आत्मा की अवस्था को औदयिक भ
कहा जाता है। इसे आप एक स्थूल उदाहरण से समझें। किसी व्यि
ने चोरी की। कालांतर में वह पकड़ा गया। न्यायाधीश ने उसे आजी
कारावास की सजा सुना दी। अब वह कारागृह में बंद रहता है। कारा
में वह जिस दुःख अनुभव कर रहा है, वह उसके चोरी के द्वारा संि
पाप का उदय है।

सुकृत और दुष्कृत : एक मीमांसा

इस संदर्भ में एक बात समझ लेने की है। कुछ लोग इस आ
की बात कह दिया करते हैं कि आजकल तो पापी-दुराचारी लोग मे
करते हैं, गुलछर्रे उड़ाते हैं, जबकि धार्मिक व्यक्ति कष्ट पाते
तकलीफ उठाते हैं। इस स्थिति में धर्मक्रिया करना बेकार है। दुराचरण
लाभकारी है।⋯⋯मैं मानता हूं, यह एक प्रकार का अज्ञान है, दृष्टिकोण
मिथ्यात्व है। यद्यपि सदाचारी, ईमानदार और धर्मनिष्ठ व्यक्ति जब दु
की जिंदगी बसर करता है और उम्र-भर पाप-कर्मों में संलग्न व्यि
भौतिक सुखों को प्राप्त करता है, तब सामान्य व्यक्ति के दिमाग में ऐ
भावना का पैदा होन अस्वाभाविक नहीं है। किंतु यहां समझने की बात
कि कोई भी धार्मिक व्यक्ति आज कष्ट भाग रहा है तथा कोई पाप
दुराचारी व्यक्ति मौज करता है, ये दोनों ही स्थितियां क्रमशः उ
धार्मिक व्यक्ति के अज के सुकृत एवं उस पापी-दुराचारी व्यक्ति
आज के दुष्कृत के फलस्वरूप नहीं, प्रत्युत उस धार्मिक व्यक्ति
पूर्वकृत दुष्कृत एवं उस अधार्मिक व्यक्ति के पूर्वकृत सुकृत द्वारा संि
और शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप हैं। हमें यहां यह बात भी समझ ले

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हिए कि आज व्यक्ति जो दुष्कृत य सुकृत कर रहा है, उसका
णाम उसे आज ही मिलेह्नयह कोई आवश्यक नहीं है। आज के सुकृत
दुष्कृत से जिन कर्मों का बंधन होगा, वे कर्म जब काल-परिपाक से
य में आएंगे, तब उनका फल मिलेगा। आप इसे उदाहरण से समझें ।
पने अभी दवा ली। दवा पेट में गई। पेट में जाकर वह रोग से लड़ेगी
र फिर जाकर फल के रूप में आपको स्वास्थ्य प्रदान करेगी। अभी
पने भोजन किया। पर भोजन करते ही उसका परिपाक नहीं हे जाता।
में समय लगता है। पहले वह अमशय में जाता है। अमाशय से छोटी
त में जाता है। उसका सारभूत तत्त्व खून में मिलता है और शेष बचा
जन मल के रूप में बड़ी आंत में जाता है। कहने का तात्पर्य यही है
हर चीज काल-परिपाक पाकर ही अपना फल देने में सक्षम बनती है।
ज जो पापी या दुश्चरित्र व्यक्ति सुख-सुविधाएं प्राप्त कर रहा है,
का अर्थ यह है कि उसने अपने अतीत में कुछ सुकृत करके शुभ
ों का संचय किया था और अब वे उदय में आए हैं। इसी प्रकार
रित्रसंपन्न या धर्मनिष्ठ व्यक्ति यदि आज कष्ट प्राप्त करता है तो
का अर्थ यही समझना चाहिए कि उसने अपने पूर्व जन्मों में अवश्य
छ ऐसे दुष्कृत किए थे, जिनके कारण अशुभ कर्मों का बंधन हो गया
र अब वे काल-परिपाक के साथ उदय भी आए हैं।

ा दवा रोग से अधिक शक्तिशाली हो

प्रस्तुत संदर्भ में एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि अतीत में संचित
ुभ कर्म क्या सुकृत से समाप्त नहीं हो जाते। हां, हो सकते हैं। पर
ी उसी अवस्था में जब व्यक्ति का सुकृत दुष्कृत से तेज हो। यदि
ृत दृष्कृत से क्षीण है तो दुष्कृत द्वारा संचित अशुभ कर्म नष्ट नहीं
ी। दवा से रोग शांत होता है, पर होता उसी स्थिति में है, जब दवा
ा से अधिक शक्तिशाली हो। साधारण दवा तीव्र रोग को शांत नहीं
पाती।

काचित कर्म तपस्या से नहीं टूटते

कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं उन्हें *निकाचित* कर्म कहा जाता है। यदि
ा न हो तो फिर हमारे त्यागी-तपस्वी साधु, अचार्य, उपाध्याय,
ली, तीर्थंकर आदि को कष्ट क्यों भुगतनी पड़े ? उनकी तपस्या-
धना कोई सामान्य तो नहीं होती। वस्तुतः उनके भी कुछ ऐसे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

निकाचित कर्म होते हैं, जो तीव्र तपस्या से भी नहीं टूटते। आप अ
व्यावहारिक जीवन में इस बात को अनुभव कर सकते हैं। क्या आ
नहीं देखा कि किसी-किसी व्यक्ति का ऐसा रोग हो जाता है, जिस
सारे उपचार निरर्थक साबित होते हैं ? उस बीमारी को भुगतना
पड़ता है। यही स्थिति निकाचित कर्मों की है।

कर्म-बंधन और मनोभाव

एक बात यहां और स्पष्ट कर देना मैं आवश्यक समझता हूं
कर्म-बंधन में व्यक्ति की हर अच्छी या बुरी प्रवृत्ति के साथ-साथ उ
मनोभावों की भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऊपर के व्यवहार
आचरण से जो व्यक्ति हमें तपस्वी, ध्यानी, मौनी, साधक प्रतीत हो
है, वह भी अपने मनोभावों की मलिनता के कारण प्रगाढ़ अशुभ कर्मों
बंधन कर लेता है। ठीक इसके विपरीत एक व्यक्ति जो सामान्य ल
की दृष्टि में बहुत बुरा कार्य करता है, पापाचरण करता है, वह अ
आत्म-भावों की विशुद्धि के फलस्वरूप प्रगाढ़ अशुभ कर्म-बंधन से
जाता है।

वेश्या स्वर्ग में !

मैंने एक कहानी पढ़ी थी। किसी बड़े शहर के बाहरी भाग में
वेश्या रहा करती थी। उसके मकान के ठीक सामने एक संन्यासी
कुटिया थी। वर्षों तक वे आमने-सामने रहे और संयोग से उन दोनों
मृत्यु भी लगभग एक समय में हुई। दोनों साथ-साथ ही धर्मराज
दरबार में पहुंचे। सबको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि धर्मराज
संन्यासी को नरक और व्यभिचारिणी वेश्या को स्वर्ग भेजने का आ
दिया। बाबा ने धर्मराज से कहाह्न'महाराज ! लगता है खाता देखने
कोई भूल रह गई है। मैंने उम्र-भर तपस्या की, साधना की, ब्रह्मचर्य
पालन किया·····इसलिए मुझे स्वर्ग मिलना चाहिए। नरक तो इस वे
को मिलना चाहिए, जो आजीवन पापाचरण में आकंठ डूबी रही।' वे
को भी बाबा की बात न्यायोचित लगी। पर धर्मराज ने कहाह्न'मेरा नि
अटल है। उसमें कोई भी परिवर्तन होनेवाला नहीं है।' उपस्थित लोगों
पूछाह्न'महाराज ! आखिर इस निर्णय का आधार क्या है ?' धर्मराज
स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहाह्न'यह ठीक है कि बाबा उग्र तप
करता था, जीवन-पर्यंत ब्रह्मचारी भी रहा, पर इसका मन साफ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

। वेश्या के पास अच्छे-अच्छे आदमियों को जाते देख इसके मन में
र्या की आग सुलगती रहती। यह सदा वेश्या पर कुढ़ता रहता‍ यह
नी पापिन है, जो सब लोगों को भ्रष्ट करती है ! इस मानसिक
लिनता के कारण इसकी सारी तपस्या, ब्रह्मचर्य-साधना निस्तेज हो
। साथ ही अशुभ कर्मों का प्रगाढ़ बंधन हो गया। अतः इसे नरक में
ना पड़ेगा।'

वेश्या को स्वर्ग में भेजने का आधार बताते हुए धर्मराज ने
ा‍'यद्यपि यह जीवन भर पापाचरण करती रही, नारकीय जिंदगी जीती
, फिर भी इसकी भावना बड़ी ऊंची थी। यह सदा अपने बुरे आचरण
लिए अपनी आत्मा की निंदा करती रहती। बाबा को देखकर बराबर
चती कि यह बाबा कितनी त्याग-तपस्या की जिंदगी बिताता है ! वह
मेरे लिए धन्य होगा, जिस दिन इस गंदगी से निकलकर मैं भी
चर्य में उपस्थित हाऊंगी और त्याग-तपस्या से आत्मा को भावित
ूंगी। अपनी इस शुद्ध भावना के कारण पापाचरण में रत रहती हुई
यह प्रगाढ़ अशुभ बंधन से बच गई। परिणामतः यह स्वर्ग में जाने
अधिकारिणी।'

इस कहानी का सार आप समझ गए होंगे। कर्मों के बंधन में
ल दीखनेवाली अच्छी या बुरी प्रवृत्ति एकमात्र कारण नहीं है, अपितु
वना का भी बहुत निकट का संबंध। इसलिए मैं आप लोगों से यह
ोष बलपूर्वक कहना चाहता हूं कि आप हर प्रवृत्ति करने में अपने
वों को यथासंभव शुद्ध रखने का प्रयास करें।

अब मैं पुनः अपनी उसी बात पर आता हूं, कर्म सदा काल का
पाक पाकर ही प्राणी को फल देने में समर्थ होते हैं। अतीत में व्यक्ति
जो कर्म-बंधन किया है, वह काल-परिपाक से सुख-दुःख के रूप में
ज फल दे रहा है और वर्तमान में उसके द्वारा जो कर्म-बंधन किया
रहा है, उसका परिणाम उसके परिपाक होने पर उसे मिलेगा।
लिए धार्मिक व्यक्ति को वर्तमान के कष्ट देखकर अपना धैर्य कभी
ना नहीं चाहिए।

ुलन की एक नजीर

मैं तो यह भी मानता हूं कि परीक्षा सदा धार्मिक, धीरों और वीरों
होती है। अधार्मिकों, अधीरों और कायर-कमजोरों की कैसी परीक्षा !

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कैसी कसौटी ! क्या आपने कभी कांच और कोयले को कसौटी पर च
देखा है ? कसौटी पर तो हीरा और हेम ही चढ़ सकता है। इतिहास
बात का साक्षी है कि संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सब
कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा है। कठिन परिस्थितियों
निकलने पर उनके व्यक्तित्व में शतगुणित निखार आया है।

बंधुओ! मुसीबतें और कठिन परिस्थितियां तो संसार के हर मनु
के जीवन में आती हैं। यह दूसरी बात है कि किसी व्यक्ति के जीवन
उनकी मात्रा अल्प होती है और किसी व्यक्ति के जीवन में उनकी म
अधिक। पर ऐसा व्यक्ति खोजना असंभवप्रायः है, जिसके जीवन
सर्वथा उतार-चढ़ाव न आया हो। अलबत्ता इतना फर्क जरूर पड़ता है
जहां सामान्य व्यक्ति उतार-चढ़ावों में अपने संतुलन को खो देता
और बहुत जल्दी अधीर बन जाता है, वहीं महान व्यक्ति दृढ़ता के स
हर अनुकूल-प्रतिकूल प्ररिस्थिति से मुकाबला करता है और अ
संतुलन को बनाए रखता है। दूसरे शब्दों में हम इस बात को यों
कह सकते हैं कि अनुकूलता एवं प्रतिकूलताह्नदोनों ही परिस्थितियों में
समानह्नमध्यस्थ बने रहने के कारण ही वह महान है.। कवि ने कित
सुंदर कहा हैह्न

उदये सविता रक्तो, रक्तश्चास्तमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता।।

ह्न जिस प्रकार सूर्य उदय एवं अस्त दोनों ही समय में अग्नि-
की तरह लाल होता है, उसी प्रकार महापुरुष भी सं
और विपत्तिह्नलाभ और अलाभ दोनों ही स्थितियों में एक
रहते हैं।

दशरथ कहते हैंह्न

आहूतस्याभिषेकाय, विसृष्टस्य वनाय च।
न लक्षितो मया तस्य, स्वल्पोप्याकारविभ्रमः।।

ह्न राम को मैंने राज्याभिषेक के लिए आमंत्रित किया या वन ज
के लिएह्नइन दोनों ही परिस्थितियों में उसके चेहरे पर
सहजता दिखाई दी, जो सदा रहती है। राज्याभिषेक के
आमंत्रण पर उसके चेहरे पर कोई अतिरिक्त प्रसन्नता नहीं
वन जाने के अप्रिय आमंत्रण पर उसके चेहरे पर कोई वि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

की रेखा नहीं। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही स्थितियों में वह बिलकुल मध्यस्थ रहा।

आप कहेंगे, यह समता बहुत कठिन है। मैं भी मानता हूं, यह कोई ल काम नहीं है। पर इसके साथ ही यह भी मानता हूं कि यदि क्ति को महान बनना है तो उसे इस तत्त्व को स्वीकार करना ही ा। अन्यथा वह महान की कोटि में नहीं आ सकता आप टटोलें ने-आपको। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में आप स्वयं को किसी मा तक संतुलित रख पाते हैं ?

कुछ लोग कहते हैं, संतों का जीवन बड़ा कष्टमय है। उनके भोजन ठिकाना नहीं, पानी का ठिकाना नहीं, रहने के स्थान के स्थान का ाना नहीं·····ठीक है, संतों को जीवन कठिनाइयों का जीवन है। पर हें सदा अभाव में ही रहना होता है, ऐसी कोई बात नहीं है। जीवन-र्वाह की आवश्यक सामग्री उन्हें भी मिलती है। और मुझे तो ऐसा ाता है कि कई बार तो आप लोगों से भी अच्छी सामग्री उन्हें प्राप्त ी है, क्योंकि लोगों के मन में संतों के प्रति अपार श्रद्धा/भक्ति है। श्रद्धा/भक्ति के कारण वे अपनी अच्छी-से-अच्छी वस्तु संतों को र प्रसन्नता की अनुभूति करते हैं। हां, कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी स्थिति होते हैं, जब उनकी साधना की पूरी-पूरी कसौटी भी होती है। ा भोजन और ऐसा पानी खा-पीकर भी उन्हें काम चलाना पड़ता है, सकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

मैं अपने जीवन का एक घटना-प्रसंग सुनाऊं। मैं यात्रा पर था। ते में मुझे भयंकर प्यास लग गई। मैंने संतों से कहा‒'पानी की खोज ो।' संतों ने इधर-उधर काफी खोज की, पर कहीं भी प्रासुक पानी त नहीं हुआ। आखिर एक साधु घूमता-घूमता एक प्रजापत के घर चा। वहां उसने एक घड़े में थोड़ा प्रासुक पानी पाया। पर वह भी योग्य नहीं था, क्योंकि घड़े में पानी कम और मिट्टी ज्यादा थी। मुझे चित किया गया। मैंने कहा‒'जैसा मिले, वैसा ही ले आओ।' वह साधु मिट्टीमिश्रित पानी को लेकर आया और मैंने वह पानी पिया। आज भी मुझे उस दिन की वह प्यास याद है।

बंधुओ! ऐसे प्रसंग मेरे जीवन में कई बार उपस्थित हुए हैं। यद्यपि साधक हूं और साधनाकाल में कठिन परिस्थितियों में विषमता का

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आना कोई स्वाभाविक बात नहीं है, तथापि मुझे इस बात का संतोष कि कठिन परिस्थितियों में भी मैं अपने संतुलन को बनाए रख सका अपने-आपको संभाल कर रख सका हूं। उन क्षणों में मैंने बराबर सोचा है कि हम साधक हैं। हमारा संकल्प हैह्नभाव और अभावह्नदो ही स्थितियों में हम अपनी मानसिक समाधि बनाए रखेंगे। उसे खं नहीं होने देंगे। खाने-पीने को मिलेगा तो समभावपूर्वक खाएंगे और न मिलेगा तो समभावपूर्वक भूख-प्यास को सहन करेंगे।

मैं तो इस बात का भी समर्थक हूं कि व्यक्ति के जीवन में क परिस्थितियां अवश्यमेव आपनी चाहिए, क्योंकि तभी उसके धैर्य अ तितिक्षा का पता चलता है। अनुकूलता में शांत रहना कोई बड़ी ब नहीं है। बड़ी बात तब है, जब मन के प्रतिकूल परिस्थिति होने पर व्यक्ति शांत बना रहे। आचार्य भिक्षु ने इस संदर्भ में एक बहुत सुंदर दृष्टांत प्रस्तुत किया हैह्न

अल्लाह की गाय

सास अपने दामाद की बड़ाई करते-करते नही अघाती। जब-क प्रसंग चल पड़ता, वह बोल उठतीह्न'मेरा दामाद तो अल्लाह की गाय कुछ भी खिला दो, वह कभी एक शब्द नहीं बोलता।' एक दिन लोगों ने पूछाह्न'बुढ़िया ! आखिर तू अपने दामाद को खिलाती क्या है बुढ़िया बोलीह्न'कभी हलुआ, कभी रबड़ी, कभी बर्फी, कभी कलाकंद उसकी बात बीच में काटते हुए लोग बोलेह्न'प्रतिदिन मनोनुकूल भो मिलता है, तब तेरा दामाद क्यों बोले ? एक दिन ठंडी रोटी और घाट खिला, तब परीक्षा होगी कि वह कितना शांत है।' बुढ़िया कहाह्न'उसे कुछ भी खिलाओ, कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है।' लोगों कहाह्न'अच्छी बात है, कुछ भी फर्क न पड़े, पर एक दिन हमारे कहने यह प्रयोग करके तो देख।'

बुढ़िया ने दूसरे दिन वैसा ही किया। दामाद ने ज्यों ही ठंडी रो और ठंडी घाट देखी, वह आगबबूला हो उठा। थाली को ठोकर मार तत्काल वहां से उठ गया और सास को गालियां बकने लगा।

सायं लोग मिले। बुढ़िया का चेहरा उदास था। लोग पूछाह्न'क्यों बुढ़िया ! क्या हाल-चाल है ?' बुढ़िया ने अपनी अवधार में संशोधन करते हुए कहाह्न'तुम लोग बिलकुल ठीक कह रहे थे।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न में ही उसकी पूरी परीक्षा हो गई। आज एक दिन थोड़ा-सा मन के नकूल भोजन दिया कि दामाद तो बिलकुल आप से बाहर हो गया र इतने दिनों से लगातार खा रहे मनोनुकूल भोजन को भूल गया।'

बंधुओ! सचमुच यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि आदमी साल में न सौ चौंसठ दिन सुखी रहता है और एक दिन दुखी होता है तो तीन चौंसठ दिनों के सुख को भूल जाता है। ऐसा क्यों होता है? इसका रण स्पष्ट है। जीवन में समता का अभ्यास नहीं है। अपेक्षा है, क्ति समता का अभ्यास करे। समता ही हमें अपनी मंजिल तक चानेवाला सही राजपथ है। राजपथ प्राप्त करके भी जो व्यक्ति टकाकीर्ण और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में भटक जाता है, वह अपनी जिल तक नहीं पहुंच पाता। जीवन का सही आनंद प्राप्त करने के लिए प लोगों को आज से ही सजग होना है, इसी क्षण से सजग होना है। ी में जानव-जीवन की सार्थकता है।

ाशहर

अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४४ : औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव के प्रक

औदयिक भाव की चर्चा कल के प्रवचन में मैंने प्रारंभ की थ प्रायः कहा जाता हैह्नअवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्ह्नकृत क चाहे शुभ हो या अशुभ, उसे अवश्य भोगना पड़ता है। यानी जिन क का जीव बंधन करता है, वे निश्चित ही कभी-न-कभी उदय में आते पर इस संबंध में एक-दो बातें समझ लेना आवश्यक हैं। सभी क उदय में आते हैं, पर फल देने की शक्ति सबमें नहीं होती। फल वे कर्म देते हैं, जो विपाकोदय में आते हैं। प्रदेशोदय में समाप्त जानेवाले कर्म निष्फल हो जाते हैं। दूसरी बातह्नजिन कर्मों का जीव अ बंधन करता है, उसी समय उदय में आ जाएंह्नयह कोई निश्चित सिद्ध नहीं है। सभी कर्मों के उदय होने का एक नियत काल होता है और उ नियत काल के अनुसार वे उदय में आते हैं। पर प्रक्रियाविशेष के द्व हम नियत समय के अनुसार बाद में उदय में आनेवाले कर्मों को खींच पहले भी उदय में ला सकते हैं। जैन-दर्शन में इसे *उदीरणा* की संज्ञा गई है। इसे एक दाहरण से समझा जा सकता है। प्राचीन काल में अ के वृक्ष बारह वर्षों से फलवान होते थे। पर आज कलमी आम के व बहुत कम समय में ही फल देने लगे हैं। यह कलम का प्रयोग काल उदीरणा में एक सहकारी कारण बना है। एक व्यक्ति आराम से जी र है। पर उदीरणा के द्वारा वह बाद में उदय में आनेवाले असातवेदन कर्मों को अभी उदय में ला सकता है। वस्तुतः उदीरणा एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके सहारे हम अपने पूर्वसंचित कर्मों का ब अल्पकाल में नष्ट कर सकते हैं। त्याग, तपस्या, साधना आदि उसी लिए तो हैं। केशलुंचन, पदयात्रा, रात्रि-भोजन-परित्याग आदि स जीवन की बहुत-सी क्रियाओं से भी कर्मों की उदीरणा होती प्रायश्चित्त और शुभ अध्यवसाय भी उदीरणा के साधन हैं। अश मनःपरिणाम से जीव जहां सातवीं नरक में जाने के योग्य कर्मों का बं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लेता है, वहीं शुभ अध्यवसाय के द्वारा वह तत्काल उन्हें नष्ट भी सकता है।

रिणामिक भाव

स्वस्वभावे परिणमनं परिणामः। तेन निर्वृत्तः स एवा वा भावः रिणामिकः।

भावों के क्रम में अंतिम भाव हैह्नपारिणामिक भाव। अपने-अपने भाव में परिणत होना परिणाम कहलाता है। परिणाम से होनेवाली त्मा की अवस्था या परिणाम को ही पारिणामिक भाव कहा जाता है। ना, सोना, खाना, पीना, रोना, हंसना आदि-आदि जीव के परिणाम इस प्रकार एक ही जीव के अनंत-अनंत परिणामिक भाव होते हैं। एक क्ति जब वह बालक होता है, तब उसमें बालकपन प्राप्त होता है। ी प्रकार जब वह युवक होता है। तब उसमें यौवन और जब वह बूढ़ा ा है, तब उसमें बुढ़ापा आता है। ये विभिन्न अवस्थाएं पारिमाणिक व हैं।

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकह्नइन व भावों को आपने समझा। पूछा जा सकता है कि हमारे में कितने व हैं। औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकह्नये तीन भाव तो श्चित हैं। औदयिक भाव इसलिए है कि अभी हमारे ज्ञानावरणीय, निावरणीय आदि आठों कर्मों का उदय है। मन, बुद्धि, इंद्रियां, ज्ञान, धुपन, श्रावकपन आदि हैं, इसलिए क्षायोपशमिक भाव है। हम अनेक स्थाओं में परिणमन कर रहे हैं, इसलिए पारिणामिक भाव है। पशमिक और क्षायिकह्न भाव भी हो सकते हैं। पर इनके विषय में श्चित नहीं कहा जा सकता। ये दोनों भाव उसी स्थिति में हो सकते जब औपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व हो।

ंग विजयचंदजी पटवा का

पाली के विजयचंदजी पटवा आचार्य भिक्षु के अनन्य भक्त थे। चार्य भिक्षु के प्रमुख चार श्रावकों में उनका अग्रणी स्थान है। पर ामीजी के भक्त बनने से पूर्व वे उनके कट्टर विरोधी भी थे। धर्म का ी तत्त्व प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्वामीजी से काफी लंबी चर्चा की । स्वामीजी के समय चंद्रभानजी, तिलोकचंदजी आदि कुछ साधुओं का पंथ संघ से संबंध-विच्छे हो गया था। एक बार वे घूमते-फिरते पाली

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आए। वहां वे काफी दिन ठहरे। अपने प्रवास-काल में उन्होंने इधर-उ की गलत बातें कह-कहकर विजयचंदजी को तेरापंथ एवं आचार्य भिक्षु विमुख करने का हर संभव प्रयास किया। लगता है, विजयचंदजी बड़े भद्र प्रकृति के व्यक्ति थे। किसी को कड़ा कहना शायद वे जानते नही थे। अतः चंद्रभानजी, तिलोकचंदजी आदि के बातें सर्वथा गल जानते हुए भी उन्होंने उनका कोई प्रतिवाद नहीं किया। परिणामतः व के दूसरे-दूसरे श्रावकों ने यह अनुमान लगाया कि विजयचंदजी गण-पृ साधुओं (टालोकरों) के बहकावे में आ गए हैं। इनकी श्रद्धा कमजोर गई है।

चंद्रभानजी आदि के पाली से विहार करने के कुछ ही दिनों पश्च आचार्य भिक्षु का वहां पदार्पण हुआ। स्थानीय लोगों ने विजयचंदजी प्रति अपने अनुमति संशय को स्वामीजी के सामने रखा। स्वामीजी यद्यपि विजयचंदजी की श्रद्धा पर किंचित भी संदेह नहीं था, फिर लोगों के संदेह-निवारण के लिए वे विजयचंदजी से इस विषय में ब कर लेना उचित समझते थे। पर कठिनाई यह हो गई कि एक महीने प्रवास में विजयचंदीजी ने स्वामीजी की उपासना तो बहुत की, लेकि इस संबंध में कोई बात ही नहीं की। इस स्थिति में एक दिन स्वामी ने स्वयं ही इस संदर्भ को छेड़ते हुए पुछाह्न'विजयचंदजी ! इस बार य चंद्रभानजी, तिलोकचंदजी आदि टालोकर आए थे?' पटवाजी स्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए कहाह्न'हां, महाराज आए थे।' स्वामीजी पूछाह्न'तुम्हारे से उनका सम्पर्क हुआ ?' पटवाजी बोलेह्न'हां, महाराज हुआ था।' स्वामीजी ने कहाह्न'उन्होंने मेरे तथा तेरापंथ के बारे में का आलोचनात्मक बातें कही होंगी।' पटवाजी ने कहाह्न'हां महाराज! क थीं।' स्वामीजी बोलेह्न'तुमने मुझसे कुछ पूछा तो नहीं।' पटवा बोलेह्न'क्या पूछूं, महाराज ! मेरे मन में दो बातों का दृढ़ विश्वास हैह्नअ इतने आत्मार्थी हैं कि स्वप्न में भी कभी आपने न्याय-पथ को छोड़ न सकते और अनंत सिद्धों की साक्षी से किए त्यागों को तोड़कर गण पृथक होनेवाले साधु (टालोकर) कभी झूठ बोले बिना रह नहीं सकते

विजयचंदजी के यह उत्तर सुनकर स्वामीजी ने उपस्थित साधु और श्रावकों को लक्ष्य कर कहाह्न'लगता है, विजयचंदजी, क्षायि सम्यक्त्व के धनी हैं।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बंधुओ! क्षायिक सम्यक्त्व आज भी हो सकता है। उसकी कोई स्ति नहीं है। पर चाहिए उसके लिए दृढ़ आत्मबल और घनीभूत द्रा।

व भावों के विभिन्न प्रकार

पांच भावों की संक्षिप्त चर्चा के पश्चात अब आप उनके विभिन्न कारों को भी समझें।

औपशमिकस्य सम्यक्त्व चारित्रे।

औपशमिक भाव के दो प्रकार हैंह्र१. औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र।

औपशमिक सम्यक्त्वह्रतत्त्व के प्रति अल्पकालीन (अंतर्मुहूर्त) यथार्थ द्रा। यह स्थिति दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से प्राप्त होती है। चौथे स्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक यह स्थिति प्राप्त हो सकती है।

औपशमिक चारित्रह्रअल्पकालीन (अंतर्मुहूर्त्त) वीतरागता। चारित्र-हनीय कर्म के उपशम से यह स्थिति उपलब्ध होती है। मात्र ग्यारहवें स्थान में यह स्थिति प्राप्त होती है।

क्षायिकस्य ज्ञान-दर्शन-सम्यक्त्व-चारित्र-अप्रतिहतवीर्यादयः।

क्षायिक भाव के आठ प्रकार हैंह्र१. केवलज्ञान २. केवलदर्शन आत्मिक सुख/असंवेदन ४. क्षयिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र अटल अवगाहन ६.अमूर्तित्व ७. अगुरुलघुत्व ८. अप्रतिहत शक्ति।

चूंकि क्षय आठों ही कर्मों का होता है, इसलिए क्षायिक भाव आठों कर्मों के नष्ट होने से प्राप्त होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के विलय से लज्ञान, दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से केवलदर्शन, वेदनीय कर्म के ने से आत्मिक सुख/असंवेदन, मोहनीय कर्म के टूटने से क्षायिक यक्त्व और वीतरागता (क्षायिक चारित्र), आयुष्य कर्म के क्षय से नट अवगाहन, नाम कर्म के विलय से अमूर्तित्व, गोत्र कर्म के नष्ट से अगुरुलघुत्व एवं अंतराय कर्म के विलय से अनंत आत्मा-ऊर्जा प्राप्ति होती है।

क्षायोपशमिकस्य ज्ञानाऽज्ञान-दर्शन-चारित्र-संयमासंयमवीर्यादयः।

क्षायापशमिक भाव के प्रकार हैंह्रज्ञान, अज्ञान, दर्शन, दृष्टि, चारित्र, मासंयम, शक्ति आदि।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ज्ञानह्नकेवलज्ञान को छोड़कर ज्ञान के शेष चार प्रकारह्नमति, श्रु
अवधि और मनःपर्याय ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होते
हमारा, आपका और वैज्ञानिकों का भी ज्ञान क्षयोपशजन्य ही है।

अज्ञानह्नमति, श्रुत और विभंगह्नअज्ञान की तीनों प्रकार
ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होते हैं। पर यहां अज्ञान ज्ञान
अभाव का नाम नहीं, अपितु मिथ्यात्वी के ज्ञान का सूचक है। ज्ञान
मिथ्यात्वी के पास होता है तो वह अज्ञान कहलाता है।

दर्शनह्नकेवलदर्शन को छोड़कर दर्शन के शेष तीनों प्रकारह्नचक्ष
दर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम
उपलब्ध होते हैं।

दृष्टिह्नतत्त्व-श्रद्धा का नाम दृष्टि है। दृष्टियां तीन हैंह्नसम्यग्दृ
मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। ये तीनों क्षायोपशमिक भाव हैं। पर
संदर्भ में एक-दो बातें और ज्ञातव्य हैं।

सम्यग्दृष्टि औपशमिक एवं क्षायिक भाव भी है, जिनका संक्षि
विश्लेषण मैं पहले कर चुका हूं। पर यहां जिस सम्यग्दृष्टि की चर्चा
वह उन दोनों से भिन्न है। वह सम्यग्दृष्टि दर्शनमोहनीय कर्म
क्षयोपशम से प्राप्त होती है। वर्तमान में जो सम्यग्दृष्टि है, वह बहुल
में क्षायोपशमिक ही है। अनंतानुबंधी कषाय-चतुष्कह्नक्रोध, मान, माया
लोभ (चारित्रमोहनीय) तथा दर्शन-मोहनीयत्रिकह्नमिथ्यात्वमोहनी
सम्यक्त्वमोहनीय एवं मिश्रमोहनीय के क्षयोपशम से वह प्राप्त होती है

आप लोग इस बात पर गहराई से ध्यान दें कि प्राणी अनंतानुब
क्रोध, मान, माया व लोभ की विद्यमानता में कभी सम्यग्दृष्टि को प्र
नहीं कर सकता। अर्थात जिन लोगों का क्रोध पेट्रोल की आग की त
भड़कता है, मान अमरबेल की तरह वृद्धिंगत होता है, माया प्रले
प्राणी को अपने चंगुल में फंसा उसका अस्तित्व समाप्त करना चाह
है और लोभ संपूर्ण संसार के धन को बटोरना चाहता है, वे सम्यक
के लिए अपात्र हैं।

मिथ्यादृष्टि के दो प्रकार हैंह्नविपरीत श्रद्धा एवं यत्किंचित यथ
तत्त्व-श्रद्धा। विपरीत श्रद्धा औदयिक भाव है। वह दर्शनमोहनीय कर्म
उदय से प्राप्त होती है।

मिथ्यात्वी की यत्किंचित यथार्थ श्रद्धा क्षायोपशमिक भाव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

थ्यात्वी के पास होने के कारण वह मिथ्यदृष्टि कहलाती है। प्रस्तुत दर्भ में इसी मिथ्यादृष्टि का उल्लेख है।

कुछ यथार्थ और कुछ अयथार्थ तत्त्व-श्रद्धा मिश्रदृष्टि कहलाती है। में अयथार्थ श्रद्ध तो औदयिक भाव ही है, पर यथार्थ श्रद्धा योपशमिक भाव है। प्रस्तुत संदर्भ में यथार्थ श्रद्धा की अपेक्षा से इसे योपशमिक भाव माना गया है।

चारित्रह्नछठे से दसवें गुणस्थान तक का चारित्र (साधुत्व) भी ोपशमजन्य है। चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम के बिना यह प्राप्त हीं हो सकता।

संयमासंयमह्नसंयमासंयम काह तात्पर्यह्नहै श्रावकपन। श्रावक ने तिः व्रती/संयमी होता है और न पूर्णतः अव्रती/असंयमी। यानी वह छ व्रती/संयमी और कुछ अव्रती/असंयमी होता है। इसलिए उसे ाव्रती या संयमासंयमी कहा गया है। व्रत/संयम की अपेक्षा से वकपन को क्षायापशमिक भाव माना गया है। यह भी चारित्रमोहनीय र्म का क्षयोपशम है।

शक्तिह्नहम सब में जो आंशिक आत्म-ऊर्जा प्रगट है, वह अंतराय र्म के क्षयोपशम से प्राप्त है।

बंधुओ! यह क्षायोपशमिक भाव इस संसार के हर एक प्राणी रहवें गुणस्थन तक) के प्राप्त है। आप पूछेंगे कि क्या मिथ्यात्वी में क्षायोपशमिक भाव है। मैं पूछता हूं, क्या मिथ्यात्वी जीव नहीं होता ? प निश्चित मानें, संसार का प्रत्येक प्राणी, चाहे वह देव हो या नरक, ष्य हो तिर्यंच, त्रस हो या स्थावर, सूक्ष्म हो या बादर, संज्ञी हो या ंज्ञी, हिन्दू हो या मुलसमान, स्त्री हो या पुरुष, मिथ्यात्वी हो या यक्त्वी······ज्ञान, दर्शन आदि आत्मगुणों के न्यूनतम अंश से अवश्य न्न होता है। आत्मगुणों के आंशिक विकास के अभाव में जीव का स्तित्व ही नहीं है। यह आत्मगुणों का आंशिक विकास क्षायोपशमिक व के बिना ही नहीं सकता।

ाशहर

 अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४५ : औदयिक भाव से प्रकार (१)

भावों का विवेचन पिछले तीन-चार दिनों से आप बराबर सुन हैं। मैं मानता हूं, भावों का ज्ञान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उस ज्ञ के माध्यम से हमारी बहुत-सी वैचारिक समस्याओं का समधान प्र होता है। बहुध यह प्रश्न सामने आता है कि मनुष्य का उत्थान ह्रास क्यों होता है। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर हर व्यक्ति अप अपने ढंग से सोच सकता है। पर मैं मानता हूं, इसका वास्तवि समाधान भावों को समझने से प्राप्त होगा। व्यक्ति के उत्थान-पतन दूसरी-दूसरी अनेक चीजें निमित्त बन सकती हैं, पर मूल कारण व्यक्ति की स्वयं की आत्म या उसके भाव ही हैं। यदि व्यक्ति अपने भावों नियंत्रण कर लेता है तो मानना चाहिए कि विकास व ह्रास पर उस नियंत्रण हो गया।

भगवान महावीर ने कहाह्न

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुपट्ठिय सुपट्ठिओ।।

ह्न स्वयं की आत्मा ही सुख और दुःख की कर्ता और विकर्ता वही मित्र है और वही शत्रु। दुष्प्रवृत्तियों/पापाचरण में संल आत्मा शत्रु और सत्प्रवृत्तियों/धर्म में संलग्न आत्मा मित्र है

जिस समय हमारी आत्मा औपशमिक, क्षायोपशमिक या क्षायि भाव में होती है, तब वह मित्र होती है और वही आत्मा जब औदयि भाव में होती है तो शत्रु बन जाती है। दूसरे शब्दों में कर्मों का उपशम हलकपन और क्षय हमारे सुख का उपादन कारण है और कर्मों का उ दुःख का। हमारी साधना का उद्देश्य कर्मों के उपशमन, हलकपन अ क्षय की स्थिति प्राप्त करना है। इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में इस प्रक कहा जाता है कि औदयिक भाव का निरोध ही हमारी समग्र साधना

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

म ध्येय है। इस उद्देश्य को लेकर यदि व्यक्ति चलता रहे तो उसके मने किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आ सकती। कठिनाई तभी आती जब व्यक्ति इस मूलभूत उद्देश्य को भूलकर, ख्याति, प्रतिष्ठा, नाम दि वैभाविक तत्त्वों में उलझ जाता है।

साधना की बात हम दो क्षण के लिए छोड़ें, सामान्य रूप से भी दमी कोई प्रवृत्ति करता है तो उसमें नाम की भावना ज्यादा रखता है। म करके नाम की आकांक्षा करे, यहां तक तो व्यावहरिक भूमिका में न सकता है, पर काम के बिना नाम या थोड़ा काम और अधिक नाम, मनोवृत्ति सचमुच बड़ी खतरनाक है। हम देखें, काम पशु भी करता पर वह कभी नाम या प्रतिष्ठा की भावना नहीं रखता।

क्ति का सदुपयोग या दुरुपयोग

मैं मानता हूं, मनुष्य एक विवेकशील और चिंतनशील प्राणी है। के पास वह शक्ति है, जिससे वह अपने जीवन को बहुत ऊंचा उठा कता है। आत्मा से महात्मा और महात्मा बन सकता है। किंतु कठिनाई है कि वह अपनी शक्ति का सदुपयोग कम करता है, दुरुपयोग ही धिक करता है। इसलिए वह शक्ति उसे अमानवीय प्रवृत्तियों की ओर जा रही है। पर यह शक्ति का कोई दोष नहीं है। शक्ति अपने-आपमें था निर्दोष है। दोष हैह्नव्यक्ति के गलत उपयोग क। अच्छी-से-अच्छी तु भी गलत उपयोग से मनुष्य के लिए अहितकारी सिद्ध होती है। कास के जितने साधन हैं, वे ही ह्रास के साधन भी बन जाते हैं, जब का दुरुपयोग किया जाता है।

प्रश्न हो सकत है कि आदमी जब स्वयं चिंतनशील एवं विवेकशील णी है, फिर उसे पथ-दर्शन की क्या अपेक्षा है? यह ठीक है कि दमी में चिंतन है, विवेक करने की शक्ति है, पर साथ ही यह भी नना होगा कि खतना भी आदमी से ही सबसे अधिक है। हिंसक-से-सक पशु भी आपवादिक स्थिति को छोड़कर बिना भूख या बिना जन दूसरों के लिए खतरा नहीं बनता। पर मनुष्य से हरदम खतरा रहता है। वह ऊपर-से-ऊपर उठ सकता है तो नीचे-से-नीचे भी जा कता है। इसलिए उसको पथ-दर्शन का सदा अपेक्षा रहती है।

मनुष्य के इस विकास और ह्रास को समझने के लिए भावों का न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हम सूत्र रूप में इस तथ्य को स्वीकार करें

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कि हमें आत्मोत्थान या धार्मिक विकास की जो भी स्थिति प्राप्त होती वह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों से ही प्र होती ह। इसके विपरीत आत्म-पतन या धर्मिक ह्रास की जो भी स्थि बनती है, वह एकमत्र औदयिक भाव के कारण बनती है। कुछ ल अज्ञानवश ऐसा कह दिया करते हैं कि पुण्योदय से हमें संतों के द प्राप्त हुए, प्रवचन सुनने को मिला......उनको ख्याल रखना चाहिए पुण्यादेय से धन, संपत्ति, संतन आदि भौतिक सुख-सुविधाएं प्राप्त सकती हैं, पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि तत्त्व पुण्योदय से कभी प्र नहीं हो सकते। ये सब तत्त्व तो कर्मों के उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय ही उपलब्ध हो सकते हैं।

जैन-दर्शन में पांच भावों का बहुत विस्तृत विर्णन प्राप्त है। ये प भाव जैन-दर्शन के मूल हैं। इनको समझे बिना हम जैन दृष्टिकोण अनुसार आत्मा और धर्म को भी नहीं समझ सकते। क्यों ? यह इसलि कि दूसरे-दूसरे अनेक दर्शनों में उत्थान-पतन, लाभ-अलाभ, सुख-दु आदि बातें ईश्वर द्वारा प्राप्त हैं। वे इनके लिए व्यक्ति को जिम्मेदार न मानते। पर जैन-दर्शन तो इन सब बातों के लिए पग-पग पर व्यक्ति पुरुषार्थ व चिंतन को ही जिम्मेदार मानता है। तात्पर्य यह कि जैन-द आत्म-कर्तृत्ववादी दर्शन है, ईश्वर-कर्तृत्ववादी दर्शन नहीं। इसलिए कहा, भावों को समझना बहुत आवश्क है।

पांच भावों में से औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकह्नइन त भावों के प्रकरों का विवेचन मैं पिछले प्रवचनों में कर चुका हूं। अब अ यह जानें कि औदयिक भाव के कितने प्रकार हैंह्न

औदयिकस्य अज्ञान-निद्रा-सुख-दुःख-आश्रव-वेद-आयुर्गति-जाति शरीर-लेश्या-गोत्र-प्रतिहतवीर्यत्व-छद्मस्थ-असिद्धत्वादयः।

अज्ञान, निद्रा, सुख-दुःख, आश्रव, वेद, आयु, गति, जाति, शरी लेश्या, गोत्र, प्रतिहत शक्ति, छद्मस्थता, असिद्धता आदि औदयिक भ के विभिन्न प्रकार हैं।

अज्ञानह्नजैसाकि मैं पहले एक-दो बार स्पष्ट कर चुका हूं, अज्ञ के दो प्रकर हैंह्नकुत्सित ज्ञान (मिथ्यात्वी का ज्ञान) और ज्ञान का अभा इनमें से प्रथम प्रकार का अज्ञान (मिथ्यात्वी का ज्ञान) ज्ञानावरणीय क के क्षयोपशम से मिलता है। पर यहां जिस अज्ञान की बात कही गई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ज्ञान के अभाव का नाम है। यह अज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ीं, अपितु उसके उदय से पैदा होता है। आप पूछेंगे कि यह अज्ञान समें है? मैं पूछता हूं, यह किसमें नहीं है? जब तक व्यक्ति केवलज्ञान उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक किसी-न-किसी सीम में यह ान हर प्राणी में विद्यमन रहता है।

निद्राह्ननिद्रा दर्शनावरणीय कर्म क उदय है। जिसके दर्शनावरणीय र् का तीव्र उदय होता है, उसकी नींद बहुत गहरी होती है। इसके रीत जिसके दर्शनावरणीय कर्म का उदय अत्यंत मंद होता है, उसकी द भी बहुत हलकी होती है। इस तरतमता को ध्यान में रखते हुए निद्र पांच प्रकार बताए गए हैंह्न१. निद्रा २. निद्रा-निद्रा ३. प्रचला ४. ल-प्रचला ५. स्त्यानर्द्धि

निद्राह्नजो निद्रा सुख से आए और सुख से उड़ जाए।

निद्रा-निद्राह्नजो निद्रा आए भी कठिनाई से और उड़े भी कठिनाई से।

प्रचलाह्नबैठे-बैठे और खड़े-खड़े आनेवाली निद्रा।

प्रचला-प्रचलाह्नचलते-चलते आनेवाली निद्रा

स्त्यानर्द्धिह्नमौत के तुल्य गहरी निद्रा। शास्त्रों में इसका विवेचन ते हूए यहां तक बताया गया है कि व्यक्ति नींद में अपने स्थान से ता है, वहां से चलकर हाथी से संघर्ष करता है और उसके दांतों को ाल कर ले आता है। इसके बावजूद उसको कुछ पता नहीं चलता। निद्रावाला व्यक्ति नरकगामी होता है।

ाशहर

, अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४६ : औदयिक भाव के प्रकार (२)

संसार के प्रत्येक प्राणी में औदयिक भाव (चौदहवें गुणस्थान त और क्षायोपशमिक भाव (बारहवें गुणस्थान तक) दोनों समान रूप चलते हैं। यदि औदयिक भाव न हो तो प्राणी मुक्त हो जाता है अ यदि क्षायोपशमिक भाव न हो तो वह प्राणी नहीं रहता। कल से य पर्युषण पर्व प्रारंभ हो गया। हजारों-हजरों लोग अपनी शक्ति के अनुर इस पर्व की आराधना कर अपनी आत्मा को भावित कर रहे हैं। क्षायोपशमिक भाव का प्रभाव है। पर कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो इस का महात्म्य नहीं समझते, इसका सही अंकन नहीं करते, इसकी सम्य आराधना नहीं करते। यह औदयिक भाव का प्रभाव है। जब तक भाव तीव्र रहता है,तब तक व्यक्ति न तो तत्त्व का सही अंकन कर प है और न सही आचरण ही।

मुनि भिक्षा के लिए गए। गृहपति की देने की इच्छा नहीं है। अ पूछेंगे कि क्या कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति की साधु को देने इच्छा न हो। सब श्रावक ही होते हैं, उदार ही होते हैं सोचते हैं संसार में सभी तरह के लोग होते हैं। साधु-संतों का देकर प्रस होनेवाले होते हैं तो साधु-संतों को न देने की भावना रखनेवालों की नास्ति नहीं है। पर ऐसे लोग भी लोक-निंदा के भय से मुनि को भि दे देते हैं। यह लोक-निंदा का भय औदयिक भाव का ही परिणाम यदि क्षायोपशमिक भाव हो तो व्यक्ति को त्यागी साधु-संतों को दान में सहज प्रसन्नता की अनुभूति होगी।

प्रश्न होगा कि जब औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव दो साथ-साथ चलते हैं, फिर हमें क्या करना चाहिए। इस प्रश्न समाधान हर भाई-बहन को गहराई से समझना चाहिए। इस स्थिति हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि हम क्षयोपशमिक भाव को तीव्र

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

र दौदयिक भाव को क्षीण। यद्यपि औदयिक भाव को चौदहवें गुणस्थान
ᅳ भी हम सर्वथा समाप्त नहीं कर सकते, तथापि उसको दुर्बल अवश्य
सकते हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने औदयिक भाव को
ना दुर्बल बनाएं, जिससे कि वह नगण्य-सा बन जाए। यों जब तक
ीर है तब तक थोड़ी-बहुत व्याधि रहती ही है।

और कोई व्याधि किसी के चाहे न भी हो, लेकिन भूख-प्यास और
द्ध की व्याधि से कोई नहीं बच सकता। पर जहां स्वास्थ्य प्रबल होता
वहां यह अस्वास्थ दिखाई ही नहीं पड़ता। ठीक यही बात है भावों के
में। यदि हम प्रत्यत्नपूर्वक क्षायोपशमिक भाव को तीव्र कर लें तो
दयिक भाव रहकर भी बिलकुल नहीं के समान हो जाएगा।

राशा से बचें

मुझे बहुधा पूछा जाता है कि अणुव्रत का कार्य करते आपको इतने
हो गए, क्या आपने सारे संसार को नैतिक बना दिया। ऐसा प्रश्न
नेवालों को समझना चाहिए कि कोई नैतिक आंदोलन, चाहे वह
ुव्रत हो या अन्य कोई, सारे संसार को कभी नैतिक नहीं बना
कता। आप कहेंगे, ऐसी स्थिति में आंदोलन चलाने का अर्थ ही क्या।
सोच सम्यक नहीं है। भले सारा संसार नैतिक न बने, पर हमें तो
ना पुरुषार्थ करना ही चाहिए। हमरे प्रयत्न से जितने लोग नैतिक बनें,
ना तो अच्छा है ही। कोई कह सकता है कि यह तो निराशा की
न हो गई। नहीं, यह निराशा की बात कदापि नहीं है, बल्कि
स्तविकता को समझना है। मैं इस बात का पक्षपाती हूं कि व्यक्ति को
शा उतनी ही करनी चाहिए, जितनी संभ हो। अति आशा का परिणाम
ी सुखद नहीं होता। अप्रत्यक्ष रूप में वह निराशा को ही आमंत्रण है।
लिए इस वास्तविकता को समझते हुए कि कुछ प्रतिशत लोग ही
धरेंगे, सारा संसर कभी नहीं सुधरेगा, हम अपना कार्य अतीत में करते
हैं और आज भी कर रहे हैं। इस वास्तविकता को समझने के कारण
हमारे सामने कभी निराश होने का अवसर नहीं आता। हमारा एक ही
त्न है कि नैतिकत का पलड़ा अनैतिकता के पलड़े से भारी हो जाए।
मान में वह अनैतिकता के पलड़े से हलक हो गया। यदि यह कार्य हो
ता है तो हम अपने प्रयत्न में पूर्ण सफल हैं।

फलता की कसौटी

मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि संसार के सभी महापुरुषों ने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आखिर क्या किया? क्या वे सारे संसार को नैतिक य धार्मिक ब
पाए? जब वे भी सारे संसार को सुधारने में सफल नहीं हुए, तब
कैसे सारे संसार को सुधारने की बात सोच सकते हैं? पर इ
महापुरुषों की किंचित भी विफलता नहीं है। लोगों को सुधारने के लि
उन्होंने पुरुषार्थ किया, प्रयत्न किया, पर सारे संसार को सुधारने
जिम्मेदारी कभी नहीं ली। जितनी लोगों ने उनका उपदेश स्वीकार कि
उनका सुधार हुआ। पर जिन्होंने उनपका उपदेश को स्वीकारा ही न
उनका सुधार वे कैसे करते? आखिर उपदेश देनेवाला उपदेश दे सक
है, रास्ता बता सकता है, पर किसी को जबरदस्ती धार्मिक तो नहीं ब
सकता। इसलिए चाहे किसी भी महापुरुष का युग क्यों न रहा हो,
अपने युग में कुछ प्रतिशत लोगों को ही सुधार पाए हैं, सारे संसार
नहीं। पर जैसाकि मैंने कहा, यदि किन्हीं महापुरुषा के प्रयत्न
अच्छाई का पलड़ा बुराई के पलड़े से भारी हो जाए तो महापुरुष अ
लक्ष्य में पूर्ण सफल हैं। परंतु ऐसा नहीं भी होता है तो उनके विफ
होने का कोई प्रश्न नहीं है, क्योंकि महापुरुष का मुख्य उद्देश्य अ
कर्तव्य का पालन करना होता है। संसार का सुधरना या न सुध
उनकी सफलता और विफलता की कसौटी नहीं है।

हां, तो मैं आपसे औदयिक भाव एवं क्षायोपशमिक भाव की ब
कह रहा था। यदि औदयिक भाव को हम अत्यंत कमहोर बना दें अ
क्षायोपशमिक भाव को तीव्र कर दें तो हमारे विकास का मार्ग प्रशस्त
जाएगा। इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात और है। अखिर यह कार्य
व्यक्ति को स्वयं ही करना होगा। दूसरा केवल निमित्त बन सकता
और वह भी उस स्थिति में, जब व्यक्ति स्वयं इसके लिए तैयार ह
सीढ़ियां ऊपर चढ़ने में तभी सहयोगी बनती हैं, जब व्यक्ति स्वयं ऊ
जाने के लिए तैयार हो। जो स्वयं ऊपर जाने के लिए तैयार नहीं, उस
लिए सीढ़ियां कुछ भी नहीं कर सकतीं। मैं आपके औदयिक भाव
दुर्बल बनन चाहता हूं, समाप्त करना चाहता हूं। उसके स्थान
क्षायोपशमिक भाव को तीव्र करना चाहता हूं, क्षायिक भाव लान चाह
हूं। मैं इसमें निमित्त बन सकता हूं। पर यह संभव तभी है, जब अ
स्वयं इसके लिए प्रस्तुत हों। अन्यथा मैं लाख प्रयत्न करूं तो
आपमें किंचित भी परिवर्तन नहीं कर सकता। हमारा निश्चित सिद्धांत
कि अत्थान और पतन दोनों का उपादान कारण व्यक्ति स्वयं है। दू

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मात्र निमित्त बनते हैं। इसलिए आप सबको इस बात की पुनः-पुनः
णा करता हूं कि आप अपने औदयिक भाव को कमजोर, अति
जोर और समाप्त करने का प्रयास करें।

औदयिक भाव के कुछ प्रकारों की चर्चा मैं कर चुका हूं। उसके
य प्रकारों को भी समझना है।

सुख-दुःखह्नप्राणी संसार में विभिन्न रूपों में सुख-दुःख को भोगता
यह वेदनीय कर्म के उदय का परिणाम है। सातवेदनीय कर्म के उदय
फलस्वरूप सुख और असातवेदनीय कर्म के उदय के फलस्वरूप दुःख
प्राप्ति होती है।

आश्रवह्नजीव के कर्म-बंध का हेतु आश्रव है। आश्रव पांच
मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इनमें प्रथम चार आश्रव
र अशुभ योग आश्रव का कारण मोहनीय कर्म का उदय है। शुभ योग
श्रव नाम कर्म के उदय की परिणति है।

वेदह्नवासनाजन्य विकार वेद है। यह भी मोहनीय कर्म के उदय के
रण पैदा होता है।

आयुह्नजीव संसार में रहता है, यह आयुष्य कर्म के उदय का
णाम है।

गति, जाति, शरीरह्नप्राणी संसार में विभिन्न गतियों और जातियों
पैदा होता है। वह नाना प्रकार के शरीर धारण करता है। ये सारी
प्तियों नाम कर्म के उदय के फलस्वरूप हैं। शुभ नाम कर्म के उदय से
चीजें शुभ रूप में तथा अशुभ नाम कर्म के उदय से ये चीजें अशुभ
में प्राप्त होती हैं। किसी व्यक्ति को सुडौल शरीर मिलता है, यह
नाम कर्म का प्रभाव है। इसके विपरीत किसी को बेडौल शरीर
लता है, यह अशुभ नाम कर्म के कारण है। कोई व्यक्ति सबको प्रिय
ता है, यह शुभ नाम कर्म के उदय के कारण है। कोई सबको अप्रिय
ता है, यह अशुभ नाम कर्म के कारण है।

हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनके आदेश को बिना
सी ननु-नच उसके परिवारवाले तत्काल स्वीकार कर लेते हैं। इसके
रीत ऐसे व्यक्तियों को भी कमी नहीं है, जिनके आदेश पर कोई ध्यान
नहीं दिया जाता। वचन की यह आदेयता और अनादेयता क्रमशः शुभ
र अशुभ नाम कर्म के उदय से ही प्राप्त होती है। यदि किसी व्यक्ति

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को यह आदेयत प्राप्त है तो मानना चाहिए कि उसके शुभ नाम कर्म
उदय है। इसके विपरीत यदि किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया जात
ऐसा समझना चाहिए कि उसके अशुभ नाम कर्म का उदय है।

एक विशाल संयुक्त परिवार था। लगभग पचास व्यक्तियों के
परिवार पर एक वृद्ध व्यक्ति का अनुशासन था। सब उसकी बात
सहर्ष स्वीकार करते थे। व्यापार-व्यवसाय अच्छा चलता था। स
परिवार अत्यंत आनंदपूर्वक दिन गुजारता था। पर आप जानते हैं
किसी के भी सब दिन एक समान नहीं होते। उनमें उतार-चढ़ाव अ
रहता है। इस परिवार के भी दिन बदले। व्यापार में एकाएक इतना
घाटा लगा कि सारी आर्थिक व्यवस्था लड़खड़ा गई। पेट भरने के
लाले पड़ गए। आखिर परिवार के सब सदस्य उस वृद्ध नायक के सम
उपस्थित हुए और उससे समस्या का समाधान पूछा। वृद्ध परिवा
नायक ने सबको अपने साथ जंगल में चलने के लिए कहा। आ
मिलते ही सब वृद्ध के नेतृत्व में जंगल के लिए रवाना हो गए। जं
में पहुंचकर वृद्ध ने एक ऐसे स्थान पर पड़ाव डला, जहां सरकंडों
सैकड़ों-सैकड़ों पौधे थे। वृद्ध ने सरकंडों को काटने और उन्हें कू
पीटकर रस्सियां बनाने का आदेश दिया। बस, आदेश मिलने की
थी, वहां रस्सी बनाने का एक कारखाना-सा खुल गया। और देख
ही-देखते कुछ ही समय में मोटी-मोटी रस्सियां बनकर तैयार हो ग
तब उस परिवारवालों ने वृद्ध नायक से पूछाह्न'अब क्या करें ?' वृद्ध
आदेश दियाह्न'सामनेवाले वृक्ष को बांधो।'

उस वृक्ष में एक यक्ष का निवास था। वह घबराया। वृद्ध
अनुशासन और परिवारजनों की एकता देखकर उसके मन में विश्वास
गया कि सचमुच ये मुझे बांध लेंगे। वह तत्काल वृद्ध के समक्ष उपस्
हुआ और बोलाह्न'क्या कर रहे हो तुम लोग?' वृद्ध ने प्रतिप्र
कियाह्न'देखते नहीं?' यक्ष ने घबराहट के स्वर में पूछाह्न'ये रस्सियां व
बनाई हैं?' वृद्ध ने कहाह्न'तुम्हें बांधेंगे।' यक्ष भय से कांपने लगा।
तत्काल वृद्ध के चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाता हुआ बोलाह्न'मुझे
बांधो।' वृद्ध ने तेज स्वर में कहाह्न'बांधें नहीं तो खाएं किसे?' यक्ष
आश्वस्त करते हुए कहाह्न'तुम निश्चिंत हो घर पर जाओ। तुम्हारे कि
बात का अभाव नहीं रहेगा।'

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वृद्ध अपने पूरे परिवारसहित घर लौट आया। देखते-देखते सारी यति बदल गई। व्यापार दिन दुगुना और रात चौगुना बढ़ने लगा। वह नामाल हो गया। सारा परिवार पुनः सानंद रहने लगा।

उसके पड़ोस में ही एक दूसरा परिवार रहता था। वह भी काफी ा था। पर एक कमी थी। परिवार-नायक के आदेश की पालना कोई ां करना चाहता था। उस परिवार के नायक को जब खबर लगी कि ा पेड़ोसी जंगल में जाकर मालामाल हो गया है तो उसका मन भी नचाया। उसने भी परिवार के लोगों को जंगल में चलने का आदेश या। पर सहर्ष चलने को कोई तैयार नहीं हुआ। आखिर काफी कड़ा ने पर बड़ी मुश्किल से सब चलने के लिए तैयार हुए। उस परिवार वृद्ध नायक ने भी वहीं पड़ाव डाला, जहां पहले परिवार के नायक ने ना था। वहां जाकर उसने भी रस्सियां बनाने और उसी वृक्ष को धने का आदेश दिया। पर रस्सी कौन बनाए, इस बात को लेकर ाद खड़ा हो गया। बड़ा भाई कहने लगा कि छोटा भाई बनाएगा और टा भाई कहने लगा कि बड़ा बनाएगा। जेठानी कहने लगी कि देवरानी ाएगी और देवरानी कहने लगी जेठानी बनाएगी। किसी ने तो यहां तक कह दिया कि यह बूढ़ा बैठा-बैठा क्या करता है। हमें-ही-हमें काम ने के लिए कहता है, खुद तो कुछ भी नहीं करता। आखिर बड़ी श्किल से पांच-सात रस्सियां बनीं। यक्ष सारी स्थिति गौर से देख रहा । वह आश्वस्त था कि ये कुछ भी नहीं कर सकते। वह विकराल कृति में उस वृद्ध परिवार-नायक के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने ा प्रश्न दोहरायाह्न'ये रस्सियां क्यों बनाई हैं ?' वृद्ध ने पहले से रटा-या उत्तर दियाह्न'तुम्हें बांधने के लिए।' इस पर यक्ष ने आंखें लाल ते हुए कहाह्न'यहां से तत्काल भाग जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें और हारे परिवार के एक-एक सदस्य को यहीं ढेर कर दूंगा। अपना वार तो तुमसे बंधता हही नहीं और मुझे बांधने के लिए आए हो !'

वह परिवार-नायक घबरायाह्नयहां तो लेने के देने पड़ गए। अब ां एक क्षण भी रुकना खतरे से खाली नहीं है। वह तत्काल परिवार लेकर घर की ओर रवाना हो गया।

बंधुओ! आदेयता और अनादेयताह्नइन दोनों की स्थिति और णाम के अंतर को आपने देखा। जैसा कि मैंने कहा, आदेयता और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनादेयता दोनों ही नाम कर्म के उदय से ही मिलती हैं। इसी प्रव
सुरूपता, कुरूपता, मधुरस्वरता, कर्कशस्वरता आदि अनेक चीजें न
कर्म के उदय से मिलती हैं।

लेश्याह्लआत्मा के शुभ-अशुभ परिणामज्ञों को लेश्या कहा जाता
लेश्या भी नाम कर्म के उदय के कारण ही प्राप्त होती है। शुभ नाम व
के उदय से शुभ लेश्या-शुभ आत्म-परिणाम तथा अशुभ नाम कर्म
उदय से अशुभ लेश्याह्लअशुभ आत्म-परिणाम प्राप्त होते हैं। आत
परिणामों के अशुभ होने में मोहनीय कर्म का उदय योगभूत होता है

गोत्रह्लप्राणी विभिन्न रूपों में उच्चता और न्यूनता को प्राप्त हो
है। यह गोत्र कर्म के उदय का प्रभाव है। शुभ गोत्र कर्म के उदय
उच्चता तथा अशुभ गोत्र कर्म के उदय से न्यूनता की उपलब्धि होती

प्रतिहत शक्तिह्लअंतराय कर्म के उदय से प्राणी की आत्म-ऊर्जा
रुकावट आती है।

छद्मस्थताह्लयह भी औदयिक भाव ही है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण
तथा अंतराय कर्म के उदय से छद्मस्थता की स्थिति रहती है। जिस दि
इन तीन कर्मों का सर्वथा उदय नहीं रहता, उस दिन छद्मस्थता भी न
रहती।

असिद्धत्वह्लअघाती कर्मह्लवेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र के उ
से असिद्धत्व की प्राप्ति होती है। तेरहवें गुणस्थान में घाती कर्मों
पूर्णतया नष्ट हो जाने के बाद भी अघाती कर्म अवशिष्ट रह जाते
इनके उदय के कारण ही चौदहवें गुणस्थान तक प्राणी सिद्धावस्था
प्राप्त नहीं होता। जब ये सर्वथा क्षीण हो जाते हैं यानी इनका उ
समाप्त हो जाता है, तभी जीव सिद्ध बनता है।

औदयिक भाव की लंबी चर्चा को अब मैं संपन्न करता हूं।
भाव की इतनी विस्तृत चर्चा का मूलभूत उद्देश्य यही है कि आप
भाव को गहराई से समझें। जब तक इसे गहराई से समझा नहीं जाए
तब तक इससे मुक्त होने का प्रयास भी कैसे हो सकेगा? और इस
मुक्त हुए बिना संसार से मुक्त होने की बात बेमानी हो जाएगी। चूं
हम सबका लक्ष्य इस संसार से मुक्त होना है, इसलिए यह नित
अपेक्षित है कि हम सलक्ष्य इससे मुक्त होने का प्रयास करें।

गंगाशहर, ३१ अगस्त १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४७ : पारिणामिक भाव के प्रकार

औदयिक भाव के विभिन्न प्रकारों की चर्चा के पश्चात आज मैं पको पारिणामिक भाव के प्रकारों पर कुछ बताना चाहूंगा। जैसाकि मैं ले ही स्पष्ट कर चुका हूं कि अपने-अपने स्वभाव में परिणत होने का म परिणाम है। उससे होनेवाली आत्मा की अवस्था या परिणाम को ही रिणामिक भाव कहा जाता है। प्रकृति का यह निश्चित सिद्धांत है कि ई वस्तु अपने स्वभाव को छोड़कर परभाव में नहीं जाती। आप हजार ास करें, फिर भी अग्नि कभी उष्णता के अपने स्वभाव को नहीं छोड़ कती।

पारिणामिकस्य जीवत्व-भव्यत्व-अभव्यत्वादयः।

पारिणामिक भाव के प्रकार हैंह्नजीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि।

जीवत्वह्नजीवत्व/चेतना जीव का स्वभाव है। कोई भी जीव अपने वत्व के स्वभाव को छोड़कर कभी जीव नहीं रह सकता। हालांकि की अवस्था में विभिन्न परिवर्तन होते हैं, तथापि जीवत्व का उसका ा स्वभाव सदा उसी रूप में बना रहता है। प्राणी एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय जाता है, पंचेंद्रिय से एकेंद्रिय बन जाता है। द्वींद्रिय से पंचेंद्रिय बन ता है, त्रींद्रिय से पंचेंद्रिय बन जाता है, पंचेंद्रिय से अतींद्रिय भी बन ता है......इसके बावजूद वह रहेगा जीव ही। किसी भी अवस्था को त कर वह अजीब नहीं बन सकता।

पूछा जा सकता है कि प्राणी अतींद्रिय किस अवस्था में बनता है। णी अतींद्रिय दो अवस्थाओं में बनता हैह्नया तो उसकी इंद्रियां बेकार हो एं या फिर वह सिद्ध बन जाए। इंद्रियां भी दो अवस्थाओं में बेकार ी हैंह्नइंद्रियों के खराब होने से या केवलज्ञान प्राप्त होने से पहले स्था में जब इंद्रियों की पौद्गलिक आकृति या शक्ति नष्ट हो जाती तब वे बेकार हो जाती हैं। दूसरी अवस्था में जब व्यक्ति केवलज्ञान

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को उपलब्ध हो जाता है, तब उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती इस अपेक्षा से वे बेकार हैं। पर इन सब अवस्थाओं में भी जीव जीवत्व कभी नष्ट नहीं होता। यानी प्राणी चाहे संसार की विभि जातियों एवं गतियों में रहे, चाहे संसार से मुक्त भी हो जाए, पर उस जीवत्व अपरिवर्तनशील है।

भव्यत्वह्नमोक्ष जाने की योग्यता को भव्यत्व कहा जाता है।

अभव्यत्वह्नमोक्ष जाने की अयोग्यता या अपात्रता अभव्य कहलाती है।

हम जानते हैं कि कोई व्यक्ति सभी दृष्टियों से योग्य या अयो नहीं होता। हर प्राणी की योग्यता और अयोग्यता सदा सापेक्ष ही हो है। आप लोग व्यापारी हैं। व्यापार की दृष्टि से योग्य हो सकते हैं। यदि आपको कह दिया जाए कि वायुयान चलाना है तो संभवतः आप स अयोग्य साबित होंगे। इसी प्रकार जो वायुयान का चालक है, वायुयान चलाने की दृष्टि से योग्य है। किंतु यदि उसे व्यापार की दृ से परखा जाए तो वह सर्वथा अयोग्य साबित हो सकता है। इसलिए कहो कि योग्यता और अयोग्यता सदा सापेक्ष होती है। भव्य प्राणी मो जाने की योग्यता रखते हैं और अभव्य प्राणी मोक्ष जाने की दृष्टि अयोग्य होते हैं। हमें यहां समझना यह है कि भव्य प्राणी कभी अभ नहीं बन सकते। यानी वे भव्यत्व के स्वभाव से कभी विलग नहीं हो इसी प्रकार अभव्य प्राणी भी कभी भव्य नहीं बनते। यानी उन्हें त्रिक में भी मोक्ष जाने की योग्यता प्राप्त नहीं होती।

हमारी धर्म-सभा में भव्य प्राणी ही आते होंगे, क्योंकि अभव्य य आकर करें भी क्या ! वास्तव में धर्म और अध्यात्म के प्रति उन्हें अभिरुचि हो सकती है, जो मोक्षगमन की योग्यता रखते हैं। बाव इसके, हमारी धर्म-सभा में अभव्य प्राणियों के आने की सर्वथा नाि नहीं हे। पर तीर्थङ्करों की सभा में कोई अभव्य प्राणी आ ही न सकता। यह अनादिकालीन परंपरा है। पूछा जा सकता है, भव्यत्व कि कर्म का क्षयोपशम है और अभव्यत्व किस कर्म का उदय है। चूं भव्यत्व और अभव्यत्व दोनों की कर्मजन्य नहीं हैं, अतः भव्यत्व कि कर्म का क्षयोपशम नहीं और अभव्यत्व किसी कर्म का उदय नहीं। अनादि परिणाम (प्राकृतिक स्थिति) है। इसे हम त्रिकाल में भीह ब

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ां सकते। हमारी बात तो छोटी है, तीर्थंकरदेव भी इसे बदलने में
क्षम हैं।

यहां यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि भव्य और अभव्य प्राणियों
अवस्था में परिवर्तन होता है या नहीं। अवस्था में परिवर्तन तो होता
है। आज जो एक भव्य प्राणी एकेंद्रिय है, वह कभी द्वींद्रिय बन
कता है, फिर कभी पंचेंद्रिय बन सकता है, फिर कभी......। इसी प्रकार
भव्य प्राणी की अवस्थाओं में भी नाना परिवर्तन होते रहते हैं। आन
कर आश्चर्य करेंगे कि एक अभव्य प्राणी मुनि, उपाध्याय और
चार्य भी बन सकता है। पर वह होगा द्रव्य उपाध्याय और द्रव्य
चार्य ही। भाव साधुत्व उसमें कभी नहीं आ सकता। कहने का
पर्य यह है कि परिवर्तन सभी प्राणियों में होता है, चाहे वे भव्य हों
अभव्य। मात्र भव्यत्व और अभव्यत्व की दृष्टि से उनमें कोई
वर्तन नहीं होता।

बंधुओ! परिवर्तन का यह सिद्धांत शाश्वत और महत्त्वपूर्ण है। यदि
वर्तन न हो तो संसार का कोई पदार्थ टिक नहीं सकता। दूसरे शब्दों
इस संसार का भी कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। पर आप निश्चिंत रहें,
काल में भी ऐसा कभी संभव नहीं है। परिवर्तन का क्रम हर पदार्थ में
वरत चालू रहता है। इस सिद्धांत को आप गहराई से समझें। मेरा
वास है, यदि आप इस सिद्धांत को गहराई से समझ लेंगे तो प्रतिदिन
वाली परिवर्तन को देखकर कभी घबराएंगे नहीं। कठिन-से-कठिन
स्थिति को भी जीवन की अनिवार्यता समझकर हंसते-हंसते पार कर
एंगे।

ाशहर
सितंबर १९७८

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org